मुण्डारी लोक साहित्य में इतिहास

डॉ. सिकरादास तिर्की

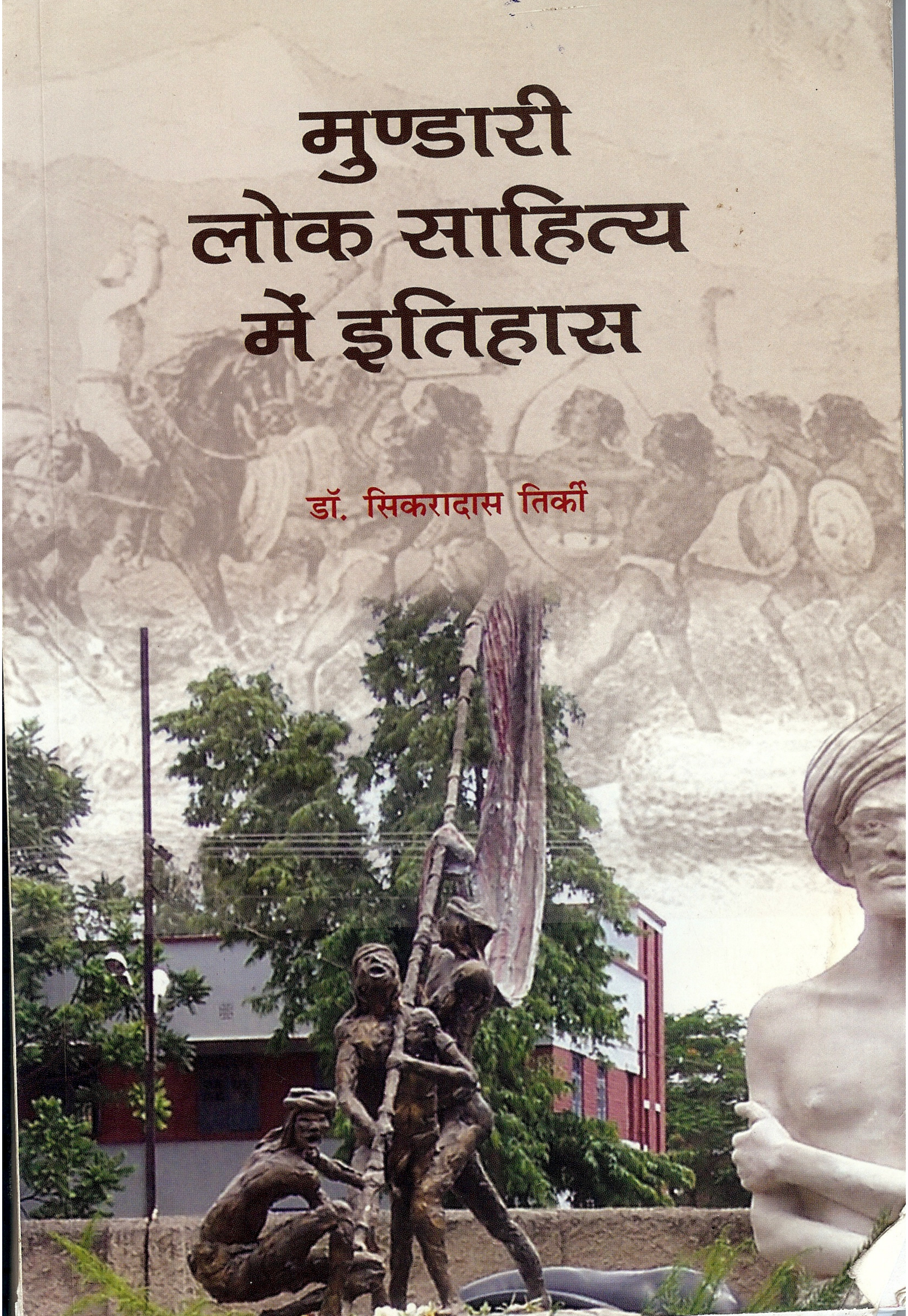

मुण्डारी लोक साहित्य में ऐतिहासिक तथ्य

मुण्डारी लोक साहित्य में ऐतिहासिक तथ्य

डॉ. सिकरादास तिर्की

प्राध्यापक, मुण्डारी विभाग

राम लखन सिंह यादव कॉलेज, राँची

PYARA FOUNDATION

प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन

राँची (झारखण्ड)

इस पुस्तक के सर्वाधिकार कॉपीराइट एक्ट के तहत प्रकाशक के पास सुरक्षित हैं। इसके किसी भी अंश को फोटोकॉपी अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से, अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता।

मूल्य
200/- रुपये

© डॉ. सिकरादास तिर्की

प्रथम संस्करण : नवंबर, 2010
ISBN : 978-93-81056-12-7

प्रकाशक : प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन
चेशायर होम रोड, बरियातु, राँची-834009 झारखण्ड
दूरभाष : 9234301671, 0651-2562565
ई-मेल : pkfranchi@gmail.com
वेब पता : www.kharia.in

अलंकरण : आम (झारखंड) johar@sahiya.net
आवरण शिल्प : दिलीप टोप्पो
टाईपसेटिंग : निताई चन्द्र महतो

मुद्रक : कैलाश पेपर एंड कनवर्सन, राँची

MUNDARI LOK SAHITYA ME AITIHASIK TATHYA
by Dr. Sikradas Tirky

मुण्डारी भाषा प्रेमियों को
सादर समर्पित

अभिमत

डॉ. सिकरादास तिर्की मुंडारी भाषा एवं साहित्य के ज्ञाता एवं व्याख्याता हैं। मुंडारी लोक साहित्य के सम्पूर्ण ज्ञान एवं झारखंड के इतिहास के प्रति अपनी अभिरूचि के कारण इन्होंने 'मुंडारी लोक साहित्य में ऐतिहासिक तथ्य' विषय पर शोध किया है।

सुरम्य वन्य-प्रदेश झारखंड का भारत के मानचित्र में अपना सांस्कृतिक, सामाजिक, औद्योगिक, व्यापारिक, भौगोलिक एवं ऐतिहासिक महत्व है लेकिन झारखंड के संबंध में खासकर आदिवासियों के संदर्भ में लिखित सामग्रियों का अभाव रहा है। इतिहास, संस्कृति, राजनीति, उद्योग, खनिज, वानिकी आदि सभी क्षेत्रों में झारखंड की उपेक्षा होती रही है। यहाँ का भाषा एवं साहित्य, इतिहास एवं संस्कृति अन्य प्रदेशों की तुलना में अप्रकाशित ही रही। विभिन्न स्रोतों द्वारा अब तक की खोज और विभिन्न विद्वानों के प्रयास से यह सिद्ध हो चुका है कि झारखंड के वैभवपूर्ण इतिहास का ज्ञान जितना आदिवासी लोक साहित्य (मौखिक) के माध्यम से प्राप्त हुआ है उतना और किसी माध्यम से नहीं। झारखंड के प्रमुख आदिवासी/मूलवासी (संताल, मुंडा, कुड़ुख़, हो, खड़िया आदिवासी) का समृद्ध लोक साहित्य झारखंड के ऐतिहासिक तथ्यों से भरा हुआ है। आदिवासी लोक साहित्य खासकर लोकगीत और लोक कथाएँ मौखिक परम्परा के आधार पर ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी अबतक जीवित रही हैं। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ आदिवासी लोक साहित्य को लिपिबद्ध कर इनके संग्रहण एवं संरक्षण का पूर्ण प्रयत्न किया जा रहा है क्योंकि ये आदिवासियों की अनमोल धरोहर हैं और ऐतिहासिक साक्ष्य भी।

झारखंड राज्य के सृजन के साथ ही आदिवासी जीवन के हर पहलू के अन्वेषण की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। डॉ. सिकरादास तिर्की ने 'मुंडारी लोक साहित्य में ऐतिहासिक तथ्य' शीर्षक अपने शोध-प्रबंध में मुंडारी लोक साहित्य का गहन अध्ययन कर झारखंड के आवृत्त इतिहास को अनावृत्त करने का सराहनीय प्रयास किया है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों की पहाड़ियों, घाटियों और उनके नीचे के मैदानों में कई आदिवासी समुदाय निवास करती हैं, जिनमें से मुंडा समुदाय सर्वप्रमुख है। डॉ. तिर्की ने स्पष्ट

ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनाकर मुंडा समुदाय और मुंडारी भाषा का परिचय दिया है, जिससे मुंडा समुदाय के प्राचीनतम होने का पता चलता है साथ ही विश्व एवं भारतीय भाषाओं में मुंडारी भाषा के महत्वपूर्ण स्थान का परिचय मिलता है। ऑस्ट्रो-एशियाटिक वर्ग के अन्तर्गत आनेवाले मुंडा-भाषा परिवार को ऑस्ट्रिक अथवा आग्नेय परिवार भी कहा जाता है। इस मुण्डा-भाषा परिवार में कई अन्य आदिवासी भाषाएँ सम्मिलित हैं अर्थात् मुंडारी भाषा अन्य आदिवासी भाषाओं का प्रतिनिधि-सा है।

डॉ. सिकरादास तिर्की ने अपनी पुस्तक में अपने विषय को विभिन्न अध्यायों में समेटने की कोशिश की है। क्रमशः एक अध्याय में प्रागैतिहासिक तथ्य का उद्घाटन किया है, तो दूसरे अध्याय में प्राचीन ऐतिहासिक तथ्य का। तीसरे अध्याय में मध्यकालीन ऐतिहासिक तथ्य का रोचक प्रस्तुतिकरण किया गया है और चौथे अध्याय में आधुनिक ऐतिहासिक तथ्य का उद्घाटन करते हुए अंत में उनका मूल्यांकन किया है। अनेकानेक प्रसंगों एवं उदाहरणों द्वारा डॉ. तिर्की ने स्पष्ट कर दिया है कि मुंडारी लोक साहित्य में किस प्रकार ऐतिहासिक तथ्य प्राप्य हैं और उन तथ्यों द्वारा झारखंड के इतिहास का और खासकर मुंडा समुदाय के इतिहास का वास्तविक परिचय मिलता है। प्राचीन लिखित सामग्री के अभाव में किसी भी स्थान, जाति या समुदाय विशेष का इतिहास लिखना अत्यन्त कठिन है लेकिन इस पुस्तक के लेखक डॉ. सिकरादास तिर्की ने मुंडारी लोक साहित्य को आधार बनाकर समृद्ध मुंडा समुदाय के उद्गम, परिभ्रमण, छोटानागपुर आगमन, अन्य समुदायों, जातियों एवं आदिवासियों के साथ सम्पर्क, विभिन्न संस्कृतियों के समागम, निरंतर विकास की ओर अभिमुख समाज का वैभवपूर्ण इतिहास इस तरह प्रस्तुत किया है जो अति समृद्ध और ज्ञानवर्द्धक है। मुंडा समाज के इतिहास के संबंध में गैर आदिवासियों द्वारा किये गये अध्ययन में आत्मकथात्मकता का अभाव प्रतीत होता है, जिसे डॉ. सिकरादास तिर्की ने दूर कर दिया है। अपने समुदाय के इतिहास के अन्वेषण और लेखन में उनका लगन प्रशंसनीय है।

झारखंड के आदिवासी इतिहास, साहित्य और संस्कृति के दृष्टिकोण से ही नहीं वरन् भारतीय इतिहास, साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से भी डॉ. सिकरादास तिर्की का यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

डॉ. इग्नासिया टोप्पो (कुल्लू)

प्रस्तावना

झारखण्ड का यह भूभाग न केवल विश्व का एक प्राचीनतम भूखण्डों में से एक है, बल्कि इसमें निवास कर रहे बहुत से समुदाय भी आदिम युग के हैं। इन आदिम युगीन समुदाय में कोल्ह या आग्नेय, द्रविड़ एवं नाग कुल के लोग आज अपना इतिहास स्वयं बतलाने लगे हैं। द्रविड़ कुल में उराँव, मल्तो और किसानी इत्यादि तथा नाग कुल में सदान, कुरमी आदि आते हैं। नाग गोत्र आज भी मुण्डा और सदान में समान रुप से मिलता है। उदाहरण के लिए डॉ0 विनोद वराय नाग, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, जेठा नाग, ए0 जी0 बिहार, राँची इत्यादि मुण्डा समुदाय से तथा डॉ0 कृष्ण कुमार नाग, पूर्व कुलपति, राँची विश्वविद्यालय एवं प्रो0 रविलाल नाग, रीडर, गोस्नर कॉलेज, राँची इत्यादि सदान समुदाय के अन्तर्गत आते हैं। मुण्डारी की पौराणिक कथा सोसोबोंगा के पात्र केरकेट्टा, ढेचुवा, कौवा, लिपी (पक्षी) आदि गोत्र मुण्डा, खड़िया और उराँव जनजातियों में समान अर्थ में हैं। इतना ही नहीं छोटानागपुरी या झारखण्डी समुदाय में व्याप्त तिर्की, लकड़ा आदि गोत्र क्रमशः मुण्डा, उराँव, लोहरा जातियों में भी एक अर्थ में मिलते हैं।

कालक्रमानुसार झारखण्ड के निवासियों को कोल, द्रविड़, अनार्य, असुर आदि नाम से सम्बोधित किया गया है। अग्नेय कुल वालों को कोल्ह या कोलारियन रेस का भी माना जाता रहा है। द्रविड़ तो दक्षिण भारतीय माने ही जाते हैं तथा इन्हें अनार्य ही कहा गया है। नागों को भी अनार्य ही सम्बोधित किया गया है।

झारखण्ड अथवा छोटानागपुर का इतिहास प्रायः लिखा नहीं गया है और जो कुछ, थोड़ा-बहुत लिखा भी गया है या जो सामग्री उपलब्ध है, वह पर्याप्त नहीं है इसके सही इतिहास को प्रस्तुत करने के लिए। अतः झारखण्ड के इतिहास पर कार्य करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। झारखण्ड का इतिहास यहाँ के प्राचीन अथवा आदिम निवासियों के लोक-साहित्य में जाने-अनजाने जुड़ता गया हैं। इन विभिन्न जातियों का अपना समृद्ध लोक साहित्य है। आवश्यकता है तो बस इन आदिम जातियों या मूल निवासियों

के लोक साहित्य में ऐतिहासिक तथ्यों की खोज की। यदि सभी अपने-अपने लोक साहित्य में ऐतिहासिक तथ्यों की खोज करें और प्रकाशन में लायें तो एक बड़ी उपलब्धि होगी । इन अलग-अलग ऐतिहासिक तथ्यों के प्रकाश में आ जाने से इनका एक तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित होगा और झारखण्ड का सही इतिहास लिखा जा सकेगा। वस्तुतः यह कार्य बिना अनुसंधान कार्य के सम्भव भी नहीं है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर मैंने मुण्डाओं के इतिहास को मुण्डारी लोक साहित्य में ढूंढ़ने का प्रयास किया है। क्योंकि मुण्डाओं के बीच भी प्रायः अन्य झारखण्डी समुदायों की तरह पढ़ने-लिखने की मौखिक परम्परा रही है। लिखित सामग्री के अभाव में मौखिक साक्ष्यों को ही इतिहास लेखन का आधार बनाया गया है। लेकिन मौखिक ऐतिहासिक परम्परा श्रुति या स्मृति पर आधारित होती है। जिसमें सुनने तथा स्मरण रखने में किंचित भूल भी एक भ्रामक स्थिति पैदा कर सकती है, जिसका डर हमेशा बना रहता है।

मुण्डारी लोक साहित्य का अक्षय भण्डार रहा है। इस अक्षय लोक साहित्य के सागर से इतिहास के मोती ढूँढ़ना गहरे समुद्र में गोते मारने से कहीं अधिक श्रम साध्य है। फिर प्राप्त मोतियों को ऐतिहासिक कालक्रम के अनुरूप गूँथकर एक माला का रूप देना तो और भी जटिल कार्य है क्योंकि कुशल हाथों के अभाव में उस हार के टूट जाने का खतरा भी बना रहता है। मुण्डारी लोक साहित्य सागर से ऐतिहासिक तथ्यों को खोज निकालने तथा उसको परखने के क्रम में कहीं चूक हो जाने की सम्भावना भी है।

मुण्डारी लोक साहित्य मौखिक परम्परा से समाज में जीवित है और मुण्डा समाज को अपनी सुधा वर्षा से आप्लावित करता रहा है। मुण्डाओं के जीवन में परिवर्तन बहुत कम हुआ है। विशेषकर प्राचीन काल तथा मध्य काल के मुण्डाओं में जो संस्कार एवं संस्कृति उस समय थी, वह आज भी यथावत है। विशेषकर ठेठ ग्रामीण क्षेत्रों के मुण्डाओं के जीवन में आधुनिक सभ्यता एवं शिक्षा कोसों दूर है। जो भी परिवर्तन मुण्डाओं में दिखाई पड़ रहा है बस शिक्षित मुण्डाओं एवं शहरी क्षेत्र के सम्पर्क के आनेवालों के बीच ही है ।

झारखण्ड का इतिहास केवल राजा महाराजाओं के सिंहासनारुढ़ होने का विवरण मात्र नहीं है। मुण्डा जीवन की झाँकी, उनकी संस्कृति एवं उनका सम्पूर्ण जीवन यापन विधि-वृतान्त का चित्रण भी यहाँ का इतिहास है। अर्थात

मुण्डा लोग प्राचीन काल से अब तक कैसे पहुँचे ? वे क्या करते थे ? कहाँ रहते थे और कहाँ-कहाँ आकर बस गए ? इनका भी विवरण इस अनुसंधान के क्रम में मिलेगा; जो निःसन्देह मुण्डाओं के इतिहास के साथ ही साथ झारखण्ड का इतिहास भी बताएगा।

प्रायः झारखण्ड का इतिहास अंधकार के आवरण से आवृत है। कभी लोग झारखण्ड के प्राचीन निवासियों में मुण्डा को, कभी उराँवों को कभी खड़िया को तो कभी सदानों को ठहराते रहे हैं। लोक साहित्य के विश्लेषण से यह तथ्य स्पष्ट हो सकेगा कि कौन सर्वाधिक प्राचीन हैं? यह उनके आपसी प्रेम, सहिष्णुता एवं एकता का प्रमाण है।

इस अनुसंधान कार्य में झारखण्ड के इतिहास को ढूँढ़ने का प्रयत्न है। मैं नहीं जानता कि मैं इसमें कितना सफल हो पाया हूँ। परन्तु इतना विश्वास अवश्य है कि यह शोध कार्य झारखण्ड एवं मुण्डारी प्रेमियों को निश्चित रुप से आकर्षित करेगा। उन्हें इस विषय में कुछ सोचने, समझने एवं लिखने-लिखाने की प्रेरणा अवश्य मिलेगी। इसकी त्रुटियों-कमियों को दूर कर एक नूतन झारखण्ड का इतिहास लिख पाना सम्भव हो सकेगा। यह काम पहली बार में तो सम्भव नहीं है लेकिन ऐसे ही सद्प्रयासों से झारखण्ड का वास्तविक इतिहास प्रकाश में आ सकेगा तथा लोगों के भ्रम को, गतिरोध को दूर कर सकेगा।

सिकरादास तिर्की
व्याख्याता
जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग (मुण्डारी)
रामलखन सिंह यादव महाविद्यालय, कोकर,
राँची (झारखण्ड)

विषय सूची

क्र.सं.	पृष्ठ संख्या
अभिमत	7
प्रस्तावना	9
प्रथम अध्याय	
मुण्डारी लोक साहित्य का परिचय	15-89
मुण्डारी लोक साहित्य का सामान्य परिचय	15
मुण्डारी लोक साहित्य में ऐतिहासिक तथ्य	36
द्वितीय अध्याय	
मुण्डारी लोक साहित्य में प्रागैतिहासिक तथ्य	90-129
प्रागैतिहासिक का तात्पर्य	90
राजनैतिक तथ्य	92
आर्थिक तथ्य	100
सामाजिक तथ्य	104
सांस्कृतिक तथ्य	113
अन्य तथ्य	121
तृतीय अध्याय	
मुण्डारी लोक साहित्य में प्राचीन ऐतिहासिक तथ्य	130-173
प्राचीन इतिहास का तात्पर्य	130
राजनैतिक तथ्य	132
आर्थिक तथ्य	143
सामाजिक तथ्य	150
सांस्कृतिक तथ्य	158
अन्य तथ्य	167

चतुर्थ अध्याय

मुण्डारी लोक साहित्य में मध्यकालीन ऐतिहासिक तथ्य 174-221

मध्यकालीन इतिहास का तात्पर्य 174

राजनैतिक तथ्य 176

आर्थिक तथ्य 189

सामाजिक तथ्य 195

सांस्कृतिक तथ्य 202

धार्मिक तथ्य 213

पंचम अध्याय

मुण्डारी लोक साहित्य में आधुनिक ऐतिहासिक तथ्य 222-262

आधुनिक काल का तात्पर्य 222

राजनैतिक तथ्य 226

आर्थिक तथ्य 233

सामाजिक तथ्य 242

सांस्कृतिक तथ्य 249

अन्य तथ्य 257

षष्ठम अध्याय

निष्कर्ष और मूल्यांकन 263-282

प्रागैतिहासिक काल और मुण्डारी लोक साहित्य 263

प्राचीन काल और मुण्डारी लोक साहित्य 268

मध्य काल और मुण्डारी लोक साहित्य 272

आधुनिक काल और मुण्डारी लोक साहित्य 276

8. उपसंहार 283-294

9. सहायक ग्रंथ-सूची 295

10. परिशिष्ट 301-320

लोक साहित्य के संकलन स्रोत 301

साक्षात्कार विवरण 301

ऐतिहासिक संदर्भ के कुछ लोकगीत (शब्द-चित्र) 303

मुण्डारी लोक साहित्य का सामान्य परिचय

मुण्डारी भाषा विश्व भाषा समुदाय की आग्नेय या आस्ट्रिक भाषा परिवार की प्रमुख भाषा है। यह विश्व भाषा खण्ड के यूरेशिया खण्ड के अन्तर्गत आती है। भाषा वैज्ञानिकों ने आस्ट्रिक भाषा को दो वर्गों में बाँटा है- आस्ट्रो एशियाटिक और आस्ट्रोनेशियन। जिसका विस्तार भारत से आस्ट्रेलिया तक है। दक्षिण पूर्व एशिया की भाषाओं को आस्ट्रोएशियााटिक और प्रायद्वीपीय भाषाओं, जैसे- इन्डोनेशिया, माइक्रोनेशिया तथा पोलेनेशिया की भाषाओं को आस्ट्रोनेशियन के अन्तर्गत शामिल किया गया है।

भारत में कही जानेवाली आस्ट्रोएशियाटिक भाषा का विस्तार बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मध्य-प्रदेश, असम और अण्डमान निकोबार द्वीप समूह तक हैं। यहाँ की मुण्डारी, संताली, हो, खड़िया, असुरी, बिरहोरी, सावर, भूमिज, गदावा, कोरकु, जुअं, गेतः, बोन्तो, गोरुम और खाँसी भाषाएँ हैं।

मुण्डारी भाषा के विद्वान दिलवर हंस ने अपनी पुस्तक 'होड़ो जगर रेअः एतेःहइसि नङगम ओड़ोः हरा रनकब' में दुलायचन्द्र मुण्डा की किताब 'सुड़ासंगेन' या पल्लव में और श्री डी0 एन0 मजुमदार ने अपने ग्रंथ 'द अफेयर्स ऑफ ए ट्राइब' में आस्ट्रोएशियाटिक भाषा को दो शाखाओं में बाँटा

है- मोनख्मेर और मुण्डा। ''मोनख्मेर' के अन्तर्गत- मोनख्मेर पलौंगवा, खासी और निकोबारी।''[1]

फिर ''मुण्डा के भी दो विभाग हैं- खेरवारी और अन्य। खेरवारी के अन्तर्गत मुण्डारी, संताली, हो, खड़िया, असुरी, भूमिज, थारु आदि बोलियाँ आती हैं।'' [2]

उपर्युक्त वर्गीकरण के आलोक में आस्ट्रिक अथवा आग्नेय भाषा को

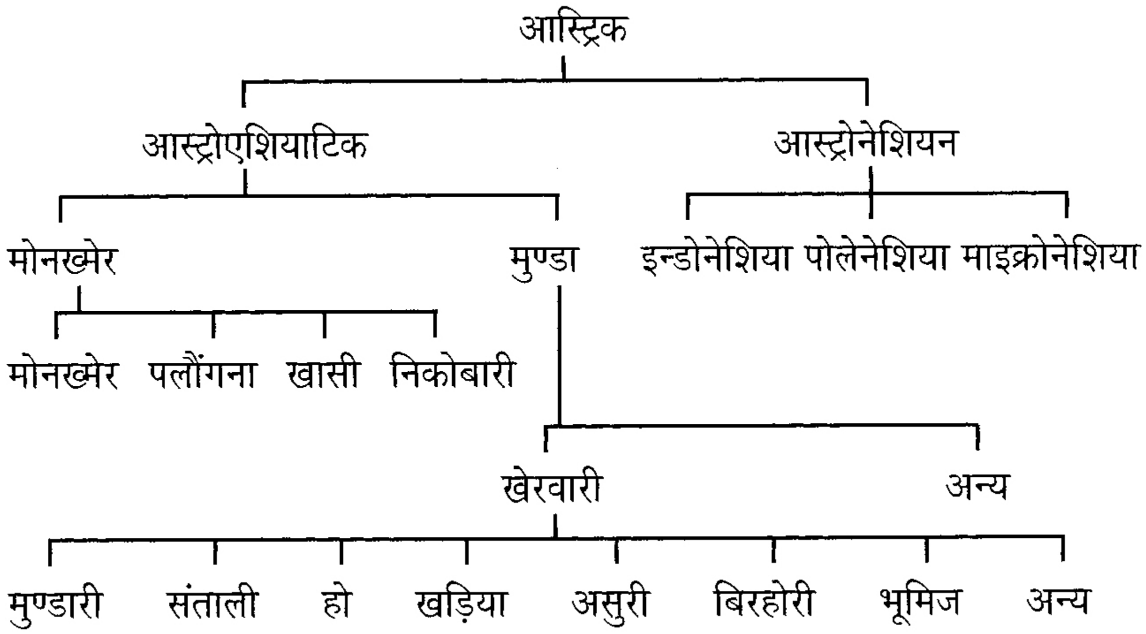

इस प्रकार से दर्शाया जा सकता है:-

भाषा विज्ञान की दृष्टि से यदि हम विचार करें तो मुण्डारी योगात्मक भाषा है। ''योगात्मक भाषाओं में सम्बध तत्त्व और अर्थ तत्त्व दोनों में योग हो जाता है; अर्थात् दोनों मिले-जुले रहते हैं। 'मेरे घर आना' हिन्दी का एक वाक्य लें। इसमें 'मेरे' में अर्थतत्त्व (मैं) तथा सम्बध तत्त्व (संबंध वाचकता प्रकट करने वाला प्रत्यय जिसके कारण 'मेरे' शब्द बना है और जिसका कारण इसका अर्थ 'मैं का' हुआ है) दोनों मिले-जुले हैं।'' [3]

उसी प्रकार मुण्डारी का एक वाक्य 'रामः ओड़ाः तनाः' (राम का घर है) लें। इसमें राम् (अर्थ तत्त्व) + अः(सम्बन्ध तत्त्व) 'का' के लिए आया है। इसमें अर्थ तत्त्व और संबंध तत्त्व का योग है।

''योगात्मक भाषाओं के योग की प्रकृति के आधार पर तीन वर्गों में बाँटा जाता है-

(क) प्रश्लिष्ट-योगात्मक (Incorporating),
(ख) अश्लिष्ट-योगात्मक (Simpleagglutinative) और
(ग) श्लिष्ट-योगात्मक (Inflecting)।

(क) प्रश्लिष्ट-योगात्मक भाषाएँ : - प्रश्लिष्ट-योगात्मक भाषाओं में संबंध तत्त्व तथा अर्थ तत्त्व का योग इतना मिला-जुला होता है कि उन्हें अलग-अलग न तो पहचाना जा सकता है और न एक को दूसरे से अलग किया जा सकता हैं, जैसे संस्कृत 'ऋतु' से 'आर्तव' या 'शिशु' से 'शैशव'।''[4]

इसी तरह मुण्डारी में 'होन' ये 'बलेः' या 'लिन्डुं' (छोटा बच्चा) और 'नुबाः' से 'निन्दा' अथवा 'कलकुलनिदा' (अंधियारी रात) आदि।

''प्रश्लिष्ट-योगात्मक भाषाओं के भी भेद किये गए हैं। एक में योगपूर्ण रहता है और दूसरे में आंशिक या अपूर्ण।

(1) पूर्ण प्रश्लिष्ट-योगात्मक भाषाएँ :- इन भाषाओं में संबंध तत्त्व और अर्थ तत्त्व का योग इतना पूर्ण रहता है कि पूरा वाक्य लगभग एक ही शब्द बन जाता है। इस प्रकार की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वाक्य में पूरे शब्द नहीं आते, बल्कि उनका कुछ अंश छूट जाता है और इस प्रकार आधे-आधे शब्दों के संयोग से बना हुआ लम्बा-सा शब्द ही वाक्य हो जाता है। ग्रीनलैण्ड तथा अमेरिका के मूल निवासियों की भाषाएँ इसी प्रकार की हैं। कुछ उदाहरण लिये जा सकते हैं-

(अ). दक्षिणी अमेरिका की चेरोकी भाषा में--

नातेन = लाओ; अमोखेल = नाव; निन = हम। इन शब्दों से वाक्य बनाने में शब्द अपना थोड़ा-थोड़ा अंश छोड़कर इस प्रकर मिलते हैं कि एक बड़ा-शब्द बन जाता है-

'नाधोलिनिन' = हमारे पास नाव लाओ।''[5]

ऐसा ही मुण्डारी भाषा में भी है। जैसे- दोला = चलो, अलं = हम दोनों। इन दोनों को मिलाकर एकशब्दीय वाक्य बनता है- 'दोलं' = हम दोनों चलें। केरः मुण्डारी में- चिका = क्या, अम = तुम, रः = को, इनकु = वे लोग। इन शब्दों से एक वाक्य के रुप में एक शब्द 'चिकामेरःकु' = वे लोग तुम्हें क्या कर रहे हैं, बनता है। ऐसे कितने ही वाक्य मिलेंगे-- इनकिङ = वे दोनों, मिसातेकिन = वे दोनों एक साथ, सेनोःजना=चले गये, से 'मिसातेकिना'

= वे दोनों एक साथ चले गए, आदि।

(2) आंशिक प्रश्लिष्ट - योगात्मक भाषाएँ - इन भाषाओं में सर्वनाम तथा क्रियाओं का ऐसा सम्मिश्रण हो जाता है कि क्रिया अस्तित्वहीन होकर सर्वनाम की पूरक हो जाती हैं। पेरीनीज पर्वत के पश्चिमी भाग में बोली जानेवाली बास्क भाषा कुछ अंशों में आंशिक प्रश्लिष्ट-योगात्मक है। इसके दो उदाहरण दिये जा रहे हैं :-

दकारकिओत = मैं इसे उसके पास ले जाता हूँ।
नकारसु = तू मुझे ले जाता है।
हकारत = मैं तुम्हें ले जाता हूँ।

इन वाक्यों के केवल सर्वनाम और क्रियाएँ हैं। पूर्ण प्रश्लिष्ट की भाँति आंशिक प्रश्लिष्ट में संज्ञा, विशेषण, क्रिया और अव्यय इत्यादि सभी का योग सम्भव नहीं होता।

भारोपीय परिवार की भाषाओं में भी इसके कुछ उदाहरण मिल जाते हैं- गुजराती में- 'में कहयुंजे' का 'मुकुंजे' = मैंने वह कहा। मुल्तानी तथा हरियाणी में मरवाँ = मैंने कहा। मेरठ की बोली में - 'उसने कहा' का 'उन्नेका' आदि।'' [6]

ऐसे आंशिक प्रश्लिष्ट- योगात्मक शब्द आग्नेय भाषा के मुण्डारी में भी मिलते हैं। जैसे-

इदिमञ = मैं तुमको ले जाऊँगा।
इदिजमञ = मैं तुम्हें भी साथ ले जाऊँगा।
ओमञमे = आप मुझे दीजिए।
ओमामञ = मैं तुम्हें दूँगा।
ओमतइपे = तुम लोग उसे दे दो और
'इनिःमेन' का 'निःमेन'(उसने कहा) इत्यादि।

(ख) अश्लिष्ट-योगात्मक भाषाएँ :- मुण्डारी भाषा को अश्लिष्ट-योगात्मक भाषा मानते हुए डॉ0 बाबूराम सक्सेना ने कहा है कि, ''मुण्डा भाषा विश्व के जिस आग्नेय भाषा परिवार से सम्बन्धित है, उसे भाषाशास्त्रियों ने अश्लिष्ट-योगात्मक भाषा में गिना है। योगात्मक भाषाएँ उन्हें कहते हैं जिनमें सम्बन्ध तत्त्व एवं अर्थ तत्त्व के साथ संबंधित तत्त्व जुड़ता जरुर है पर, दोनों की सतह स्पष्ट झलकती है। यह योग पूर्व, मध्य

और अन्त तीनों में होता है। आग्नेय भाषाएँ मध्य योगात्मक, अन्त योगात्मक एवं पूर्वान्त योगात्मक हैं। इनकी कुछ भाषाएँ योगात्मक से अयोगात्मक की ओर जा रही हैं। किन्तु उनके पूर्व रूप के प्रमाण मौजूद हैं। मलेशियायी भाषाओं में अयोगात्मक अवस्था बढ़ रही है। पोलेनेशियायी पूर्णतः अयोगात्मक हो चुकी है'' [7]

पूर्व योगात्मक - ''(न्यूगिनी की मकोर भाषा में)
जम्नफ (मैं सुनता हूँ), वम्नफ (तू सुनता है)
इम्नफ (वह सुनता है), सिम्नफ (वे सुनते है)
उम्नफउ (वे उसकी बात सुनते है)'' [8]

मुण्डारी भाषा में पूर्व योगात्मक- गिड़ि (फेंकना) क्रिया के पूर्व कजि (कहना), उडुं (निकालना), दल (मारना), उर (कोड़ना), इर (हँसुवा से काटना) आदि क्रिया तथा 'जोम' (खाना) के पूर्व अ, न इत्यादि शब्दों के योग से इस प्रकार के शब्द बनते हैं -

कजि + गिड़ि = कजिगिड़ि (अंतिम रुप से कह देना)
उडुं + गिड़ि = उडुंगिड़ि (निकाल कर बाहर कर देना)
दल + गिड़ि = दलगिड़ि (मार कर फेंक देना)
उर + गिड़ि = उरगिड़ि (कोड़कर फेंक देना)
इर + गिड़ि = इरगिड़ि (काटकर फेंक देना)
अ + जोम = अजोम (खिलाना)
न + जोम = नजोम (डाईन)

तथा इन पूर्व जोड़े शब्दों के आगे भी कोई शब्द का योग किया जा सकता हैं। जैसे- 'दल'(मारना) क्रिया के आगे- क+दल से क-दल (केला), कोदे+दल से कोदेदल (मडुवा पीटना), दारु+उडुं से लकड़ी निकालना और बबा+उडुं से बबाउडुं (धान निकालना) इत्यादि हैं।

पूर्वान्त योगात्मक - 'जोम' (खाना) क्रिया के पूर्व और अंत में अनेक शब्दों के योग से बनने वाले शब्द इस प्रकार हैं-

'जोम' (खाना), अजोम (खिलाना), मंडिजोम (भात खाना),
उलिजोम (आम खाना), अजोमिम (तुम उसे खिलाओ)।
अजोमिबेन (तुम दोनों उसे खिलाओ)।
अजोमिपे (तुम सब उसे खिलाओ)।

जोमेम (तुम खाओ), जोमेअम (तुम खाओगे?)।
जोमेबिन (तुम दोनों खाओ), जोमेपे (तुम सब खाओ)।
जोमेयाबु (हम सब खायेंगे), जोमेअलं (हम दोनों खायेंगे)।
जोमेयञ (मैं खाऊँगा) आदि।

मध्य योगात्मक -दल (मारना), अरेः (पानी छींटना), जोम (खाना), सब (पकड़ना), सुकु (पसन्द), सिन्दुरि (सिन्दूर), अद (खोना) इत्यादि शब्दों के बीच में प, पो, पि, स, पु शब्दों के मेल से बनने वाले शब्द इस प्रकार हैं- दपल (आपस में मारा-मारी करना), अपरेः (आपस में पानी छींटा-छींटी करना), सपब (आपस में पकड़ा -पकड़ी करना), सुपुकु (दोनों तरफ से एक-दूसरे को पसन्द करना), सिपिन्दुरि (एक-दूसरे को सिन्दूर देना), अरिद (आँख खोला), असदि (प्यास बुझ जाना) इत्यादि।

"मुण्डा कुल की संथाली भाषा में 'मंझि' (मुखिया) और 'प' (बहुवचन का चिह्न) के योग से बना शब्द -

मपंझि = मुखिया लोग

यहाँ 'प' बीच में जोड़ा गया। इसी प्रकार दल् (मारना) से दपल (परस्पर मारना) होता हैं। [9]

अन्त योगात्मक - मुण्डारी भाषा में कितने ऐसे शब्द मिलेंगे, जिनमें प्रत्यय जुटकर मूल शब्द के अर्थ बिल्कुल बदलकर, दूसरा अर्थ बतलाते हैं। जैसे :-

अद (खोना), अदेर (घुसाना), अदिंग (भीतरघर), अदिका (अधिक), अदेरेम (तुम घुसाओ), अदेरेयञ (मैं अन्दर कर दूँगा), अदेरेयलिं (हम दोनों अन्दर कर देंगे), अदेरेयले (हमलोग इसे अन्दर कर देंगे), अदेरेयएः (वह अन्दर कर लेगा)। 'असि' (मांगना), से असिम (तुम मांगो), असदि (प्यास शांत होना)।

'सका' (चूड़ी), सकोंवा (शंख), सकिंग (सहिया), सकिम (तुम्हारा सहिया), सकिञ (मेरा सहिया)। 'गरा' (पाप), गरोवा (पिंजड़ा), गरजओ (गर्जन)।

'अरा' (आरी), अरातनिः (दामाद), अराः (लाल), अराःबा (लाल

फूल), अरःसा (लाल मिट्टी), अरड़ां (जुवाठ)। 'लेसे' (झबरा हुआ), लेसेर (छूरी की तेज धार), लेसेरेम (तुम धार तेज करो), लोसोद (कीचड़) इत्यादि।

अतः कहा जा सकता हैं कि मुण्डारी भाषा में उपर्युक्त योगों की प्रचुरता हैं। 'मैं' हिन्दी शब्द का अन्त योगात्मक 'मुझे' होता हैं। इस तरह का योगात्मक मुण्डारी लोक गीतों तथा शिष्ट-गीतों और कथाओं में व्याप्त है। जैसे-

लेल (देखना) का 'लेले', रः (रोना) शब्द का 'रगे', निर (दौड़ना) से 'निरे' और बिर (जंगल) शब्द का अन्त योगात्मक 'बिरे' होता हैं। ''कभी-कभी धातु के बीच में एक से अधिक प्रत्यय भी जोड़े जाते हैं। फिलिपाइन की 'टगल' भाषा में 'सुलत्' का अर्थ लिखना होता हैं।'' [10]

- सुनुलत् (तुम लिखना), सुनुमुलत् (लिखा)।

मुण्डारी में 'असि' का अर्थ मांगना या निवेदन करना से 'अनासि' मांगा हुआ। 'रकब' (चढ़ना), रनकब (चढ़ाई), रनाकबगेया (चढ़ाई ही है)। 'ओल' (लिखना), ओनोल (लिखावट), ओनोलनाः (लिखा हुआ), आदि शब्द बनते हैं।

''आग्नेय भाषा में धातुएँ प्रायः द्वयाक्षर होती हैं। बलाघात् इनमें प्रायः प्रथम अक्षर पर दिया जाता है। भाषाशास्त्रियों का अनुमान है कि द्वयाक्षर पहले एकाक्षर रहा होगा। क्रिया में उपसर्ग, प्रत्यय और मध्य विन्यास प्रत्यय मिलते हैं। संज्ञा में लिंग भेद नहीं होता है।'' [11]

''अबुअः होड़ो जगर मियद दो मियद गेअ होनङ, मेन्दो हुड़िंङ लेकाबु नेते हेनते अकनते ओड़ोः लगातिं लेका काबु जमा बेड़न तनते बतिरि-बतिरि जपगर रेबु बिपिनगानोःअकना।'' [12] अर्थात- हमारी मुण्डारी भाषा एक ही है, पर हम कुछ बहुत इधर-उधर बसे हैं और जैसा चाहिए वैसा मिलते-जुलते नहीं हैं, इसलिए बोल-चाल में थोड़ा भेद हो गया है। इसी आधार पर बोल-चाल की दृष्टि से मुण्डारी भाषी क्षेत्र को डॉ0 रामदयाल मुण्डा ने चार भागों में विभक्त किया है - ''इस पुस्तक के साथ मुण्डारी की बोलियों के लिए हम नए नाम प्रस्तावित कर रहे हैं- 'हसादाः' मुण्डारी के लिए तला (मध्य) मुण्डारी, नगुरी मुण्डारी के लिए चेतन (ऊपरी=पश्चिमी मुण्डारी) और तमाड़िया मुण्डारी के लिए (निचली = पूर्वी मुण्डारी)। हमारा प्रस्ताव है कि केरः (राँची के आस-पास बोली जानेवाली) को चेतन (ऊपरी) मुण्डारी का

विस्तार माना जाए।" [13]

उपर्युक्त भाषा क्षेत्रों का भौगोलिक विस्तार इस प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है। हसादाः मुण्डारी का क्षेत्र राँची-चाईबासा मार्ग से पूरब में खूँटी और मुरहू का क्षेत्र पड़ता है। इस इलाके की मुण्डारी को विद्वानों ने ठेठ माना है। नगुरी मुण्डारी का क्षेत्र ठीक हसादाः मुण्डारी से पश्चिम या ऊपरी क्षेत्र कर्रा, तोरपा, बसिया, सिमडेगा, बानो आदि इलाकों में बोली जानेवाली मुण्डारी के क्षेत्र माना जा सकता है। कुछ विद्वान नगुरी मुण्डारी को नागपुरिया का प्रभाव मानते हैं। भाषा से प्रभाव स्वाभाविक है, परन्तु नगुरी का अर्थ नगर से सम्बन्धित हो सकता है। क्योंकि मुण्डारी लोक गीतों तथा लोक कथाओं में नगर का वर्णन व्याप्त है। "नङको परिया रे मियद नगर तइकेना। एन नगर रः लुतुम बुलबुल तइकेना। एन नगर रे मियद राजाए रइज जद तइ केना।" [14] 'अर्थात्- किसी समय एक नगर था। उस नगर का नाम बुलबुल था। उस नगर में एक राजा राज्य करता था।' तमाड़िया मुण्डारी का क्षेत्र बुण्डू प्रखण्ड और तमाड़ का क्षेत्र है तथा अंतिम केरः मुण्डारी का क्षेत्र राँची के चारों ओर पूरब में जमचुवाँ, पश्चिम में ढोएसा-कुकरा, उत्तरमें पिठोरिया काँके का क्षेत्र और दक्षिण में खूँटी प्रखण्ड का अंतिम उत्तरी भाग कालामाटी, सिरी परगना के बरकड़ागी-हेसालोयोंग तक। "केरः राँची सदर अनुमण्डल के राँची, खिजरी, ओरमांझी और काँके प्रखण्ड के उराँव-मुण्डाओं की बोली है। जिसमें रः ध्वनि की विशेषता पायी जाती हैं।" [15]

'तीन कोस पर पानी बदले सात कोस पर बानी', मुण्डारी भाषा के उक्त भेदों का भी यही क्षेत्रगत कारण है। हर क्षेत्र की मुण्डारी अन्य सम्पर्क भाषा के साहचर्य से प्रभावित हुई है। ऐसा होना भाषा की प्रकृति है। हसादाः मुण्डारी में अन्य भाषा का प्रभाव कम है या नहीं है। क्योंकि यह अपनी ही भाषा के मध्य या केन्द्र में अवस्थित है। इसलिए मुण्डारी के विद्वानों ने इसे ही शुद्ध माना है। परन्तु मुण्डारी साहित्य की सृष्टि के लिए चारों प्रकार की मुण्डारी में से कोई भी वर्ग का महत्त्व कम नहीं। मुण्डारी का ठेठ रूप निश्चित रूप से मध्यवर्ती क्षेत्र की मुण्डारी ही हो सकती है। क्योंकि मध्य में होने के कारण यह अपनी ही उप-बोलियों के प्रभाव में आती है। सीमावर्ती क्षेत्रों की मुण्डारी में सीमा पार की भाषाओं का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। भिन्न भाषा बहुल क्षेत्रों में भी मूल भाषा प्रभावित हो जाती है। इतना ही नहीं

राजधानी, औद्योगिक नगर, व्यापारिक शहर एवं भिन्न भाषा बहुल इलाके में भाषा किंचित विकृत हो जाती है। जहाँ मातृभाषा के साथ अलग सम्पर्क भाषा भी चलती है, वहाँ की भाषा भी अपनी सुरक्षा पूर्णतः नहीं कर पाती है। फिर भी मूल भाषा के स्वरूप कई कारणों से इनकी उप-बोलियों में सुरक्षित मिल सकती है। अतः ठेठ या मूल मुण्डारी के लिए मध्यवर्ती मुण्डारी के साथ-साथ उनकी उप-बोलियों के रूपों पर भी ध्यान देना होगा ताकि ठेठ या मूल रूप जहाँ से भी मिले ग्रहण किया जा सके। यही समीचीन भी होगा। वैसे रूपों का चुनाव करना सांगोपांग होगा जिससे मुण्डारी भाषा का अस्तित्व पूर्णतः स्वतंत्र प्रतीत हो। इसे साथ-साथ लेकर चलना होगा। वैसे तो मुण्डारी लोक गीतों का अध्ययन किया जाए तो उसमें दूसरे शब्दों के रूप में आये- नई (नदी), रेअड़ा (जाड़ा), दुमङ (मांदर), बकड़ा (बात), उसड़ा (युवावस्था), टोडंग (समतल भूमि), सेटेर (पहुँचना) आदि नगुरी मुण्डारी के शब्द हैं।

हरेक क्षेत्र में प्रचलित मुण्डारी भाषा के शब्दों को हम मिलाकर देखें तो एक समान अर्थ वाले कई शब्द हो जाते हैं। इस प्रकार का संग्रह साहित्य का पूरक है। जैसे- मरां, बोड़े, बोडे, मारू आदि जिसका अर्थ 'बड़ा' है। 'रोटी' के लिए लद, पिटा, होलोंग, डुम्बाः, तपड़ालद, दूललद, सकमलद, सेकमलद, तिकिलद इत्यादि और कोतः, कोते, कोमन, ओकोतः आदि हसादाः और तमाड़िया मुण्डारी, कोथईः, ओकथईः, ओकथाः, ओकते, कोते केरः मुण्डारी के शब्द हैं जिनका प्रयोग 'कहाँ' के लिए किया जाता है।

''मुण्डारी भाषा के शब्दों पर यदि हम दृष्टि डालें तो मुण्डा लोग देवनागरी लिपि के महाप्राण शब्दों का उच्चारण नहीं कर पाते हैं। अतः मुण्डारी शब्द रचना में ह्रस्वत्व की ही प्रधानता होती है। दीर्घत्व का प्रयोग बहुत ही कम शब्दों में देखा जाता है।''[16] हो तथा संताल जाति के लोगों में भी इसी तरह का प्रचलन है। परन्तु दूसरों के सम्पर्क से तथा क्रोधावस्था में प्रायः वे महाप्राण का उच्चारण कर लेते हैं। इसलिए मुण्डारी भाषा में अल्पप्राण तथा कोमल ध्वनि की प्रधानता है। इसके लिखने में विसर्ग का भी प्रयोग होता है।

किसी भी भाषा में व्याकरण तथा काव्यांग जैसी बात बाद में आती है। तभी तो ''काव्य केवल विद्वानों के पुष्ट दिमाग की ही चीज नहीं हैं, प्रत्युत वह शास्त्र से अनभिज्ञ स्त्रियों तथा बच्चों के भी समझ में आनेवाली वस्तु

है।'' [16] अतः व्याकरण और काव्यांग, कथा अंग बोली रूप से बनती है। इसी (व्याकरण) के माध्यम से भाषा-साहित्य का विकास होता है।

''व्याकरण का शब्दार्थ है - 'टुकड़े-टुकड़े करके निरीक्षण करना।' वास्तव में व्याकरण का काम भी यही है। इसके द्वारा हम वाक्य और शब्द के टुकड़े करके उसकी जाँच-पड़ताल करते हैं। संक्षेप में हम नियमों के उन समूहों को व्याकरण कहते हैं जिनके द्वारा भाषा को शुद्ध किया जाता है। किन्तु भाषा वाक्यों से बनती हैं, वाक्य शब्दों से बनते हैं और शब्द अक्षरों से तैयार होते हैं; इसलिए इन सबको शुद्ध करना भी व्याकरण का कार्य है। सबका मूल, अक्षर है, अतः सबसे अक्षर-प्रकरण ही से काम प्रारम्भ किया जाता हैं।'' [17]

उपर्युक्त परिभाषा के अवलोकन में मुण्डारी 'व्याकरण' शब्द की जगह 'बाइगरंग' (बना हुआ को फिर से बनाना) अर्थात् - 'टुकड़े-टुकड़े करके निरीक्षण करना' से अभिप्रेत है।

संस्कृत तथा हिन्दी की तरह होते हुए भी मुण्डारी व्याकरण में कुछ शब्द अपना विशिष्ट अर्थ रखते हैं। ''इन शब्दों को पारिभाषिक अथवा 'संज्ञा' शब्द कहते हैं।'' [18]

अतः मुण्डारी में भी संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, क्रिया-विशेषण, उपसर्ग, प्रत्यय, समास, संधि, कारक, क दन्त, तद्धित और काल आदि किंचित भेदों के साथ हिन्दी व्याकरण की सभी कोटियाँ विद्यमान हैं।

मुण्डारी में संस्कृत की तरह ''सन्धि के तीन भेद हैं-(1) स्वर सन्धि (2) व्यंजन सन्धि और (3) विसर्ग सन्धि।'' [19]

'लिंग का अर्थ चिह्न होता है। लिंग शब्द उस चिह्न को कहते हैं जिससे वस्तु के पुरुष या स्त्री होने का ज्ञान हो।'' [20] या ''हिन्दी से पृथक् मुण्डारी में व्याकरणगत लिंग भेद नहीं होते। उदाहरण के लिए हिन्दी में जिस तरह हम अकारान्त पुलिंग शब्दों के बाद ई, (लड़का-लड़की) इत्यादि जोड़कर स्त्रीलिंग शब्द बनाते हैं तथा जिस तरह लिंग के साथ ही क्रिया रूप भी बदलते हैं (लड़का जाता है - लड़की जाती है) उस तरह के व्याकरणगत रूप-रचनात्मक परिवर्त्तन मुण्डारी में नहीं होते। मुण्डारी में स्त्रीलिंग-पुल्लिंग दोनों के लिए एक ही क्रिया रूप लागू होता है।'' [21]

जैसे :- एंगाञेः हिजुः तना (मेरी माँ आ रही है)।

अपुञेः हिजुः तना (मेरे पिता आ रहे है)।

इसके अलावे पुल्लिंग-स्त्रीलिंग की पहचान पारिवारिक शब्दों, जीववाचक नैसर्गिक शब्दों, प्राणीवाचक उपसर्गिक शब्दों, उभयलिंग प्रत्ययात्मक शब्दों के प्रयोग से की जाती है। "संस्कृत में लिंग (जाति) तीन हैं- पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और क्लीवलिंग (नपुसंकलिंग)।" [22] उसी प्रकार मुण्डारी में भी पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग हैं। मुण्डारी में नपुंसकलिंग का व्यवहार निर्जीव वस्तुओं के लिए किया जाता है। हो में भी नपुंसकलिंग होता है।

"नागपुरिया तथा 'हो' में भी उभयलिंग होता हैं जिससे दोनों लिंगों (स्त्रीलिंग-पुल्लिंग) का बोध होता है।" [23] जैसेः-

नागपुरी	**हो**	**अर्थ**
छउवा	होन	लड़का/लड़की
गरू	उरिः	गाय/बैल आदि।

संस्कृत की तरह मुण्डारी में भी तीन वचन होते हैं---एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन। एकवचन से द्विवचन बनाने के लिए संज्ञा, सर्वनाम, कर्त्ता, क्रिया आदि के अन्त में किन, लं, बेन या बिन प्रत्यय जोड़ा जाता है और संज्ञा, सर्वनाम आदि शब्दों के अन्त में को, ले, पे और बु प्रत्यय के योग से बहुवचन बनाया जाता है। जैसे-

	एकवचन	**अर्थ**	**द्विवचन**	**अर्थ**	**बहुचन**	**अर्थ**
उत्तम पुरुष -	अञ	मैं	अलं	हम दोनों	अबु	हम सब
मध्यम पुरुष -	अम	तुम	अबिन	तुम दोनों	अपे	तुम सभी
अन्य पुरुष -	इनिः, अएः	वह	इनकिन	उन दोनों	अको/इन्कु	वे सभी

इस तरह हो भाषा में भी "संज्ञा (प्राणीवाचक) के द्विवचन में मूल संज्ञा के अन्त में 'किङ्' या 'कि' तथा बहुवचन में 'को' लगा दिया जाता है।" [24]

जैसे -

वचन	**हिन्दी**	**हो**
एक वचन	लड़का	सिटिया
द्विवचन	दो लड़के	सिटियाकिङ्
बहुवचन	लड़के	सिटियाको

''हिन्दी में आठ कारक हैं। इन कारकों के साथ क्रमशः गणना के रूप में आनेवाले प्रथम, द्वितीय आदि परसर्ग 'विभक्ति' कहे जाते हैं।'' [25] इसी प्रकार मुण्डारी में भी कारक के सभी चिह्न पाये जाते हैं। जैसे :-

कारक	**हिन्दी चिह्न**	**मुण्डारी चिह्न**
1. कर्त्ता	ने, 0	गे, या गेएः, गि, दो।
2. कर्म	को, 0	ते, तेः, तेगे या तेगि।
3. करण	से	ते।
4. सम्प्रदान	को, के लिए	लइ, नं, नतेन, नतिन, नंगेन।
5. अपादान	से	अते, एते, सःते।
6. सम्बन्ध	का, के, की	अर, आन, आद, रः रेअः, हर, ओड़ोः, हड़ोः आदि।
7. अधिकरण	में, पर	रे, रेआ।
8. सम्बोधन	ओ, अरे, हे, अजी	हे, हइ, एइ, होइ, अलइ, अउरि, एला, देला, दोला, लाय, ओ, हए, अमा, अमना आदि।

''बिना विभक्ति के भी कर्त्ता कारक का प्रयोग होता हैं।'' [26] ''कर्त्ता कारक में कोई चिह्न नहीं होता हैं। सिर्फ कर्त्ता का नाम रहता हैं।'' [27]

मुण्डारी में निर्णयात्मक, निश्चयात्मक, प्रश्नोत्तरात्मक, वर्णनात्मक शब्दों या वाक्यों के साथ कर्त्ता का 'ने' चिह्न प्रयुक्त होता है। जैसे - ''राम गे रावण के अःसार तेः गोएः किःया।'' अर्थात् - राम ने रावन को वाण से मारा। इस वाक्य में आया 'गे', ने के लिए और 'ते' कर्म 'को' के लिए प्रयुक्त हुआ है।

मुण्डारी में काल भेद हिन्दी की तरह होते हैं और भूतकाल के सभी भेदों या हिन्दी की भाँति ही मुण्डारी में कर्त्ता के 'ने' चिह्न का उपयोग किया जाता हैं। जैसे - 'अमदोम जोम केदा?' (क्या तुमने खा लिया ?), 'हे अञदोञ जोम केदा' (हाँ, मैंने खाया)। 'नःगेञ जोम केदा' (मैंने तुरत खाया), 'इनिः दो जोम तन केना' (वह खा रहा था), 'इन्कु दो जोम केदा जाः!' (उन्होंने खा लिया होगा) आदि।

उपर्युक्त वाक्यों में आये 'गे' गेञ, दो, दोञ' शब्द कर्त्ता के 'ने' चिह्न

के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इसके बावजूद मुण्डारी लोक गीतों में भी 'ने' चिह्न का प्रयोग मिलता है। एक ओरजदुर लोक गीत देखा जा सकता है-

हए जिंजिरि जिंजिरि हेसा दो	अर्थात् - इस झिंझरी पीपल को
हए बम्बरू बड़े।	इस विशाल बरगद को।
ओकोए गे रोअले हेसाः दो	किसने रोपा था पीपल को
चिमए गे पोअःले बड़े ?	किसने लगाया था बरगद को?
मुण्डाकोगे रोअः ले हेसाः दो	मुण्डाओं ने रोपा था पीपल को
संतालको गे पोअः ले बड़े।	संतालों ने लगाया था बरगद को।

परन्तु मुण्डारी भाषा-परिवार की सबसे अधिक मिलती-जुलती भाषा 'हो' में "कर्त्ता का 'ने' तथा कर्म का 'को' चिह्न का लोप हो जाता है।" [28]

मुण्डारी में भी हिन्दी तथा संस्कृत की तरह अकर्मक और सकर्मक भेद से क्रिया के दो भाग होते हैं।

लिपि का जहाँ तक प्रश्न है, देवनागरी संसार की प्राचीनतम एवं वैज्ञानिक लिपि है। इसमें जैसा बोला जाता है प्रायः वैसा ही लिखा भी जाता है। छोटानागपुर की आदिवासियों की भाषा एवं क्षेत्रीय भाषाओं को लिखने में देवनागरी लिपि उपयुक्त सिद्ध हुई है। इसके अलावे मुण्डा लोक कथाएँ नामक ग्रंथ में जगदीश त्रिगुणायत तथा अन्य विद्वानों ने खुलकर लिखा है कि, "तथ्य तो यह है कि भारत में जब आर्य जाति आई, तब वह न तो एक प्रजाति रह गई और न उसके नाम से जानी गई संस्कृति एक जाति की संस्कृति रही। निःसंदेह आर्य बहुत थोड़ी संख्या में भारत आये होंगे। उन पूर्वागन्तुकों की अपेक्षा तो बहुत ही थोड़ी, जो न जाने कब से आकर और क्रमशः विकसित होकर अपार संख्या में सारे देश में छाये हुए थे। अवश्य ही आर्यो ने अपनी ऊँची मेधा और प्रतिभा के बल पर, पूर्व निवासियों के लिए अज्ञात, बहुत से रहस्यों को खोजा और इन्हीं उद्भावनाओं को जन्म दिया, किन्तु उनकी नूतन संस्कृति के अधिकतर उपकरण वही रहे, जिन्हें हजारों वर्षों की साधना से पूर्ववर्ती आर्येतर जातियों ने प्राप्त किया था और जिनपर आर्यो ने केवल अपनी मुहर लगाकर अपना बना लिया।" [29]

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि देवनागरी लिपि छोटानागपुर की भाषाओं के अनुरूप ही निकली। क्योंकि आर्यो के भारत आने के पूर्व भारत में मुण्डा तथा अन्य आदिवासियों की अपनी भाषा संस्कृति थी।

आर्यो ने इनकी भाषाएँ तथा संस्कृति को अपनाया होगा। द्रविड़ तथा आग्नेय भाषाओं को अपनी भाषा के साथ उपयोग कर संस्कार की गई भाषा संस्कृत का निर्माण किया गया होगा। यही कारण है कि आग्नेय तथा द्रविड़ भाषा के शब्दों और संस्कृत के शब्दों से समानताएँ हैं।

"भारतीय संस्कृति के प्राक् आर्य तत्त्वों में आग्नेय तथा द्रविड़ दोनों तत्त्व मौजूद हैं। किन्तु उनमें भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं आग्नेय तत्त्व, क्योंकि वे स्वयं द्रविड़ तत्त्वों के ताने-बाने में भी मौजूद हैं।" [30] "भारतीय भाषाओं के गुणात्मक या ध्वन्यात्मक शब्दों के निर्माण में विशेषतः आग्नेय प्रवृतियों का ही अनुकरण है।" [31]

"भाषा वैज्ञानिकों ने संस्कृत के साढ़े चार सौ के लगभग ऐसे शब्दों को खोज निकाला है जिनका आर्येत्तर स्रोत है। निस्संदेह उनमें से कुछ शब्द द्रविड़ शब्द भण्डार के भी हैं किन्तु वैसे ही कुछ शब्दों का आग्नेय स्रोत भी निर्विवाद है। प्रो0 स्युलुखी ने विभिन्न आस्ट्रिक भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा कदली, कम्बल, वाण, मुकुट, लांगल (हल), ताम्बुल, कपास, मयूर या मरूक, इटिका आदि संस्कृत शब्दों के आग्नेय स्रोत से आने की बात प्रमाणित कर दी है।" [32]

छोटानागपुर की भाषाओं में मुण्डारी, संताली, हो, खड़िया को छोड़कर असुरी, बिरहोरी आदि आग्नेय और द्रविड़ भाषा परिवार का कुडुख (उराँव) आदि आदिवासी भाषाएँ तथा सदानी भाषाएँ नागपुरी, कुरमाली, खोरठा और पंचपरगनिया की अपनी कोई लिपि नहीं है। इसका साहित्य देवनागरी लिपि में लिखा जाता रहा है। क्योंकि यह लिपि भारत की धरती की मिट्टी या भारत की जनता की आत्मा एवं यहाँ की संस्कृति-सभ्यता से निकली है। जिसका सम्बन्ध यहाँ के आदिवासियों के साथ प्राचीन भी है। मुण्डारी भाषा के कितने शब्द तो देवनागरी लिपि 'हिन्दी' में विलय भी हो गये हैं। परन्तु किसी भी भाषा की स्वतंत्रता के लिए लिपि की आवश्यकता जरूरी भी है और नहीं भी। एक लिपि से कई भाषा लिखि जा सकती है। फिर भी मुण्डारी भाषा तथा अन्य आदिवासी भाषा को लिखने में देवनागरी लिपि का महत्त्व अधिक दिखाई पड़ता है। क्योंकि भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हिन्दी की समृद्धि में प्रादेशिक लोक भाषाएँ मद्दगार सिद्ध होगी। साथ ही साथ हमारा लोक साहित्य (मुण्डारी भी) हिन्दी तथा देवनागरी लिपि के माध्यम से

संकुचित न होकर एक विशाल जन-समूह की समझ का साहित्य होने का गौरव प्राप्त करेगा। इसके बावजुद भी देवनागरी लिपि के 'दीर्घ' स्वरों और महाप्राण व्यंजनों का प्रयोग मुण्डारी में नहीं किया गया है। लेकिन इनका भी उपयोग कर भाषा का विकास करना चाहिए। देवनागरी लिपि के अन्य व्यंजन जैसे - थ, ऋ, क्ष, त्र, ज्ञ, ष, श, ठ, ढ, ल इत्यादि तथा स्वर वर्ण ई, ऊ, ऐ, औ इत्यादि का प्रयोग मुण्डारी में नहीं के बराबर मिलता है। ऐसी प्रवृत्ति संताली और हो भाषा में भी पाई जाती है। जैसा कि इन पंक्तियों से पता चलता है कि, "The Santals, the Mundas and the Ho's speak very much the same language with the same grammatical structure. The differences in their respective languages are trifling and probably the result of contact with different Modes of thought and of expression belonging to the different races with whom they come in contact, the vocabulary is much the same in each of these three languages, the Munda word for Man is 'Horo', the Santali word is 'Hor' and the Ho word is 'Ho'." [33]

मुण्डारी मधुर एवं कोमल प्रधान भाषा है। सम्भवतः हिन्दी तथा संस्कृत से कहीं अधिक समृद्ध हो सकता है। जो व्यावहारिक रूप में कई शाखाएँ बनकर छोटानागपुर क्षेत्र की सबसे बड़ी भाषा के रूप में उपलब्ध है। इतना होते हुए भी मुण्डारी तथा अन्य आदिम जातियों की भाषा के विकास के लिए हिन्दी और संस्कृत आदि का साहित्य का सहारा लेना पड़ रहा है। इसका मुख्य कारण है उच्च कोटि के लिखित साहित्य का अभाव। आज भी इस प्रदेश में प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर मुण्डारी में शिक्षा न देकर अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत में ही शिक्षा दी जा रही है। इस दिशा में हमारी सरकार कदम उठा रही है, परन्तु वह अब तक सफल नहीं हो पाई है। फिर भी मुण्डारी भाषा-भाषियों के हृदय में अपनी भाषा से प्रेम है। इसकी प्रतिष्ठा एवं गौरव अक्षुण्ण है। मुण्डारी प्रदेश में ये सदियों से पूजा-पाठ एवं सामाजिक, राजनैतिक सभी तरह के विषयों की मीमांसा अपनी भाषा में करते हैं। गीत, वार्त्ताएँ, कहानियाँ, बुझौवल, कहावतें आदि का प्रयोग अपनी ही भाषा में नितदिन हुआ करता हैं। इस तरह मुण्डारी भाषा आदि काल से अब तक मौखिक रूप से सुरक्षित रहती आयी है।

मुण्डा जाति अन्य आदिवासियों की भाँति मुख्यतः वन-पर्वतों में

बसती आई है। इसलिए इनकी सभ्यता एवं संस्कृति जंगली या असभ्य नहीं है। अज्ञानता एवं आर्थिक अभाव के कारण भले इनकी संस्कृति असभ्य लगे। परन्तु अतीत में इनकी एक सभ्यतम संस्कृति रही होगी। जैसा कि इनकी संस्कृति के अवशेषों के दर्शन से प्रतीत होता है।

सन् 1991 ई. की जनगणनानुसार मुण्डा जाति की जनसंख्या 899162 है, तथा मुण्डारी भाषा-भाषी की संख्या 667872 है। इसके अतिरिक्त मुण्डारी भाषा से संबंधित जनजाति संताल,हो, खड़िया, कोरकु, भुमिज, गदावा, सवरा आदि द्वारा बोली जाती है। पुराने राँची जिले में यह 5-6 लाख मुण्डाओं द्वारा बोली जाती है।" [34] असम तथा अण्डामान निकोबार में मुण्डारी भाषा तथा मुण्डा जातियों का प्रवास छोटानागपुर से हुआ है।

मुण्डारी भाषा-भाषियों की अपनी भाषा से इनता प्रेम होते हुए भी आश्चर्य यह है कि इस भाषा साहित्य की वृद्धि की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। सिन्धुघाटी सभ्यता और भारत में विभिन्न क्षेत्रों जैसे- हिमालय की तराई से उत्तर-मध्य भारत, दक्षिण और उत्तर पश्चिम-दक्षिण-पूरब से छोटानागपुर में निश्चित रूप से फैला हुआ है फिर भी साहित्य सृजन की जिज्ञासा इनमें दिखाई नहीं पड़ती। यहाँ अपनी मातृभाषा की उपेक्षा कर संस्कृत जैसी भाषाएँ तथा संस्कारों को ही प्रायः अपनाया जा रहा है।

मुण्डारी साहित्य का सृजन नहीं होने का मुख्य कारण है राज्याश्रय की प्राप्ति का न होना। पहले पूरे देश में इस प्रकार की भाषाओं का अपने समाज को छोड़कर राजकीय स्तर पर कोई महत्त्व नहीं था। मुण्डारी भाषा सबसे पहले ब्राह्मी लिपि, उड़िया लिपि और कैथी लिपि में लिखी गई थी। परन्तु अब इसका कोई प्रमाण नहीं है। कैथी लिपि का प्रमाण कहीं-कहीं 'ससंग दिरि' (श्मसान) घाट के पत्थर और खतियानों में मिल सकता है। अंग्रेजी शासन काल में "विभिन्न मिशनरियों की स्थापना 1845 से 1919 ई0 तक छोटानागपुर में हो गई थी। वे अपने लक्ष्य की ओर इस बीच अग्रसर होने लगे थे। जनता से सम्पर्क स्थापित करने या जनता में अपने धर्म का प्रचार करने के लिए इन्हें लोक-भाषा का ज्ञान अपेक्षित था। तत्कालीन शासकों तथा मिशनरियों को छोटानागपुर में आने पर इनको भाषा-समस्या का सामना करना पड़ा। अतः यहाँ की जनता की भाषाओं को सीखने के लिए वे प्रयत्नशील रहे।" [35]

"पादरी ह्विटली ने राँची आते ही जान लिया कि छोटानागपुर के क्षेत्र में अनेक भाषाएँ बोली जाती है। राँची में हिन्दी, बंगाली, मुण्डारी, ओराँव और नागपुरियाँ।" [36]

"ईसाई मिशनरियों का विचार था कि जनता की भाषा में ही ईसा का संदेश देने से समाज के प्रत्येक वर्ग में स्वस्थ विचारों का प्रचार होगा और उसमें ज्ञान का प्रकाश फैलेगा। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि प्रत्येक धर्म प्रचारक, संस्था से सम्बन्ध रखने वाले ईसाई मिशनरियों ने बाइबिल के अनुवाद कार्य को अपनी योजनाओं में सर्वप्रथम स्थान दिया और बड़ी लगन के साथ उसे पूर्ण करने की चेष्टा की।" [37] क्योंकि "भारतीयों के लिए अंग्रेजी एक विदेशी भाषा थी। सर्व साधारण जनता के लिए इसे पढ़ना और समझना या व्यवहार में लाना अत्यन्त कठिन था। इसी से छोटानागपुर में भी इन मिशनरियों ने बाइबिल का अनुवाद छोटानागपुर की प्रायः सभी भाषाओं में किया। अनूदित भाषा के लिए इन्होंने आवश्यकतानुसार रोमन, कैथी तथा देवनागरी को क्रमशः अपनाया।" [38]

जन-साधारण में बाइबिल के प्रचार के लिए इन मिशनरियों ने अथक परिश्रम किया। बाइबल के अनुवाद के अतिरिक्त इन मिशनरियों ने ईसाई धर्म-निरूपणात्मक पुस्तकें भी लिखीं। इन पुस्तकों में यहाँ की प्रकृति के अनुरूप ईसाई धर्म का निजी ढंग से इन्होंने तत्त्व निरूपण किया। इन पुस्तकों के प्रकाशन के लिए उन्हें प्रेस की भी आवश्यकता हुई। सच कहा जाए तो भारत में मुद्रण कला का प्रचार-प्रसार इन्हीं यूरोपियनों द्वारा हुआ।" [39]

"सन 1871 ई० में राँची में एक लिथोग्राफ प्रेस खोला गया। यह राँची का पहला प्रेस था।" [40] "राँची में भी मुद्रणालय की स्थापना की गई। 1908 ई० के लगभग इन मिशनरियों ने कागज कारखाना तथा छापेखाने की व्यवस्था की। यहाँ से 26 प्रान्तीय भाषाओं में बाइबिल की अनूदित पुस्तकें प्रकाशित हुई।"[41] इसी क्रम में ईसाई मिशनरियों ने ईसाई धर्म से सम्बन्धित मुण्डारी भाषा में अनेकों छोटी-बड़ी धर्म की पुस्तकें रोमन, कैथी और देवनागरी लिपि में लिखीं।

इस समय दो भक्ति धारा की रचनाएँ शुरू हुई। प्रथम मुण्डारी लोक साहित्य का संकलन एवं प्रकाशन, इसे शुद्ध-शुद्ध समझने, समझाने के लिए व्याकरण भी लिखा गया। दूसरा मुण्डारी भाषा में ही मुण्डाओं के लिए इनके

बीच में यीशु का पवित्र संदेश को रखने लिए बाइबल का अनुवाद तथा कई धार्मिक पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ सर्वप्रथम निकलीं।

1850 ई0 के आस-पास से कुछ मुण्डा विदेशी धर्म 'ईसाई' की ओर अपना कदम बढ़ाने लगे। वे अपनी परम्पराओं को छोड़कर अंग्रेज व ईसाई सभ्यता-संस्कृति को पूर्णतः ग्रहण करते गये। "होड़ो जगर रेअः एतेःहइसि नङगम ओडबेः हरा रनकब" नामक पुस्तक के पृष्ठ संख्या 45 से 71 के मध्य का अध्ययन करने से स्पष्ट पता चलता है कि रोमन कैथोलिक पादरी जे हॉफमैन का 'बंइअंकिर' मुण्डारी व्याकरण रोमन लिपि में सबसे पहले 1871 ई0 में निकला था। जिसका द्वितीय संस्करण 1903 में निकला। हॉफमैन का ही 1950 में वृहद् शब्दकोष- 'इनसाइक्लोपिडिया मुण्डारिका' नाम से प्रकाशित हुआ। पी0 वेगनर ने भी जर्मन में इसका अंग्रेजी में व्याकरण तैयार किया। डॉ0 नोतरोत ने के0 डब्लू0 एस0 कनेडी के साथ 1911 ई0 में मुण्डारी भाषा में बाइबिल प्रकाशित करवाया था। इसका द्वितीय संस्करण 1961 में निकला। बंगला के श्री शरत चन्द्र राय का शोध-प्रबन्ध 'मुण्डा एण्ड देयर कन्ट्री' 1912 में प्रकाशित हुआ। 1900 ई0 में बिरसा की मृत्यु के बाद उनके चेले भरमि मुण्डा द्वारा लिखित बिरसा के उपदेशों को आधार बनाकर, लम्बे समय बाद 1966 ई0 में, डॉ0 कुमार सुरेश सिंह ने अंग्रेजी में Dust Storm and Hanging नामक पुस्तक लिखी।

विदेशी मिशनरियों के बाद यहाँ के ईसाई मिशनरियों ने भी सबसे पहले बाइबल से सम्बन्धित मुण्डारी भाषा में गीतों की रचना की। ऐसे रचनाकारों में दाउद दयाल सिंह होरो का 'सुरूद सलुकिद दुरङ' पुस्तक सन् 1931 ई0 में छपी और इसका द्वितीय संस्करण 1966 में निकला। निर्मल सोय ने भी 1940 में मुण्डारी में पुस्तक लिखी। सन् 1942 में डब्ल्यू0 जी0 आर्चर का मुण्डारी लोक गीतों का संग्रह 'मुण्डा दुरङ' पुस्तकालयों को उपलब्ध कराने के लिए प्रकाशित हुआ, इसका द्वितीय संस्करण 1980 में निकला था। सन् 1963-64 में प्रो0 जे0 सी0 तिलमिङ की रचनाएँ- होड़ो जगर आते जुगुतु (हसदाः), नगुरी जगर सोनोतोः, होड़ो जगर सोनोतोः, मुण्डारी सरल शिक्षा, मुण्डा हड़मकोअः कनजि और सिदा पड़ओ डंडय आदि मुख्य है।

ईसाई मिशनरियों ने मुण्डारी भाषा को अच्छी तरह समझने तथा मुण्डाओं को अपनी ही भाषा के द्वारा प्रभावित करने के लिए मुण्डारी में कई

किताबें प्रकाशित की। सन् 1931 ई0 'ए मुण्डारी इंगलिश शब्दकोष', मनदरा भूषण भादुरी का निकला। 1944 ई0 में LANGUAGE HAND BOOK MUNDARI-ANON का निकला तथा A Munda Grammer part-1to3 -1903 में निकला। ईसाई धर्म से संबंधित पुस्तकें, पत्रिकाओं एवं व्याकरणों ने मुण्डा युवकों को जागृत किया। इन्होंने अपने लिए अपने समाज के लिए अपने गीतों को अपनी कलम से लिखकर संग्रह करने की प्रवृति अपनाई। इस प्रकार के कवियों में बुदुबाबु ने रामायण पाला और प्रीति पाला की रचना की एवं श्री राम मुण्डा ने इसको आगे बढ़ाया। परन्तु अपने जीवन काल में ये अपनी रचनाओं का प्रकाशन नहीं कर पाये।

सन् 1947 ई0 के 15 अगस्त को जब हमारा देश अंग्रेजों की गुलामी से आजाद हुआ, तब धीरे-धीरे राजनैतिक जागरूकता के साथ ही साथ यहाँ के आदिवासियों के समाज में आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक परिवर्त्तन आने लगा। भारतीय संविधान में इनके विकास के अवसरों के कानून बने। यहाँ के मुण्डा एवं अन्य आदिवासियों को अपनी भाषा-संस्कृति, धर्म इत्यादि के अनुसार ही इनके विकास के प्रारूप तैयार होने लगे। इसी सिलसिले में मुण्डारी भाषा एवं लोक साहित्य की अनेक पुस्तकें निकलीं। सन् 1957 ई0 में जगदीश त्रिगुणायत का '**बाँसुरी बज रही**' मुण्डारी लोक गीतों का संग्रह एवं धार्मिक गाथा **सोसोबोंगा** निकला जो वर्त्तमान परिवेश में सत्यनारायण कथा के समान समझा जाता है।

मुण्डारी लोक गीतों के अलावे मुण्डा समाज में व्याप्त लोक कथाओं का प्रकाशन बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के द्वारा हुआ। 1960 में मुण्डा समाजसेवी श्री भइयाराम मुण्डा का **'दंड़ां जमाकन कानिको'** प्रकाशित हुआ। सन् 1968 ई0 में श्रीजगदीश त्रिगुणायत का ही '**मुण्डा लोक कथाएँ**' नामक मोटी पुस्तक प्रकाश में आई।

आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ ही मुण्डारी गीतों में नवीनता आई। मुण्डा युवकों ने नयी शैली में अपने गीतों तथा कहानियों को संग्रह कर प्रकाशित करवाया। जिन्होंने मुण्डारी लोक साहित्य को शिष्ट साहित्य का रूप देकर ऊपर उठाया इनमें सर्वप्रथम 1960 में दुलाय चन्द्र मुण्डा के गीत संग्रह '**सुड़ा संगेन** (पल्लव) और 1968 में इन्हीं की दूसरी रचना '**बम्बरू**' (मसाल) निकली। सन् 1967 ई0 डॉ0 रामदयाल मुण्डा के सम्पादन

में रामदयाल मुण्डा, राम मुण्डा, बुदू बाबु, श्री भइयाराम मुण्डा, दुलाय चन्द्र मुण्डा, काशीनाथ सिंह मुण्डा, बलदेव मुण्डा, श्री छटन सिंह मुण्डा, श्री बरदियार, श्री कुलन साय टुटी, श्री सागु मुण्डा आदि बारह कवियों का गीत-संग्रह **'हिसिर'** (हार) नामक पुस्तक निकली। 1967 में ही रामदयाल मुण्डा का सेलेद, गीत संग्रह **'ए'अ नवा कानि'**, (आधुनिक कहानी संग्रह) तथा इन्हीं के सम्पादन में बुदु बाबु का **'रामायण पाला'** और **'प्रीति पाला'** प्रकाशित हुई। 1979 में डॉ0 मुण्डा का ही **मुण्डारी व्याकरण** निकला। 1978 में हॉफमेन का The Munda word. निकला, स्वर्णलता प्रसाद की पुस्तक **'मुण्डारी पाठ'** 1974 में निकली। दिनेश्वर प्रसाद की रचना **'हॉफमैन ऑन मुण्डारी पोएट्री'** 1979 में निकली। 1980 में नागेश्वर लाल का **'मुण्डारी और उसकी कविता'** प्रकाशित हुई। जगन्नाथ महतो का **'मुण्डारी शिक्षक'** और सुलेमान वाडिङ का **'नइमिअः किमिनते'** नामक पुस्तक छपी। हॉफमैन का ही **'इनसाइक्लोपि**डिया मुण्डारिका' का Vol-i A से Vol-iii S तक प्रकाशित हुआ। 1975 ई0 में एन0 के0 सिन्हा का **'मुण्डारी फोनेटिक रीडर'**, 1960 में मर्शलन बैंग का **'मुण्डा रिलिजन'**, 1972 ई0 में **'जी सुकु रेअः होरो'** नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। एन0 सी0 चौधरी रचित सन् 1977 में Munda Social structure नामक पुस्तक छपी। मेनेस ओड़ेया का **'सिंङबोंगा आर एटः एअः बोंगा'** नामक किताब सन् 1968 में तथा 1984 से **मतुराअः कानि** नामक उपन्यास का क्रमशः भाग-1 से भाग-6 तक प्रकाशित हुआ। फिर 1997 **चलो चाय बगान** पत्रिका निकली। 1983 ई0 में राँची विश्वविद्यालय द्वारा **'होड़ो जगरे इतु पुथिः'** निकला। काशीनाथ सिंह मुण्डा का **ससंङबा** (पीले फूल) **मुण्डारी गीत संग्रह** नामक पुस्तक तथा 1982 में **गुइराम** नामक उपन्यास छपा। 1973 में एम0 एम0 मुण्डु का **मुण्डा संक्षिप्त व्याकरण**, 1979 **मुण्डा कुदुम** और **सोलको** तथा 1995 में मुण्डारी शब्दकोष **'मुण्डारी दुङकोढ़ारि'** प्रकाशित हुआ। सागु मुण्डा का **मुण्डाओं का इतिहास** छपा। 1995 में निकोदिन केरकेट्टा का **'मुण्डा कोअः कुदुम'** पुस्तक छपी। महा वेता देवी की **'बिरसा मुण्डा'** नामक पुस्तक सन् 1984 में निकली। बिरसा मुण्डा पर **'धरती अबा'** बलदेव सिंह मुण्डा का तथा कई पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ विभिन्न लेखकों क द्वारा प्रकाश में लायी गई। 1985 में श्री गन्दुरा मुण्डा का गीत संग्रह प्रकाशित हुआ। राजभाषा विभाग, पटना द्वारा 1987 में सिकरादास तिर्की का

'बाचण्डुः आन तोअउ' (वसंत और कोयल) निकला। सन् 1987 में ही प्रो० मानसिद्ध बड़ायउद का **'जोनोका कजिको ओड़ोः कजि रेअः जुगुत को'** नामक पुस्तक छपी। 1988 में विशु लकड़ा का **'सरना संगीत'** गीत संग्रह छपा। सन् 1989 में डॉ० दिलवर हंस का **'संसकिर बम्बरू'** और **होड़ो जगर रेअः एते हइसि' नङगम ओड़ोः हरारनकब** नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। बलदेव मुण्डा का **चंगा दुरङ,** रामचरित मानस का मुण्डारी अनुवाद, पी० पोनेट का **'होड़ो कोअः कजिको', दी रेलिजियस ऑफ दी मुण्डा ट्राइब, स्टडिज इन कमप्रेटिव मुण्डा लिगेस्टिक, सरजोम बा**, निकोदिम केरकेट्टा का **बयंकिर**, सम्पादक बी० बी० नाग का **'मुण्डारी लोक गीतों का संग्रह**, सम्पादक मनसिद बड़ायउद का **'प्राचीन मुण्डारी शिष्ट काव्य'** एवं सम्पादक डॉ० रामदयाल मुण्डा का **'आधुनिक मुण्डारी शिष्ट काव्य'** प्रकाशित है। सोमा सिंह मुण्डा का **'मुण्डा'** 1993 में प्रकाशित हुआ। रामदयाल मुण्डा का **बा बोंगा, अड़ान्दी बोंगा**, विशु लकड़ा **अं मसकल नाटक** 2010 में, मनसिद्ध बड़ायउद का **नवा होड़ो जगर मुंडि** 2005 में, सिकरादास तिर्की का **वन अधिकार अधिनियम 2006** का मुण्डारी में अनुवाद **बिर अकतियर मेनअ नियम 2006**, वीरेंद्र सोय का **अकतियर मेनअ नियम 2006, सेड़ा दुअर** तथा भइयाराम मुण्डा फाउंडेशन द्वारा **बा गानालाङ** का प्रकाशन किया गया।

पत्रिकाओं में, मुण्डारी की तीन पत्रिकाएँ- **'सरना सकम'**, **'जगर सड़ा'** और **'सम्पड़ातिङ'** निकलती थीं। परन्तु धनाभाव और जन-जागृति की कमी के कारण आगे नहीं बढ़ सकी। परन्तु उनके प्रकाशित अंश निःसन्देह ही मुण्डारी भाषा साहित्य के अंग हैं। **आदिवासी साप्ताहिक**, राँची की एकमात्र पत्रिका निकलती थी जिसने मुण्डारी के लेखकों तथा कवियों को आगे बढ़ाने में उल्लेखनीय सहयोग प्रदान किया। पर, यह भी 1986 ई० के आस-पास बन्द हो गयी। वर्त्तमान में छोटानागपुर संताल परगना की आदिवासी तथा क्षेत्रीय भाषाओं की एक मिली-जुली पत्रिका 'जोहार' कल्याण विभाग के सहयोग से शुरू हुई थी तथा 1997 से **जनहक** नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित हो रही है। इसमें मुण्डारी की रचनाएँ भी अन्य झारखण्डी भाषाओं की तरह प्रकाशित होती रहती है। नागपुरी प्रचारिणी सभा, राँची से प्रकाशित **'पझरा'** नामक पत्रिका में भी नागपुरी के साथ मुण्डारी तथा अन्य झारखण्डी भाषाओं की रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

मुण्डारी लोक साहित्य में ऐतिहासिक तथ्य

'इतिहास' शब्द इति+ह+आस के योग से बना है जिसका अर्थ अतीत की घटनाओं का लिखित विवरण होता है। दूसरे शब्दों में यह वास्तव में ऐसा हुआ था, ऐसा ही था, ऐसा ही हुआ का बोध कराता है। परन्तु अतीत की घटनाओं के साथ ही साथ वर्त्तमान में घटित घटनाएँ एवं उपलब्धियों का लिखित विवरण भी इतिहास कहलाता है।

"इतिहास का अर्थ व्यक्ति और घटनाओं का देश-काल की परिधि में अध्ययन है। व्यक्ति और घटनाएँ राजनीतिक भी हो सकती है और सांस्कृतिक भी। वस्तुतः दोनों के समन्वित अध्ययन से ही इतिहास के व्यक्तित्व का वास्तविक अध्ययन होता है।" [43]

पाश्चात्य इतिहास घटना प्रधान होता है। "भारत एवं पाश्चात्य देशों में इतिहास शब्द के अर्थ में मौलिक भेद है। इतिहास शब्द से पश्चिम में केवल तिथियों का ज्ञान ही पर्याप्त माना जाता है किन्तु भारत में सदा से ही इतिहास का अर्थ संस्कृति एवं सभ्यता के अर्थ में लिया गया है। इसीलिए यहाँ साहित्य में बौद्धिक, आध्यात्मिक जीवन के सूक्ष्मतम चित्रों एवं विकास की गाथा का सफल अंकन हुआ है।" [44]

इसी आधार पर मुण्डाओं का इतिहास भी उनकी सभ्यता-संस्कृति के अन्तर्गत उसके सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं अन्य घटनाओं व प्रसंगों से लिया जाता है। छोटानागपुर के अन्य आदिवासियों की भाँति मुण्डा जातियों का भी अपना इतिहास है। मुण्डा समाज में वर्ष गणना ईसा के जन्म के पूर्व की भाँति अभी भी मिलती है। मुण्डा संस्कृति में ई0 सन् के अतरिक्त पारम्परिक गणना पद्धति का महत्त्व अधिक देखने को मिलता है। मुण्डा संस्कृति में पूजा जैसे अवसरों पर इतिहास कहा-सुना जाता है। काम में मदद के लिए मुण्डा परिवार में धांगर-धंगरिन रखे जाते हैं। इन्हें अपने घर के व्यक्तियों के समान माना जाता है। पहले धांगरों को लड़की भी दे दी जाती थी तथा इन्हें जमीन-जगह भी लिख दिया जाता था। एक धांगर का कार्य काल एक वर्ष का होता है। माघ पर्व धांगरों का पूर्ण काल का समय होता है। इसी पर्व के बाद धांगर की विदाई कर दी जाती है और नयें धांगर की व्यवस्था या नियुक्ति कर ली जाती है। इससे सम्बन्धित एक लोक गीत द्रष्टव्य है-

मगे मुंडि दोरे तेबाः लेना	अर्थात्-	माघ-पर्व आ गया
ने मुण्डा कादो रेको बगेइङ देरङ		मुण्डा लोग मुझे छोड़ देंगे
बोचोर नेंडा दोरे नचुर लेना		वर्ष गणना का अंतिम दिन आ गया
ने संता कोदो रेको रड़ाइङ देरङ [45]		संताल मुझे त्याग देंगे

मुण्डाओं में गिनती भी है, जो हिन्दी या अंग्रेजी की तरह ही चलती है। परन्तु 'हिसि'(बीस) आगे की गिनती का मापदण्ड है। इस प्रकार एक सौ को 'मोड़ेंहिसि' - अर्थात् पाँच भाग होता है। यह गणना पद्धति ई0 सन् के पूर्व से मुण्डा समाज में प्रचलित है जिसे स्मरण कर, रस्सी की गाँठ बनाकर या दीवार पर चिह्नित करते थे। इससे सम्बन्धित लोक गीत देखा जा सकता है -

हिसि सिरमा होइङ दसिकेना	अर्थात् -	मैं बीस वर्ष धांगर रहा
हिसि एसंडिदो हुलः जना		बीस हल टूटे
दुंडुंसि परियइङ गुमिकेना		जितनी बार मैं धांगर रहा
दुंडुंसि करा डंडिदोड़ङ जना		उतने ही पाटा- डांग टूटे
हिसि एसंडि हुलाः जना		बीस हल टूटे
ने मुण्डा कोदो रेको बगिङाचि?		क्या मुण्डा लोग मुझे छोड़ देंगे?

दुंडुंसिकरा डंडि दोडङ जना	उतने ही पाटा-डांग टूटे
ने संता कोदो रेको रड़ाइङा चि? [46]	क्या संताल लोग मुझे हटा देंगे?

मुण्डा समाज में दिन, तिथि एवं मास की गणना चाँद और मौसम की सहायता से करते हैं। जैसे- गर्मी से **'जेटे सा'** अर्थात गर्मी ऋतु, वर्षा से **'जरगीसा'** अर्थात वर्षा ऋतु और जाड़ा से **'रबंगसा'** अर्थात शरद ऋतु मुख्य है। मुण्डारी में चाँद के दो पक्ष होते है। पहला हिन्दी के कृष्ण पक्ष को **'मुलुःचण्डुः'** और शुक्ल पक्ष को **'मरङ** (बड़ा) या **गोला चण्डुः'** के नाम से पुकारा जाता है। इनके पर्व-त्योहार एवं शादी-विवाह आदि के दिन चाँद के द्वारा तय होते हैं और तय किये जाते हैं। अब पढ़े-लिखे लोग ई0 सन् तिथि के अनुसार करते हैं, फिर भी चाँद का आधार लेकर ही करते हैं। शादी में सकुन पहले मेहमानी के आने-जाने के क्रम में देखा जाता है। मुण्डाओं में 'लगन' शादी के पहले स्थापित की जाती है। इनके कुछ पर्व-त्योहार एक मास तथा कुछ पूरे मौसम भर मनाए जाते हैं। जैसा कि सरहुल (बा) और मागे अर्थात् माघ-पर्व को एक क्षेत्र में या प्रदेश में बारी-बारी से एक मास तक मनाया जाता है। प्रायः मुण्डाओं में उसी भाँति मण्डा-पर्व समूचे छोटानागपुर में चैत्र मास से ही शुरू होकर मुख्यतः आषाढ़ अर्थात् रथ मेला या जगन्नाथ पहाड़ी मेला के साथ अन्त होता है। इसी प्रकार करम भादो-एकादशी से शुरू होकर अगहन तक चलता है। इसके अलग-अलग नाम है -राइज करम या भादो करम, इंदि करम, दसाईं करम, सोहराई करम, ओड़ाः करम, अखड़ा करम, हटिया करम और अगहन करम इत्यादि। यहाँ के पर्व-त्योहारों का चाँद और मौसम से सम्बन्धित अनेकों लोक गीत एवं शिष्ट गीत हैं। एक-दो करम लोक गीत एवं अन्य गीत देखे जा सकते हैं-

भादो का एकादशी, करमो गड़ाए रे
हे हो, हाँ हो दुतियाही, रंथो चलाए रे

उसी प्रकार -

इसिं दुतिया छो तनाः	अर्थात् -आज(वैसाख) द्वितीय जागरण है
गपा तिरतिया हकन	कल तृतीय झूलन है
एला हो	हे हो
सोनालं दो बोंगा अगुते [47]	हम जायेंगे पूजा करने।

अतः मुण्डाओं का इतिहास प्रायः मौखिक रूप में उनके लोक-साहित्य

में ही मिलता है। इसका लिखित इतिहास विदेशी विद्वानों ने प्रारम्भ किया था। फिर भी अब तक इसका कोई प्रामाणिक इतिहास नहीं आ सका है। इस तरह मुण्डाओं के इतिहास का पता प्राचीन अवशेषों, उनकी संस्कृति, लोक-भाषा, पौराणिक कथाओं तथा लोक साहित्य के विशेष अध्ययन से ही लगाया जा सकता है। परन्तु मुण्डारी लोक साहित्य में ऐतिहासिक तथ्य ऐसे बिखरे पड़े हैं, जैसे नदी के बालू में सोने के कण बिखरे पड़े होते हैं। यही कारण है कि मुण्डारी लोक साहित्य में ऐतिहासिक तथ्य का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करना एक कठिन काम है। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि इसका प्रकाशित रूप का प्रायः अभाव है। इसका बड़ा भाग अभी भी मौखिक है। ये प्रकाशित तथा अलिखित लोक गीत, लोक कथाएँ, कहानियाँ और बुझौवल कब की हैं इसका भी पता प्रायः नहीं चलता है। जिनमें आदिम तथा प्राचीनता मिटकर नवीनता का योग विद्यमान है।

मुण्डा जाति छोटानागपुर के मूल निवासियों में एक मानी जाती है। मुण्डा का अर्थ गाँव का मूल व्यक्ति या मुखिया (हेडमेन ऑफ द विलेज) होता है। मुण्डा जाति अपने को 'होड़ो' भी कहती है। 'होड़ो' का अर्थ मनुष्य होता है। 'हो' तथा 'संताल' भी अपने को क्रमशः 'हो' तथा 'होड़' कहते है, जिसका अर्थ मनुष्य ही होता है। इस होड़ो शब्द की उत्पत्ति में पृथ्वी तथा समस्त जीव-जन्तुओं की सृष्टि के तथ्य भी जुड़े हुए हैं। जब धरती में पानी ही पानी था, तब ईश्वर ने सबसे पहले केकड़ा और मछली से धरती अर्थात् मिट्टी बनाने का आग्रह किया था। इस सम्बन्ध में इनकी एक बड़ी रोचक कथा है। पहले केवल पानी ही पानी था। भगवान पानी पर निष्प्रयोजन घूमा करते थे। उन्होंने सबसे पहले जोंक की सहायता से पानी के अन्दर से मिट्टी निकाली। धरती बनी, उस पर घास, फूस, पेड़-पौधे और पशु पक्षी पैदा हुए। उन्हीं पक्षियों में से **'हुर'** नामक एक पक्षी ने एक अण्डा दिया। अण्डे में से दो मानव संतान एक लड़का और एक लड़की निकली। पीछे उन्हीं से मानव जाति का विकास हुआ। हुर पक्षी के अण्डे से निकलने के कारण मनुष्य **होड़ोको** या **होड़ोहोनको** कहलाये। [48]

पुराणों में दस अवतारों में प्रारम्भिक जीवों में कूर्म एवं मत्स्य अवतार की चर्चा है। दोनों ही जीव-कछुआ और मछली जल जीव हैं। मुण्डारी में भी केकड़ा और मछली का नाम सृष्टि कथा में आया है।

'मुण्डा' होड़ो समाज का बोः (सिर) या मुण्ड अर्थात् एक व्यक्ति की पदवी या मुख्य व्यक्ति माना या कहा जाता है। ''वायु पुराण में छोटानागपुर को **'मुरण्ड'** तथा विष्णु पुराण में **'मुण्ड'** कहा गया है। टामेली ने छोटानागपुर को **'मुण्डल'** कहा है।'' [49]

''मुण्डा शब्द महाभारत में मुण्डाओं के लिए आया है।'' [50] इसी बोः या बोहो शब्द से मुड़ या मुण्ड और आगे चलकर **'मुण्डा'** शब्द बना है। इसी मुण्डा पदवी शब्द से उस वंश के सभी व्यक्तियों को मुण्डा जाति की संज्ञा मिली। ''मुण्डा जाति की अनुश्रुतियों के अनुसार मुण्डा जाति मनु वैवस्वत के छठे पुत्र करूष की संतान हैं।'' [51]

श्री जगदीश त्रिगुणायत ने मुण्डा जाति वाचक शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक **'सोसोबोंगा'** में इस प्रकार से अपना मत दिया है - ''मुण्डा जातीय नाम के साथ एक व्यक्ति की उपाधि भी है। गाँव के प्रमुख को मुण्डा कहा जाता है। वास्तव में यही शब्द कालांतर में जातिवाचक शब्द बन गया है। कर वसूलना और गाँव का शासन चलाना उसी का काम रहा है।'' [52] सन् 1961 ई0, 1971 और 1981 की जनगणनानुसार इनकी जनसंख्या क्रमशः 6,28,931; 7,23,116 और 8,45,887 है।'' [53]

परन्तु यहाँ एक प्रश्न उठता है कि 'मुण्डा' शब्द एक व्यक्ति की उपाधि है तो यह उपाधि उसे किसने दी? इस विषय पर स0 अ0 वि0 दि0 हंस ने अपनी किताब **'होड़ो जगर रेअः ऐतिहाइसि नङगम ओड़ोः हरा रनकब'** में लिखा है कि, ''जर्मनि रेन सेड़ान मक्समूलर निकु मुण्डा ओड़ोः इनकुअः जगर मुण्डा जगर मन्तेः नुतुम तदा इनिः होड़ो तला रे इनकु नेअ नुलुम तेको नुलुम तेको तुनुमेन तना मुनतेएः अयुमलः, एना मेन्ते इनकु मुण्डाए मेतद कोअ।'' [54] अर्थात् - जर्मन के विद्वान मेक्समूलर ने इन लोगों को मुण्डा और उनकी भाषा को मुण्डारी का नाम दिया। वह मुण्डाओं को आम मनुष्यों के बीच में इसी नाम से पुकारते हैं, ऐसा उन्होंने सुना था। इसलिए इनको उसने **'मुण्डा'** कहा।

फेडरिक-मिलर ने भारत की इन भाषाओं के लिए एक सामान्य नाम **'मुण्डा'** की कल्पना की। मुण्डा एक प्रसिद्ध जाति थी। अपने अस्तित्व से प्रेम रखने के कारण, केवल उसी के पास आग्नेय भाषा सबसे अधिक मौलिक रूप में सुरक्षित थी। **'मुण्डा'** शब्द भी काफी पुराना है और इसमें **'कोलेरियन'**

शब्द की वह दुर्गन्ध भी नहीं थी जिसे पूर्व युग में साम्प्रदायिक घृणा के कारण प्रचारित किया गया था; और जिसे, स्वयं ग्रियर्सन ने अपने साम्प्रदायिक उद्देश्य यों की सिद्धि के लिए चलाना चाहा था। तब से मुण्डा शब्द ही इन भाषाओं के लिए प्रयुक्त हेने लगा।'' [55]

राँची जिले के चारों ओर केरः मुण्डारी का क्षेत्र है जो उराँव-बहुल क्षेत्र है। इन इलाकों के गाँव में एक मूल व्यक्ति होता है जिसे **'मुण्डा'** कहा जाता है। अतः मुण्डा का जन्म सिर से हुआ। सम्भवतः **'मुण्डा'** शब्द उराँवों ने दिया होगा और उराँव (उरांग) शब्द मुण्डाओं ने। **उराँग** या **उराँव** मुण्डारी शब्द है। उराँव शब्द का अर्थ धड़ाधड़ कोड़ना और उरांग का अर्थ केड़ते-कोड़ते सुबह कर देना होता है। वर्त्तमान खूँटी सबडिवीजन में **'मुण्डा'** शब्द को मुण्डाओं ने और सिंहभूम में **'हो'** जातियों ने दिया है। मुण्डा का ही एक हिस्सा **'हो-मुण्डा'** जो युद्ध में अग्रणी थे; **'लड़का'** कहलाये। किसी समय इन्होंने संतालों को युद्ध में पराजित किया था। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोक गीत देखा जा सकता है--

तेरा होको तुपुञ तना	अर्थात् -देखो, भाइयों तीर की लड़ाई
जिकिलता पिड़िरे	जिकीलता(गाँव) के मैदान में
तेरा होको मपः तना	देखो बन्धुओं मार-काट
लोवा गड़ा टोडङ रे	लोवागड़ा टाँड़ में
तेरा होको डिगिरि केदा	देखो, भाइयों जीत लिया
कोमपाट लड़का को	श्रेष्ठ लड़ाके
मरा होको हरतिं जना	देखो बन्धुओं हार हुई
तेलेंगा सनतरि को [56]	दुश्मन संतालों की

मुण्डाओं को समय-समय पर निषाद, शबर और कोल भी कहा गया है और इनकी संस्कृति को अरण्य संस्कृति माना गया है। ''प्राचीन संस्कृति-साहित्य में पूरी आग्नेय शाखा का नाम निषाद मिलता है कहीं-कहीं शबर नाम आया है। इसकी विभिन्न शाखाओं के अलग-अलग नाम पुण्ड्र, कलिन्द आदि भी मिलते हैं। कोल नाम बाद का है। वेदों में यह शब्द नहीं आया है।'' [57]

प्रागैतिहासिक काल में मुण्डा लोग उत्तरी-पूर्वी भारत तथा सीमावर्ती

देशों में थे। वहाँ से कुछ लोग आस्ट्रेलिया की ओर चले गये, परन्तु मुण्डाओं का मुख्य दल उत्तर की ओर चीन-तिब्बत होते हुए सिन्धु नदी के किनारे-किनारे खैबर घाटी पार कर काबुल होते हुए भू-मध्यसागर के तटों में जाकर मूल रूप में बस गया। यहाँ हो, संताल, खड़िया, उराँव आदि छोटानागपुर की समस्त जनजातियाँ मौजूद थीं। भू-मध्यसागर के उत्तर में सीसीपिड़ी (एक प्रकार का पौधा, जिसका फूल लाल होता है, उसी सीसी पौधा के पास का मैदान से **'सीसीपिड़ी'** बना) नामक जगह एवं लाल सागर के पूरब में मिलन स्थल (**नपम टयद**) आदि था। इसका एक दल भू-मध्यसागर के तटों से अफ्रिका की ओर गया फिर इरान, इराक होते हुए भारत में मुण्डाओं के दल में वापस आ मिला जो पहले लौट आया था "उन्हीं मुण्डा जाति के वंशज काबुल (जिसका अर्थ है पूरे होश में होना), बोलन घाट (जिसका सही रूप बोलो घाट अर्थात् प्रवेश द्वार) होते हुए सिन्धु नदी की तराई में पहुँचे।" [58]

भारत में इस सिन्धु घाटी (सिन्दुरीए घाट) सभ्यता में हड़प्पा, मोहन जोदाड़ो के निर्माता थे। यहाँ पर इन्होंने "सैन्धव-सभ्यता का निर्माण किया था। उस समय इन्हें द्रविड़ कहा गया तथा उनकी भाषा मुण्डारी या होड़ो जगर को द्रविड़ भाषा परिवार में शामिल किया गया था।" "पहले संकेत किया जा चुका है कि आग्नेय वंशीय भारतीय भाषाओं के नामकरण की कहानी भी कितनी रोचक है। पहले वे द्रविड़ भाषाएँ समझी जाती थीं और उसी के अनुसार ये जातियाँ भी द्रविड़ मानी जाती थीं।" [59] पाषाण युग तथा नव-पाषाण युग के निर्माता भी ये ही जातियाँ थीं। द्रविड़ का शाब्दिक अर्थ द्रव्य से रीढ़ या आभूषणों से भरा हुआ जान पड़ता है। इससे सम्बन्धित एक जदुर गीत की पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं -

सोना रेदो समडोम रेदो अर्थात् - यदि तुम सोना-चाँदी होते, तो
उटि उटि बोलेइङ सिंगार तेमा [60] मेरे अंग-अंग को मैं तुम से सजा देती

सम्भवतः यह द्रविड़ शब्द का प्रयोग आभूषणों या वेश-भूषा के आधार पर किया था। क्योंकि सैंधव-सभ्यता युग में आज की भाँति कर्म या पद के नाम से जाति व्यवस्था नहीं थी। वहाँ की राजनैतिक, सामाजिक, संस्कृति व्यवस्था में पद या पदवी अवश्य थी। परन्तु मुण्डाओं का इतिहास मौखिक रहने के कारण ये लुप्त हो गयी है। फिर भी कहा जा सकता है कि उस समय उनके वाहनों या जानवरों आदि के नाम ही जाति थी। जो आज

गोत्र के रूप में वर्त्तमान है। "इस सिन्धु-संस्कृति में कुछ हद तक स्त्रियों की प्रधानता थी, ऐसा दिखता है।" [61]

प्रागैतिहासिक युग में जब भारत में आर्यों का आगमन हुआ, तब यहाँ आर्य और अनार्य का उदय हुआ। आर्यों ने द्रविड़ों के लिए अनार्य शब्द का व्यवहार किया। अनार्य का अर्थ जो आर्य नहीं है अर्थात् आदिवासी। "तब ये (आर्य) आदिवासियों (द्रविड़ों) से भिन्न नहीं थे; पशु पालना, कंद-मूल जमाकर खाना, लाठी से जमीन कुरेद कर अस्थाई खेती करना इनका काम था। इतना ही नहीं गाय का मांस खाना, दारू पीना यह सब उस दौर के आर्यों में चलता था।"[62]

आर्य या "उनके आराध्य देव के रूप में शिव का कोई प्रमाण ऋग्वेद में नहीं मिलता है। जिससे यह पता चलता है कि शिव को आर्यों ने बाद में अपनाया। उपर्युक्त तथ्यों से साफ पता चलता है कि सिन्धु सभ्यता किसी भी प्रकार से आर्य सभ्यता नहीं थी। वह एक द्रविड़ या आदिवासी सभ्यता थी। जिसके प्रमाण अभी भी देखने को मिल सकते हैं।" [63]

सिन्धु घाटी सभ्यता एवं हड़प्पा सभ्यता में जब आर्य और अनार्यों में तनाव या मतभेद बढ़ा और यहाँ आर्यों का अधिकार जमा तब अनार्य कबीला सिन्धु घाटी छोड़ने को विवश हुए। उपर्युक्त तथ्यों से सम्बन्धित पंक्तियों देखी जा सकती हैं-

"नङको परिया रे चिमता अबुआः हड़म होड़ो को पलिस्तीनी दिसुम रेको तइकेना एन सोमए सोबेन कोवः मियद जगर तइकेना। इनकु मिसातेगे मियद मरङ लेकन पिड़ी तेको सेनोः जना अर कजिको बइकेदा चि अबु नः दो मियद गुम्टबु बइया अर एना निमिनङबु सलंगिया चि अबु सिरमा रेन सिङबोंगा लोःबु जगर दड़िका। एन सोमए गे सिङबोंगा एना लेल सिरमातेः हड़ागु केना। निकुवः कजि कमिको लेल केयते आर्य मोन रेः विचार केदा चि हेलाया निकुदो ओकोवा को मोनेया एनादो अलगा तेगेको कमि दड़ियाः, चियः चि निकुवः कजिको मयद गेय आर होड़ोको संगी गेय। एना मेनते निकुवः कजिको गड़बड़ रे ठौकवा का रेदो निकु मिदतः रेको तइना।" [64] अर्थात्-आदिम समय में जब कि हमारे पुरखे फिलीपीन देश में थे। एक राय में चला करते थे। एक बार वे एक साथ एक बहुत बड़े मैदान में चले गए। वहाँ उन्होंने आपस में सलाह किया कि हमलोग एक बहुत ऊँचा गुम्बज बनायेंगे,

ताकि हम ईश्वर के साथ बात-चीत कर सकें। उसी समय भगवान उनको देखने के लिए उतरे। उनका यह काम देखकर आर्यों ने सोचा कि ये लोग जो चाहे कर सकते है, इनकी संख्या भी अधिक है और एक राय पर चलते हैं। इसलिए इनके संगठन को तोड़ देना चाहिए। जिससे कि ये (अनार्य) एक जगह नहीं रह पायें।" यही कारण है कि आर्यों के आगमन के बाद सैंधव -सभ्यता का पतन हुआ। इतिहास साक्षी है कि सैन्धव-सभ्यता के पतन के बाद भारत में जिस सभ्यता का विकास हुआ, उसको आर्य या वैदिक सभ्यता कहते हैं। अनार्य कबीले आर्यों के कारण भारत के विभिन्न दिशाओं में बिखर गए। इसी का एक दल मुण्डा जाति भी भारत के कई क्षेत्रों में फैल गया और भारत के पूरब की ओर पंजाब के कुरूक्षेत्र में आया। "आर्यागमन के पूर्व सरस्वती तट के प्रदेश पर आदिवासियों की बस्तियाँ थी।"[65] यहाँ पर मुण्डाओं तथा अन्य आदिवासियों को आर्यों ने "द्रविड़, किरात, कृष्ण, काले असुर, पणि, दास और दस्यु कहा।" [66]

इस प्रकार इस भू-भाग में इनकी जनसंख्या उत्तर में हिमालय की तराई तथा दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत तक फैली हुई थी। इनको यहाँ असुर कहा गया।

"निकु मुण्डा कोलोःमोद जाति उत्तर रेनको तइकेना, असुर को अर मुण्डा को तला रे गोपोएः होबलेन तेअः आको तला रे पाँडव कर कौरव को तला रेअः हगा गोपोएगे तइकेना, एनाअसुर अर मुण्डाकोवः महाभारत गे तइ केना।"[67] अर्थात् - ये मुण्डा लोगों के साथ एक जाति के थे। असुरों या हसुरों और मुण्डाओं के बीच लड़ाई हुई थी पाँडव-कौरव के बीच जो भाई-भाई का युद्ध हुआ था। वह मुण्डाओं और असुरों का महाभारत था। इस युद्ध में मुण्डाओं ने पाँडवों की ओर से कौरवों के साथ युद्ध किया था। एक मुण्डारी भाषा का जरगा लोक गीत शायद उसी समय का गाया गया गीत होगा। जो इस प्रकार है -

पिसिर पिसिर लिपिः गमा लेदा	अर्थात् -हे देवि, झिटिर-झिटिर वर्षा हुई
मरंगड़ा लिपि पेरेः जना -2	हे देवि, बड़ी नदी भर गई
झड़म-झड़म लिपिः रम्पी लेदा	हे देवि, झम-झम वर्षा हुई
हुड़िं नरा लिपि चड़ग जना -2	हे देवि, शाखा नदी उमड़ गई

मरंग गड़ा लिपि पेरेः जना हे देवि, बड़ी नदी भर गई
तुपुञ सारे लिपि अतु जना -2 हे देवि, वार करने वाला तीर बह गया
हुड़िंगड़ा लिपि चड़ग जना हे देवि, शाखा नदी उमड़ गई
मपः कपि लिपि बुवल जना -2 हे देवि, काटने वाला फरसा दह गया

तुपुञ सारे लिपि अतु जना हे देवि, वार करने वाला तीर बह गया
तुपुञकोदो लिपि हिजुवाकना -2 हे देवि, योद्धा आ गये
मपःकपि लिपि बुअल जना हे देवि, काटने वाला फरसा बह गया
मपःकोदो लिपि सेटरा कना - 2 हे देवि, युद्ध करने के लिए पहुँच गये

हे अतिं मोनिञ रे चकतिं सनञ हे प्रिय! मुझे चिंता-अफसोस होता है
तुपुञ कोदो लिपि हिजुवा कना -2 हे देवि, दुश्मन आ गये है
हेअतिं मोनिञरे चकतिं सनञ हे प्रिय! मुझे चिंता-अफसोस होता है
मपःकोदो लिपि सेटेरा कना - 2 हे देवि, युद्ध के लिए आ पहुँचे है

'कौरव' शब्द आग्नेय या मुण्डारी भाषा से सम्बन्धित प्रतीत होता है। जिसका अर्थ बहुतों की संख्या में या अनगिनत होता है। यहाँ से फिर मुण्डा लोग मध्य भारत की ओर दिल्ली, उत्तर प्रदेश के अयोध्या (अयोदेया) अर्थात् माता की पीठ पर सवार (बेतरा), वाराणसी, काशी, अस्सी या तिरासी, आगरा (अःगड़ा), मथुरा, आजमगढ़ आदि स्थानों में आये थे। यहाँ सुर-असुर की उत्पत्ति हुई। राजा दशरथ असुरों के राजा थे। जैसा कि इस तथ्य से स्पष्ट किया जा सकता है कि, "आजमगढ़ में अब भी जनश्रुति है कि श्री रामचन्द्र जी के समय में इस प्रान्त में रजभर और असुर थे जो कोसल राज के अधीन थे।" [68]

मध्य भारत के अन्तर्गत कुछ ऐतिहासिक नाम हैं जैसे कोशल, तोसल, अंग-बंग, कलिंग-त्रिलिंग, उत्कल-मेकल तथा जाति सम्बन्धी शब्द युग्म पुलिन्द-कुलिन्द आदि आग्नेय भाषा की ही पद रचना प्रणाली द्वारा प्रभावित हैं।" [69]

"मुण्डारी भाषा भारत की आदि-निवासी जाति की भाषा है। इतिहास बताता है कि यह जाति आर्य लोगों के भारत में प्रवेश करने के कई युग पूर्व ही से यहाँ बसी हुई थी तथा इनकी संस्कृति और सभ्यता यहाँ फैली

हुई थी। कहा जाता है कि उस युग में उनका राज्य सारे उत्तर भारत में फैला हुआ था और आर्यों के यहाँ प्रवेश करने पर पहली बार इन्हीं आदिवासियों के साथ टक्कर खाना पड़ा था। उत्तर भारत में मुण्डा भाषा के अनेको गाँव, शहर एवं स्थान पाये जाते हैं।'' [70] मुण्डारी पौराणिक 'सोसोबोंगा' एक काव्य-कथा है। [71] इसमें वर्णित एकासीपिड़ी (काशी), तिरासीवादी (जिसका सही रूप थेरअसीवादी) या (अस्सीघाट) में मुण्डाओं व मनुष्यों और असुरों में युद्ध हुआ था। यहाँ छोटानागपुर के सभी आदिवासी जाति के लोग थे और सुर-असुर का युद्ध भाई-भाई का युद्ध था। असुर पराजित होकर बिहार के जंगलों की ओर पटना, गया, नवादा होते हुए छोटानागपुर के वनों में जाकर अपना राज कायम कर लिया। इसके बाद उत्तर भारत में आर्यों का अधिकार हो जाने के पश्चात फिर मुण्डा लोग इस क्षेत्र में आए।

''इसी सुरम्य उपत्यका में आखेटजीवी भामावंरों का एक दल उत्तर भारत से दक्षिण की ओर वर्त्तमान बुन्देलखण्ड और मध्य-भारत की ओर पलटा। रूहेलखण्ड और मगध होते हुए वे मिथिला पहुँचे। वे गंडक नदी से दसमील पूरब नन्दगढ़ में डेरा डाले। यहीं गढ़-पिपरा में कुछ काल निवास करने के बाद गढ़ पिपरा से भी अपना डेरा उठाया और दक्षिण-पूरब की ओर मगध राज के रिजगढ़ (राजगीर) में इन्होंने प्रवेश किया। यहीं से सोन-नदी को पार कर दक्षिण-पूरब की ओर चलते हुए उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ अभी राँची, हजारीबाग और पलामू जिले की सीमाएँ आपस में मिलती हैं।

यहाँ यह दो दलों में विभजित हो गया। एक दल संताल परगना में जा बसा। आगे चलकर उस दल के लोग संताल कहने लगे। दूसरा दल इन घाटियों में उतर आया। इस क्षेत्र को देखकर इस दल के लोग खुशी से चीख पड़े-'आह! बुढ़म!!' अर्थात् घने जंगलों से आच्छादित क्षेत्र और उन्होंने यहीं -छोटानागपुर में तब जिसे झारखण्ड प्रदेश के नाम से जाना जाता था, बस जाने का निश्चय कर लिया।

उन्हें इस क्षेत्र की मनोरम प्रकृति भा गई। उन्हें ऐसा लगने लगा, जैसे- यहाँ की धरती, यहाँ के जंगल, यहाँ की नदियाँ, यहाँ के पशु-पक्षी, यहाँ का मौसम, यहाँ की हवाएँ -- ये सभी इनके निकटतम सम्बन्धी हों। स्वच्छन्द प्रकृति की गोद! शायद इसी गोद की तलाश-यात्रा में अब तक भटक रहें थे ये प्रकृति पुत्र!

यायावरी समाप्त हुई। स्थायी निवास बने। जिस स्थान पर उनका पहला स्थायी निवास बना वह स्थान 'ओमेडण्डा' के नाम से आज भी जाना जाता है। यह स्थान राँची जिले के बुढ़मू थाने के अन्तर्गत पड़ता है।'' [72]

असुरों के प्रभाव- सूर्य के दक्षिणायन होने पर छोटानागपुर में मुण्डाओं का तेजोदय हुआ। मुण्डाओं एवं असुरों की प्राचीन गाथाओं से इस महत्त्वपूर्ण घटना का आभास मिलता है। शरत् चन्द्र राय ने मुण्डा जाति का गहन अध्ययन प्रस्तुत करते हुए इस तथ्य का संकेत किया। [73]

''द्रविड़ को तमिल संस्कृति भी कहा जाता है। आर्य उत्तर भारत में मध्य एशिया से आये। आर्यों ने द्रविड़ जनों को दक्षिण की ओर खदेड़ दिया, तब से द्रविड़ियन संस्कृति दक्षिण में पनपी।'' [74]

मुण्डाओं का पहला दल संताल परगना की ओर से संतालों के साथ ''एयाय नाई (सात नदी), गंगा नाई, सिर दिसोम, सिकार दिसोम।'' [75] यह जाति सिल्ली, झालदा होते हुए पश्चिम बंगाल के पुरूलिया के मानभूम, वीरभूम आदि में बस गई।

तीसरा दल सिन्धुघाटी सभ्यता से दक्षिण की ओर गया। मुण्डाओं का पीछा करते सतपुड़ा और विन्ध्याचल पर्वत को पार कर महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, मद्रास होते हुए दक्षिण में अरण्य काण्ड के दंडयवन या डंडय बिर, सुबेल पर्वत (सिंजु बुरू), त्रिसिरा (तिरिंसेरेग), त्रिकुट (तिरिलगुडु) आदि वनों में तथा पर्वतों में आये, जहाँ शबरी ने राम को बेर का फल दिया था। इस समय दक्षिण भारत में ईर्ष्या, द्वेष का बोल-बाला था। नैतिकता, बल पर निर्भर थी। यही कारण है की भाई-भाई में युद्ध की अनेक कहानियाँ मिलती हैं। यथा- सुग्रीव-बाली का युद्ध। जैसा कि भारतीय साहित्य के स्तम्भ कवि तुलसीदास के अमर ग्रन्थ 'रामचरितमानस' से प्रमाणित होता है। अरण्य वन के दण्डकारण्य वन (दण्डए बिर या डंडए बिर) आग्नेय भाषा से, किष्किंधा और पम्पासार द्रविड़ या कुडुख भाषा से सम्बन्धित है। अतः दक्षिण में झारखण्ड की प्रायः सभी जनजातियाँ थी। सीता की खोज में गए राम का मुण्डाओं ने आदर-सत्कार एवं मदद की थी। इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि राम चन्द्र आदिवासियों के भाई थे; 'सिंङबोंगा राजा' थे। राम-रावण युद्ध भी भाई-भाई का युद्ध था। धर्म, नैतिकता, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं लोक रक्षा की लड़ाई थी। अन्याय पर न्याय की स्थापना थी। सैनिकों में बंदर,

भालू, हनुमान, गरूड़, कौआ आदि आदिवासियों के गोत्रधारी थे। इसके पश्चात दक्षिण से ये जातियाँ नयी जगहों की खोज में उत्तर की ओर बढ़ीं। जिनमें से मध्य-प्रदेश के छत्तीसगढ़ होते हुए मुण्डाओं का एक दल उड़ीसा के क्योंझर से पश्चिम बंगाल के पुरूलिया आया। यही कारण है कि छत्तीसगढ़ में वर्त्तमान प्रमाणिक भाषा वर्गीकरण के अनुसार "भाषिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ ऐसा संगम स्थल है, जहाँ मुण्डा, द्रविड़ एवं आर्य भाषा परिवार धार्मिक मान्यताओं से संगृहीत परियोजित एवं गौरवान्वित रहा है।" [76] दक्षिण से आये मुण्डा लोग पश्चिम बंगाल में पहले से रह रही मुण्डा जाति से मिले। यहाँ झालदा (झालदाः) या खरापानी, सुइसा, सोसो, तिरिल (केन्द), कलिमटि, सरजोमहातु, पटःहेसा आदि गाँव मुण्डाओं ने बसाया था। यहाँ तक मुण्डाओं को द्रविड़ कहा तथा माना जाता था। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं -"जरनल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' के खण्ड-16 में हॉग्सन ने हिमालयवर्ती मातृभाषाओं का तुलनात्मक, शब्द समूह प्रकाशित किया था; जिसमें उन्होंने मध्य तथा दक्षिण भारतीय भाषाओं के लिए 'द्रविड़' शब्द प्रयुक्त कर मुण्डा को उसी में सम्मिलित किया था।"[77]

मुण्डाओं का एक दल सीधे दक्षिण से आकर पश्चिमी छोटानागपुर में बसा। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं- "मुण्डा मन कहेन हामरे दखिन दने से गोदावरी आउर वैतरणी नदीमन पार करत ई छोटानागपुर में आ ही।"[78] अनेक प्रमाणों के आधार पर उनका अनुमान है कि मुण्डा जाति छोटानागपुर में पश्चिम दिशा से 600 ई0 पूर्व में प्रविष्ट हुई है। [79]

इस प्रकार प्राक् इतिहास युग में मुण्डा छोटानागपुर के चारों दिशाओं में बसे हुए थे। उत्तर में बुढ़मू थाना, दक्षिण में उड़ीसा राज्य के मयुरभंज, क्योंझर, सम्बलपुर, सुन्दरगढ़ आदि। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

"रसल केओंजरि	अर्थात्-	रासाल क्योंझरी
बदुकु गुलि सटासटि		गोलियाँ सटासट चल रही है
रसल केंयोञ्जरि		रासाल क्योंझरी
टेम्बसार जड़म" [80]		तीर झराझर चला रहे हैं

पूरब में पश्चिम बंगाल-पुरूलिया के मिदनापुर, बीरभूम, बाँकुड़ा आदि में। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं- "कारेदो मदभूम चि

पुरूलिया तअः कोरे नङ आते तुरिअ लेका मपरङ मुण्डा मंडंकि गोमकेको सुइसा, सोसोरे, कलिमटि रे, सरजोम हतु रे तिरिल रे ओड़ोः पटःहेसा एमन कोरे मेनः कोअ।"[81] अर्थात्- मिदनापुर या पुरूलिया के आस-पास में प्रागैतिहासिक काल से छः की संख्या में बड़े-बड़े मुण्डा-मानकी मालिकों का सुइसा में, सोसो में तिरिल में और पटाःहेसा में हैं।

छोटानागपुर के पश्चिम में मध्य प्रदेश के जशपुर, सरगुजा, मिर्जापुर आदि इलाकों में भी थे। इससे सम्बधित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-

"धलभुम बनइबमड़ा जसपुर सुरगुजा
गोटा जयर केदा दिसुम गे मुण्डाकोअः"[82]

अर्थात्- धालभूम, बनइ-बामड़ा, जशपुर, सरगुजा
चारों ओर कहा गया मुण्डाओं का देश

उपर्युक्त जगहों, जैसे- पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश के हिस्सों में जहाँ मुण्डा लोग थे, यह छोटानागपुर का ही हिस्सा था। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियों का अवलोकन किया जा सकता है "इस झारखण्ड क्षेत्र के अन्दर संथाल-परगना भी शामिल था; संथाल विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने इसे काटकर अलग कर दिया। इसके बाद यह क्षेत्र चुटियानागपुर के नाम से जाना गया; इसमें चार जिले थे एवं छोटे-छोटे सात राज्य थे। जिलों में लोहरदगा, हजारीबाग, मानभूम एवं सिंहभूम तथा राज्यों में बोनई, गांगपुर, चाँद-भाकर, कोरिया, सुरगुजा, उदयपुर एवं जशपुर झारखण्ड के अंग थे। बगावत एवं विद्रोहों को ध्यान में रखकर ब्रिटिश शासकों ने झारखण्ड को अनेक खण्ड में विभक्त कर दिया। साम्राज्यवादी नीति के तहत मानभूम के मिदनापुर एवं बांकुड़ा को बंगाल राज्य में मयूरभंज, क्योंझर, सम्बलपुर एवं सुन्दरगढ़ को उड़ीसा राज्य में, जशपुर एवं सुरगुजा को मध्य प्रदेश राज्य में मिला दिया गया। इस प्रकार चुटियानागपुर का स्वरूप छोटा हो गया जो छोटानागपुर के नाम से जाना गया।" [83]

मुण्डरी लोक कथाओं से प्रमाणित होता है कि पश्चिम बंगाल में मुण्डा और संताल दोनों एक साथ रहते थे। दोनों पहले उत्तर से आये थे। उस समय जहाँ मुण्डा जाए वहीं संताल भी। इससे संबन्धित कई लोक गीत हैं। एक लोक गीत देखा जा सकता है :--

हेसअः सकम जिलिब जिलिब अर्थात् -झिलमिल पीपल का पत्ता

मुण्डा होनेए रकब लेन	मुण्डा आदमी आया था।
बड़े सकम जोलोब जोलोबा	झलमल बट का पत्ता,
संता होपोन उपर लेन	संताल आदमी आया था।
मुण्डा होनए रकब लेना	मुण्डा आदमी आया था
चिको मेनए रकब लेना	किस लिए आया था?
संता होनए उपर लेना	संताल आदमी आया था
मेरे को मेनए उपर लेना	किस लिए आया था?
मुण्डा होनए रकब लेना	मुण्डा आदमी आया था
दिसुम लेलए रकब लेना	देश देखने आया था
संता होपोनए उपर लेना	संताल आदमी आया था
गमए लेलए उपर लेन [84]	क्षेत्र देखने आया था

मुण्डारी लोक गीतों एवं कथाओं में मुण्डा-संथाल एक साथ रहने के संबन्धित कई लोक गीत हैं। संताली लोक साहित्य में भी मुण्डाओं का वर्णन आया है। इससे संबन्धित पंक्तियाँ इस प्रकार है--

आतूरिन संताल, आतूरिन मुण्डा
चावेरिया दिसोम रे
सोगे साते तेको ताहे काना
सागे साते तेको ताहे काना

अर्थात् - "गाँव के संताल और गाँव के मुण्डा, साथ-साथ चाँवरिया देश में रहा करते थे।" [85]

पश्चिम बंगाल के मिदनापुर तथा वीरभूम गाँव में मुण्डाओं का मुण्डा रिसा मुण्डा ऊपर टोली में तथा संतालों का प्रधान माधो सिंह नीचे टोली में रहता था। रिसा मुण्डा की एक बेटी थी और माधो सिंह का एक बेटा था। इन दोनों में प्रेम हुआ। लम्बे प्रेम के दौरान माधो सिंह के पुत्र ने रिसा मुण्डा की बेटी से विवाह करने की इच्छा व्यक्त की। यह प्रस्ताव माधो सिंह ने **'अगुवा'** के द्वारा रिसा मुण्डा के पास रखा। लेकिन वह अपनी पुत्री की शादी **'मुण्डा'** परिवार से ही करना चाहता था। माधो सिंह के बेटे से विवाह नहीं हो सका और यहीं से मुण्डाओं का संतालों के साथ मतभेद हुआ। नृत्य के

अखाड़े में दोनों पक्षों में लड़ाई-झगड़ा बढ़ता गया। इसके पूर्व जब मुण्डाओं के अखाड़े में माधो सिंह का बेटा और उनके दोस्तों के गाने की बारी आती थी, तब रिसा मुण्डा की बेटी आगे जोड़ती थी। तब उपस्थित मण्डली गा उठती थी। जैसे-

चेतन टोला कुड़ि होना ददा	अर्थात् -हे बड़े भाई, ऊपरटोली की लड़की
लंगचेंड़ें लेकाया ददा	हे बड़े भाई, पूँछदार पक्षी की तरह है
लतरटोला कोड़ा होना ददा	हे बड़े भाई, नीचे टोली का लड़का
बोचोः चेंड़ें लेकाया ददा।	हे बड़े भाई, बोचोः चिड़ियाँ के समान है
लंगचेंड़ें लेकाया ददा	हे बड़े भाई, लंपक्षी की तरह है
ओको रेको गोंइया ददा	हे बड़े भाई, उसे कहाँ शादी देंगे?
बोचोः चेंड़े लेकाया ददा	हे बड़े भाई, बोचोः चिड़ियाँ के जैसे है
चिमए रेको चलाइया ददा	हे बड़े भाई, उसे कहाँ से विवाह करेंगे?

प्रेमी-प्रेमिका का जब दो दिल एक हो जाता है तब जुदा होना कितना कठिन हो जाता है। रिसा मुण्डा की बेटी तथा माधो सिंह के बेटे का मिलन जारी रहा। जिससे मुण्डाओं तथा संतालों में आक्रोश बढ़ता गया। मुण्डा लोग बलुवा आदि लड़ाई के अस्त्र तैयार करने लगे तथा संताल तीर तैयार करने लगे। इस स्थिति को देखकर माधो सिंह के बेटे-बेटियाँ अपने बड़े भाई को समझाते हैं-

चेतनटोला असि सेंगेल ददा	अर्थात्- हे भाई, ऊपर की टोली से
अलोम असि सेंगेला ददा	आग मत मांगना।
लतरटोला जारू सकम ददा	हे भाई, नीचे की टोली में
अलोम जारू सकम ददा	गप करने में मत रह जाना।
मुण्डा होनको ददा	हे भाई, उन्होंने (मुण्डाओं ने)
कापिको लेसेर तना ददा	बलुवा का धार तेज कर लिया है
संता होनको ददा	हे भाई, संतालों ने
सारको कति तना ददा	तीरों को नुकीला कर लिया है।
नम तमगेयाको ददा	हे भाई, तुम्हें वे पालेंगे

अलोम असि सेंगेला ददा — अतः आग मांगने मत जाना
चिनातमगेअकी ददा — हे भाई, वे तुम्हें पहचान लेंगे
अलोम जारूसकमा ददा।[86] — अतः गप करने में मत लगे रहना।

संतालों की संख्या अधिक थी। अतः अन्त में माधो सिंह ने रिसा मुण्डा को गाँव से ही खदेड़ देने का निश्चय किया। डर कर रिसा मुण्डा ने उत्तर दिशा की ओर घोर जंगल में शरण लिया। उसने आधी रात को भगवान से प्रार्थना की कि हे स्वामी, हमारी जीविका के लिए देश बताओ नहीं तो मेरे साथ आये लोगों का पालन-पोषण कैसे होगा? तब ईश्वर ने कहा- दक्षिण की ओर जाओ, वहीं तुम्हें तथा तुम्हारे संतानों को मैं स्थान दे रहा हूं। तब रिसा मुण्डा अपने बीस हजार साथियों को लेकर वहाँ से दक्षिण की ओर आया। तब इन्होंने ईश्वर द्वारा बताये गये देश की पहचान के लिए सब मिलकर लकड़ी का ढेर लगाया और उसके ऊपर मुर्गा चराकर रख दिया। फिर सिंङबोंगा से उन्होंने प्रार्थना की कि हे भगवान यदि यह तुम्हारा दिया हुआ क्षेत्र है तो यह मुर्गा नहीं जले और यह क्षेत्र वह नहीं है तो मुर्गा जलकर राख हो जाए। यह कहकर वे उसमें आग लगा दिया। रात-दिन आग जलती रही लेकिन मुर्गा नहीं जला। इसी राख की ढेर में मुर्गा फड़-फड़ाकर बोल उठा। तब उन्हें विश्वास हुआ कि यह क्षेत्र वही भू-भाग है जो हमें ईश्वर ने दिया है। उसके बाद रिसा मुण्डा ने सिङबोंगा राजा से पंख वाले घोड़े की मांग की। पंखराज घोड़े पर सवार होकर रिसा मुण्डा ने पूरे छोटानागपुर का भ्रमण किया। ढोंएसा-खुखरा (कुकरा) में पहले से रह रहे अपने मुण्डा भाइयों से उनका मिलन हुआ। इसके बाद वह अपने बीस हजार लोगों के साथ वापस आया। वे रिसा मुण्डा को 'लिपी' कहकर पूछने लगे और रिसा मुण्डा भी अपने सहयोगियों को 'लिपी' के रूप से सम्बोधन करते उत्तर दिया है। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोक गीत द्रष्टव्य है --

सोना लेकन दिसुम लिपी अर्थात् - हे लिपी, स्वर्ण सा देश
ओको रेम लेलना लिपी — हे लिपी, तुमने कहाँ देखा?
रूपा लेकन गमया लिपी — हे लिपी, चाँद सा प्रदेश
चिमए रेम चिनना लिपी — हे लिपी, तुमने कहाँ पहचाना?

सोना लेकन दिसुम लिपी — हे लिपी, स्वर्ण सा देश

ढोंएसा रेञ लेलना लिपी — हे लिपी, मैंने ढोंएसा देखा है।
रूपा लेकन गमया लिपी — हे लिपी, चाँद सा प्रदेश
कुकरा रेञ चिनाद लिपी — हे लिपी, मैंने खुखरा देखा है।

सोना लेकन दिसुम लिपी — हे लिपी(भाइयो) स्वर्ण सा देश
वियुर तनाया लिपी — हे लिपी, घूम रही है
रूपा लेकन गमया लिपी — हे लिपी, चाँद सा प्रदेश
सेकोर तनाया लिपी। [87] — हे लिपी, सरक रहा है

"शायद इसी गोद की तलाश-यात्रा में अब तक भटक रहे थे ये प्रकृति पुत्र। यहीं है यहीं है उनके पूर्वज रिसा मुण्डा के सपनों का सुनहला देश, जिसकी तलाश-यात्रा में वह अपने इक्कीस हजार अनुयायिओं को साथ लेकर वर्षों जिधर-तिधर भटकते रहे। उसी का वंशज सुतिया मुण्डा इस दल का नेता था। सुतियाम्बे गाँव इसी सुतिया मुण्डा के नाम पर पड़ा, जो एक समय मुण्डाओं का केन्द्र था।" [88]

रिसा मुण्डा और उनके सहयोगियों की घटना राँची के मोराबादी, कोंगा कुण्डी, कुम्बबादी में हुई थी। तब यहीं उन्होंने जंगल साफ कर खेत बनाया, देश, गाँव, समाज एवं संस्कृति को बरकरार रखा। इससे सम्बन्धित जदुर और जतरा गीत मिलते हैं। एक गीत द्रष्टव्य है -

नङरेन होड़ोको — अर्थात् -आदिम या पुरखे लोगों ने
हतुको दुब केद — गाँव बसाया
नङ रेन प्रजाको — पुरखों ने
दिसुम को दुब केद — देश बसाया

हतुको दुब केद — उन्होंने गाँव बसाया
पिड़ि लोयोंग को बइ केद — आड़ को दोन बनाया
दिसुम को दुब केद — उन्होंने देश बसाया
अड़िकुण्डि को बइकेद [89] — खेत को आड़ बनाया

रिसा मुण्डा का एक दल जब राँची आया। जिसमें कुछ छुटे हुए मुण्डा-मानकी तमाड़-बुन्डू की ओर बढ़े उस समय वहाँ असुरों का बोलबाला था। राँची के चारो ओर मुण्डा लोग गाँव बसाते गये। वे प्रत्येक गाँव में एक

व्यक्ति को मुण्डा की पदवी देते गये। रिसा मुण्डा को सात गाँव का पड़हा राजा बनाया गया। उस समय छोटानागपुर की राजधानी **खुखरा** थी। मुण्डाओं ने इसे **कुकुरा** कहा। इससे सम्बन्धित एक लोक गीत देखा जा सकता है--

बुरू रेअ कुकुरा दो	अर्थात् - पहाड़ पर कुकुरा (घास)
लिडुअकन जपुदअकना -2	झुका हुआ है, लटका हुआ है।
हतु रेन हिण्डा कुड़ि	गाँव की कुँवारी लड़की
मिसाए जगर बरसाए लंदाएअ -2	एक बार बोलती है, दो बार हँसती है
हतु रेन डिण्डा कुड़ि	गाँव की कुँवारी लड़की
मिसाए जगर बरसाए लंदाएअ -2	एक बार बोलती है, दो बार हँसती है
दोला तिबु लेललिअ	उसे चलो हम देख लें
मिसाए जगर बरसाए लंदाएअ-2 [90]	एक बार बोलती है, दो बार हँसती है।

यही कारण है मुण्डा लोग भारत के विभिन्न क्षेत्रों का दौरा करते रहे। संयोगवश अन्त में ईश्वर ने इनको प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण छोटानागपुर की धरती पर सतयुग में ठहरा दिया। "उन्हें इस क्षेत्र की मनोरम प्रकृति भा गई। उन्हें ऐसा लगने लगा जैसे यहाँ की धरती, यहाँ के जंगल, यहाँ की नदियाँ, यहाँ के पशु-पक्षी, यहाँ का मौसम, यहाँ की हवाएँ - ये सभी इनके निकटतम संबंधी हों। स्वच्छन्द प्रकृति की गोद, शायद इसी गोद की तलाश-यात्रा में अब तक भटक रहे थे, ये प्रकृति पुत्र! यहीं है यहीं है! उनके पूर्वज रिसा मुण्डा सपनों का सुनहला देश, जिसकी तलाश यात्रा में वह अपने इक्कीस हजार अनुयायियों को साथ लेकर वर्षों जिधर-तिधर भटकते रहे।" [91]

"5 वीं 6 वी सदी पूर्व जब मुण्डाओं का इस क्षेत्र में प्रवेश हुआ। [92] इस युग में मनुष्य के मुख से जैसी बात निकलती थी, वैसा ही हुआ करता था। एक मुण्डारी लोक-कथा है- 'मनुष्य और बाघ' (होड़ो आद कुला)--"मोयोद गुटु जपः रे मोयोद होड़ो सियुःएः सेनोः जना। पाल दो मयरेः तोड़ेइदि केदा। सियुतः तेबः लेद चि मयंगरेः तोड़े लेद पाल दोएः रिड़ि केदा। एनतः को कुबेः दड़ां बेड़ा केदा। इसु हेड़ा रे मयङ रेः तोड़ेया कद पालेः टोर केदा। ने कुला जोमिञदो नेरे तोड़ेया कदचिः मेन तदा।

एन गुटु रे कुला टीकी एना कजिः अयुम केदा। हाँ नः दोञ जोममाएः मेतै तना। काया गलती गेञ गलती केदा ने गोड़ाञ सी चबा लेया एनाते मर

जोमिञमें मेतःइया। कुला हेया मरेः मेन केदा।

नः दो एन होड़ो जनओ हुपुड़ी-हुपुड़ी मिसा बरसागेः बियुर लेकिंग चिः होकाः। इसु दिन रे मुसिङ चबओः लेकएः अटाकर केदा। अयःकुड़ि केः मेतइ तना तच अम तुकु आद हड़महके इदीमे। तिसिंदो कुला अञकेः जोमिञा। तोबे होड़ो आद कुला मिदतः रे किन दुबा कना। कुड़ी सेन जना। कुड़ी मेन जदा एनजपाः रेदो चिकनाः? हड़म मेन जदा जेतनाः का डुटुदं। एन डुटु चेतन रेदो चिकना? लुतुर लेकञ लेल जदा। जेतःओ का मोयाद पोगा दं ओमोना कना। मरा एना तुद लेमकुड़ी मेन जदा। कुला मेन जदा मड़िते अंइटओएमे। अंइटवलेद चि कातुदोः वएः मेतइ तना। मरा एन डुटु कोड़म लेम। कुला मेन जदा जोर ते दोन्दो लेते मंड़ि ते उयुःइमे। जोरते दोन्दो लेद चि मड़ीतेः उयुः तदा। कुड़ी मेन केदा मरा ओड़ोः मिसा। एन होड़ो तोबे जोरतेः दोन्दो लेद चि जोरतेः उयुः तदा। कुला एनतः रेम सम्बिर जना। एनलोःगे निर इति लेद चि किन कोड़ाम गोएः किअः। कुलाएः गोएः जना।''[93] अर्थात् - एक आदमी जंगल के पास हल जोतने गया। वह अपनी कमर में फार या फारू खोंसकर लेता गया था। खेत में पहुँचकर वह फार खोजने लगा। कमर की बात वह भूल ही गया था। इधर-उधर खोजने पर वहाँ नहीं मिला। अन्त में उसे कमर की याद आई और उसे फार मिल गया। तब उसने झुंझलाकर कहा- 'धन्य हमारी बुद्धि को! ऐसी बुद्धि पर बाघ खा जाए?'

इस बात को उस वन के बाघ ने सुन लिया। बाघ ने आकर कहा- 'अब तो मैं तुमको खा जाऊँगा।' आदमी ने कहा- 'बात जब मुंह से निकल ही गई तो खाओगे ही, किन्तु खेत जोतकर जिस दिन पूरा करूँगा, उस दिन खाना।' बाघ ने इस बात को मान लिया।

उस दिन से वह (आदमी) दो-चार बार बैलों को घुमाकर छोड़ देता था। इस तरह खेत जोतने में बहुत दिन लगाया। जब खेत जोतना खत्म हुआ, उस दिन उसने अपनी पत्नी से कहा कि तुम समाट और बूढ़ा टांगी या बड़ा टांगी लेकर आना। आज मुझको बाघ खा जाएगा।

खेत पहुँच कर बूढ़ा, बाघ के पास जा बैठा। उसकी पत्नी भी कुछ दूर पर बैठ गई। बुढ़िया, बूढ़े से बोली- 'तुम्हारे बगल में वह क्या है?' बूढ़े ने कहा- 'कुछ तो नहीं, यह तो एक कुन्दा है।' बुढ़िया पुनः बोली- 'कुन्दे के ऊपर वह जो कान जैसा दिखाई पड़ता है, वह क्या है?' बूढ़ा बोला- 'वह तो

एक खुखड़ी है।' फिर बुढ़िया ने कहा- 'तुम उसे ऐंठकर तोड़ लो।' तब बाघ ने बूढ़े को इशारा किया कि धीरे से ऐंठो। बूढ़े ने उसे धीरे से ऐंठा और बोला- 'ऐंठाने से वह नहीं उखड़ेगा।' बुढ़िया ने फिर कहा- 'तब उसे टाँगी से काट लो।' बाघ ने उसे फुसलाया- 'देखना बूढ़े, टाँगा जोर से उठाना और धीरे से गिराना।' बूढ़े ने जोर से उठाया और धीरे से गिराया। फिर बुढ़िया ने कहा- 'एक बार और।' इस बार बूढ़े ने जोर से टांगी उठायी और जोर से गिरा दिया। बाघ उलट गया। बुढ़िया भी दौड़कर वहाँ पहुँची और दोनों ने मिलकर बाघ को मार डाला।

झारखण्ड के मुण्डा लोग मुर्गे की बाँग सुनकर जगते और अपने-अपने कामों में लग जाते हैं। सारा दिन कठिन परिश्रम करते हैं। साँझ होते ही ढोल और नगाड़ों की ध्वनि चतुर्दिक गूंजने लगती है। ढोल और नगाड़ों की ध्वनि कानों में पड़ते ही लोग मचल उठते हैं। अखाड़े में उमड़ते हुए आते हैं। [94]

पश्चिम की ओर से बहुत से लोगों का एक दल तेजी से इधर ही बढ़ता चला आ रहा है। हित है कि शत्रु, कुछ पता नहीं कौन हैं ये लोग। अगर उन्हें सीमा के बाहर ही नहीं रोका गया, तो वे हम पर चढ़ बैठेंगे। इतनी मिहनत से बनाई हमारी जमीन, हमारे बसे बसाये गाँव, सब पर वे कब्जा कर लेंगे। रंची मुण्डा ने लोगों से कहा -

हमें तुरन्त ही सीमान्त पार उन्हें रोकने का जतन करना चाहिए ... बाकी लोग गाँव के बाहर मोर्चा सम्भाल लें। उत्साहपूर्वक सभी अपने-अपने हथियार लेकर जमा होने लगे। मुण्डा वीरों की सेना चल पड़ी सीमान्त पर। आज जहाँ मुड़ा मेला या जतरा लगता है... यही जतरा टाँड़ उस समय युद्ध भूमि बनी थी।

******** ********* ********** ********

रंचि मुण्डा और आस-पास के मुण्डाओं (सरदारों) ने अपने बसे-बसाये गाँव कुडुखों को सौंप दिए और पूरब की ओर बढ़ चले। ... कुडुख और मुण्डा निश्चय ही दोनों प्रकृति-पुत्र हैं। बहुत कुछ समानता भी है दोनों में। पर, दोनों की संस्कृतियाँ भिन्न-भिन्न हैं। दोनों के सम्बन्धों में भी काफी अन्तर है। दोनों की जातिगत एवं चरित्रगत विशेषताएँ भी भिन्न-भिन्न हैं। मुण्डा जाति स्वभाव से संतोषी और कठिन परिश्रम करने वाली है जबकि कुडुख जाति के लोग आलसी और रसिक प्रवृत्ति के हैं।" [95]

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में परिलक्षित होता है कि कुछ लोग झारखण्ड की जनता को (आदिवासियों को) अलग-थलग कर उनके बीच का जो पारम्परिक सम्बन्ध रहा है, उसे जान-बूझकर लीपा-पोती कर आनेवाली पीढ़ी के लिए मिटा देने में लगे हैं। अशोक पागल का 'छोटानागपुर का इतिहास' ग्रन्थ के अनुसार पश्चिम से कुडुखों की एक बड़ी जनसंख्या के आगमन से मुण्डाओं को भय था कि बने-बनाये खेत, बसे-बसाये गाँव पर उनका (कुड़खों) का कब्जा हो जाएगा। इसे रोकने के लिए मुण्डाओं ने सीमान्त पर पहरेदारी की। इसे हम इनके बीच युद्ध का वृतान्त या इतिहास मान सकते हैं। प्राचीन काल में मुण्डाओं और कुडुखों में लड़ाई इसी तरह से होती थी। लड़ाई का कारण- भूमि विवाद, आपसी मतभेद, अपने कमजोर या एकल भाई का विनाश कर उनकी भूमि को दखल कर लेना, खेतों का उचित बँटवारा न होना, युवक-युवती में प्रेम विवाह, प्रेम प्रसंग, हरण विवाह, किसी की पत्नी का हरण आदि था, न कि युद्ध का कारण मुण्डाओं की ओर कुडुखों का आगमन था। मुण्डा और उराँव या उराँव और मुण्डा पहले से साथ-साथ रहते आये हैं। छोटानागपुर में मुण्डा लोग सर्वप्रथम बुढ़मू प्रखण्ड के 'उमेडण्डा' नामक गाँव में आये। 'उमेडण्डा' का अर्थ है स्नान करने वाला किनारा। उमेन (स्नान करना) डण्डए (जल का किनारा) से 'उमेडण्डा' शब्द बना जो मुण्डा-उराँव क्षेत्र के 'केरः मुण्डारी' का शब्द है। ''इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया के इक्कीसवें भाग में लिखा है कि पूर्व में छोटानागपुर देश मुण्डा और उराँव लोगों के अधीन था। उस समय विशेषकर कृषि कार्य नहीं होता था। इस देश को झारखण्ड भी कहते थे। फिर नागवंशियों ने इस देश पर अधिकार किया।'' [96] नागवंशी राजाओं में पहला राजा फणिमुकुट राय और चतुर्थ मदन राय तक इनकी राजधानी सुतियाम्बे ही थी। इसको पुनः प्रमाणित करने के लिए करमचन्द भगत महाविद्यालय, बेड़ो में दो दिवसीय "State level Seminar on the capitals of Nagvanshi Rulers in Chotanagpur(in Historical perspective), Inaugural session 28.10.1999 के द्वारा ''नागवंशियों ने निश्चिततः मुण्डाओं से शासन प्राप्त किया, लेकिन उन्हें समाप्त नहीं किया (जैसे मुण्डाओं ने असुरों की या यूरोपियनों ने रेड इण्डियनों की) बल्कि मुण्डा संस्कृति एवं व्यवस्था को नागवंशी सदानों की तरह जीवित रखा एवं उसे फलने-फूलने का पूर्ण अवसर दिया। यही कारण है कि आज भी

नागवंशी-सदान, मुण्डा, उराँव, खड़िया आदि जातियाँ एक गाँव-घर में जीते-मरते, सहिया जोड़ते, एक खेत-खलिहान में मदइत से काम करते, एक ही अखाड़े में नाचते-गाते बजाते आ रहे हैं। यह समतामूलक समाज, यह शोषण विहीन समाज या सहभागिता का समाज या सहिया और मदइत की संस्कृति या साझा अखरा-जतरा की संस्कृति आज भी जीवित है।'' [97]

जहाँ तक झारखण्ड में या अन्यत्र भी मुण्डाओं और कुड़ुखों के बसने की परम्परा रही है, उनका एक कानून था, एक नियम या संस्कृति थी, अथवा एक आदर्श था। न कि युद्ध के द्वारा विजय प्राप्त करने की परम्परा। इसी आदर्श के कारण तो नागवंशी फणिमुकुट राय को पाला-पोसा गया है और उसके बड़े होने पर छोटानागपुर का राजा उसे ही बना दिया गया। इस परम्परा को निम्नलिखित पंक्तियों से भी स्पष्ट किया जा सकता है-

''चेतन दिसुम भुंइयार पट्टी रे गेतु साय लुतुम मोयोद होड़ोए तैकेना। इनिःमसिंग हगातेलोः पेरोवां गड़ाते हाइ बंड़ांसी ते किन सेनोः जना। गड़ा रे बड़ांसी किन हुरंग केदा, एनलोःगे मोयोद गेतु हाइ हुअः केदा ओड़ोः किंग हुरंग उड्डंग लिःआ। अनिः दो ओते रेदो कए उयुः जना, सिरमा-सिरमा तेः ओटंग जना। एन बरत हगेया एन ओटंग तन हाइ किंग हर ओतोंग किःआ। एन हाइ लतर दिसुम मरंग बुरू चेतन रेः उमुः जना। एन हातु रेन होड़ो को किग कुलि केद कोआ चि हाइ कोताः रेपे लेलाःइआ ? इनकु मेन केदा मरंग बुरू चेतन रे मोयोद हाइ उयुगा कनाएः। इनकु इनकिंग को इदि केद किंआ। ओड़ोःको लेल किःया सरतिगे हाइ मेनाःइया। इनकु एन होड़ोकिं को कुलिकेद किंआ चि अबेन आको हातु होड़ो किंग तनबेन? इनकिं मेनकेदा, अलिंदो चेतन दिसुम भुंइयार पट्टी होड़ोतनलिंग। आद ओड़ोः को कुलिकेद किंआ चि ने हाइ ओको रेबेन बंड़ांसी लिःआ? इनकिंग मेन केदा पेरोंवा गाग रेअः मरंग इकिर रेलिंग बंड़ासी लिःया। इनकिंआ कजि अयुम केद तेको दन्दागिड़ी जना ओड़ोःको मेन केदा जरूडु केयाते ने होड़ो किंग सिङबोंगा नेरेः अगु तद किंगा। जरूडु केयाते ने टयद रेकिंग बोंगा लेरे अलेअः बुगिन होबाओअ जः मेन्तेको विचार केदा। एन होड़ोकिंग को मेताकिं तना चि 'हे हगाकिंग संगिन दिसुम रेनकिंग अबेन अलेअः नगेन्ते भगवान अगुवा कद बेना; अबेन अलोबेन सेनोःआ नेरेगेबु तैना। जगा जिमी सोबेनाःले ओमा बेना, ने टयद रे तबू बोंगा एबेन।'' [98] अर्थात्- देश के ऊपरी भागों में, भुइंयारी पट्टी में **गेतु साय** नामक

एक आदमी रहता था। वह एक दिन पेरवां नदी में अपने भाई के साथ मछली मारने गया। उसने नदी में बंसी डाली, थोड़ी देर में उसमें एक गेतू मछली फँस गई। उसने जब बंसी फेंकी तो मछली जमीन पर नहीं गिर कर सीधे आसमान मे चली गई। दोनों भाई उस उड़ती हुई मछली के पीछे चल पड़े। वह मछली देश के निचले भाग में मरं-बुरू या बड़ा पहाड़ के नीचे गिर पड़ी। दानों भाइयों ने गाँव वालों से पूछा कि उस मछली को तुमलोगों ने कहीं देखा है? गाँववालों ने बताया कि मरंबुरू (बड़ा पहाड़) के नीचे एक मछली गिरी है। तब गाँव वाले उस स्थान पर उन्हें ले गये। सचमुच वहाँ एक बड़ी मछली पड़ी थी।

लोगों ने भाइयों से पूछा कि तुम दोनों कहाँ के रहने वाले हो? और यह मछली तुम कहाँ फँसा रहे थे? उन्होंने बताया कि हम ऊपर इलाके की भुंइयारी पट्टी के रहने वाले हैं और घाघा के गहरे पानी में मछली फँसा रहे थे। गाँव वालों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि अवश्य भगवान ने इन्हें भेजा है, इसलिए अपने कल्याण के लिए इन्हें पूजा करने कि लिए यहीं रख लेना चाहिए। उन्होंने भाइयों से कहा, 'हे भाई, ईश्वर ने बहुत दूर से तुम्हें हमारे लिए भेजा है इसलिए तुमलोग अब यहीं रहो, लौटकर मत जाओ। हमलोग तुम्हें जगह-जमीन सब कुछ देंगे। तुमलोग पूजा करने का काम किया करो।'

अतः अशोक पागल द्वारा प्रस्तुत मुण्डाओं और कुड़ुखों की परस्पर प्रक्रिया बिल्कुल ही निराधार है। उस समय झारखण्ड के आदिवासियों में जात-पात की भावना नहीं थी। सभी एक दूसरे के पूरक थे। फिर भी इनके बीच मतभेद हो जाने से युद्ध उनकी रीति थी। युद्ध क्रीड़ा इनका एक क्रिया-कलाप ही था। यह प्रथा पिछली पीढ़ी तक के मुण्डा लोगों में थी। किसी न किसी गाँव में उस पीढ़ी के आदमी अब तक जीवित मिल सकते हैं।

किसी गाँव में जाकर बसना, जमीन जगह अपने कब्जे में करना, जमीन के लिए लड़ने की क्षमता उनमें थी। उस गाँव के पूर्व निवासियों और मुण्डा जैसे मूल व्यक्तियों के साथ मेल-मिलाप, आदर्श व्यवहार के परिणामस्वरूप होता था। पूर्ण रूप से जमीनी कब्जा प्राप्त करने के लिए गाँव वालों को तथा मुण्डा को खस्सी आदि देना, खिलाना या दान देना सामाजिक विधान था। अतः इनके सामाजिक-सांस्कृतिक रीति-रिवाज ही नियम और कानून थे।

इसी आधार पर गाँव का विलेज नोट आदि भी मिलता है। वहीं

आज जब हम किसी गाँव में या शहर में बसते हैं तब उस गाँव की जमीन खरीदनी पड़ती है। यह खरीद-बिक्री कोर्ट-कचहरी में होती है। उस काल में यह काम गाँव पंचायत का था। उसका सर्वेसर्वा मुण्डा होता था। इसी प्रकार किसी जंगल या गाँव में पहले से बसे लोग अपनी इच्छानुसार कृषि योग्य खेत बनाते तथा दूसरे लोगों को भी इस ओर बसने या आने का आह्वान करते थे। इससे सम्बन्धित एक लोक गीत द्रष्टव्य है -

एला रे सातो सए संता	अर्थात्- हे सातों इलाकों के भाइयों
एला रे बिसो नागपुर	हे बीसों नागपुर के
तजना कंचिगड़ा लिंगि तना	यहाँ तजना-काँची नदियाँ बह रही है
कारो कुइल रे बुअल तना	कारो-कोयल उमड़ रही है।
ओ दिसुम हरियारा मेतम	वाह! इस देश में हरियाली है
टोला टोला भट्टीदार को	गाँव-गाँव में भट्टिदार है
सिङसुबा दरु सुबा मेतम	जो पेड़ के और वृक्ष के नीचे है
हेन्दे पुन्डि हरियरआ	काला-सफेद और हरियाली है।
तजना कंचिगड़ा लिंगितना	तजना और काँची नदी बह रही है
टका सिका अतुतना	जिसमें रूपये-सिक्के बह रहे हैं।
करो कुइल रे बुइल तना	कारो-कोयल उमड़ रही है
बबा चउलि बुअल तना [99]	उसमें धान-चावल उमड़ रहा है।

मुण्डारी लोक कथाओं से प्रमाणित होता है कि सबसे पहले जब मुण्डा जाति खूँटी- अनुमण्डल में आई, तब यहाँ पहले से रह रही असुर और तिरकी जातियों से इनकी मुलाकात हुई थी। सोसोबोंगा कथा में मनुष्य और असुर की लड़ाई का वर्णन है। यह युद्ध मुण्डा और असुरों का युद्ध था।

दिलवर हंस ने अपनी पुस्तक 'होड़ो जगर रेअः एतेःहइसि नङगम ओड़ोः हरा रनकब' मे लिखा है कि, ''खूँटि रेअः नेकाओ जगर अगुआ कना; मुण्डा को नेतः सिदा सिदा को हिजुः लेन रे इनकु नेतः कोरे सिदाअते तइन तन असुर को अर तिरकी जतिको को नम लेद कोअ. ने तिरकी कोगे नेतः रेन भुंइहरको तइकेना ओड़ोः असुरको इनकुअः रइयत को तइकेना।''[100] अर्थात्- खूँटी के विषय में इस प्रकार की बातें कही जाती रही है। जब मुण्डा

लोग पहले-पहल यहाँ आए तब इनकी यहाँ पहले से रह रही असुर और तिरकी जातियों से मुलाकात हुई थी। तिरकी ही यहाँ के भुंइहर थे और असुर इनके रैयत थे।

"नेअ होनोबा दो अबु तला एटःको अर आर्य जतिको अउरि को हिजुः सेटेरोः रेअः दिपिलि इमतङ रेअः कजि रेदङ बतिकम होनङ ने असुरको पेड़ेःअन होड़ोको मपरङ रगोसाको लेकानको तइकेना। इनकुअः कुड़िकोअः सुपुरेअः चिमिनङ लेका मेड़ेद रेअः टाड़को देवगमि हतु रेअः इनकु बइलेद मठकोरे नमलेना एनकातेगे जाअः इनकु मोद पुरअःको कमितन रे मुसिङ मोद निदा रे मिअद जोनतोर पुकुरिको उर तेअर दड़ितन तइकेना।" [101] अर्थात् - यह घटना, जब हमारे बीच मे दूसरे लोग और आर्य जाति के लोग यहाँ नहीं आये थे तब की बात है। ये असुर बलशाली और विशाल राक्षसों के समान थे। उनकी पत्नियों के आभूषण (टाँड़) हमारे जाँघ से मेल खाने जैसी थीं। जो उनके द्वारा निर्मित देवगमी गाँव के मठ में मिले थे। इसी कारण शायद एक ही बार में बहुतों की संख्या में काम करते हुए एक रात में ही एक तालाब की खुदाई पूरी कर डालते थे।

उपर्युक्त मठ सिरिपरगना के देवगमी गाँव में है। इस मठ के निर्माण की जनश्रुति के पीछे की कथा इस क्षेत्र में जगन्नाथ जी की मंदिर स्थापना से संबंधित है। यहाँ के लोगों तथा राजाओं में अलग-अलग दो स्थान इसके लिए प्रस्ताव में आये। कुछ ने कहा कि देवगमी में बने और दूसरे क्षेत्र वालों ने कहा कि जगन्नाथपुर पहाड़ी पर बने। इस विवाद को हल करने के लिए यह तय किया गया कि दोनों स्थानों में एक ही समय रातभर में मठ बनाकर तैयार किया जाए और तैयार होते ही ऊपर झण्डा तथा बत्ती लगा दिया जाए। जो पहले तैयार होगा उसी जगह का चयन मन्दिर स्थापना हेतु कर लिया जाएगा। देवगमी का मठ आधी रात तक तैयार हो गया था, जो ज्यों का त्यों अभी भी मौजूद है। परन्तु देवों की भी यही इच्छा थी कि जगन्नाथपुर पहाड़ी पर ही मन्दिर बने अतः मठ तैयार होने के पहले ही झण्डा बाँध कर तथा बत्ती जलाकर मठ बनाते रहे। जगन्नाथपुर की पहाड़ी इसके पहले भी पहाड़ी पूजा स्थल के रूप में थी। तब से प्रतिवर्ष शुक्ल पक्ष आषाढ़ द्वितीय तिथि को लगनेवाला छोटानागपुर का यह महान् सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक पर्व 'रंथयात्रा'- मेले ने ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त कर लिया है।

मुण्डाओं की गाथा 'सोसोबोंगा' से प्रमाण मिलता है कि मुण्डारी क्षेत्र अर्थात् खूँटी सबडीविजन में असुरों का एक गढ़ बुण्डू-तमाड़ भी था। यहीं पर एकासीपिड़ी और तिरासीवादी (टाँड़) नामक स्थान था, जो उत्तर भारत के बताये गये जगहों के अनुसार यहाँ भी रखा गया लगता है। जहाँ असुर लोग दिन-रात लोहा गलाते थे। जिसके कारण प्रदूषण फैल गया था। बुण्डू में जोड़ा तालाब और रानी चुँवा अभी भी मौजूद है। उक्त स्थान के सम्बन्ध में सोसोबोंगा कथा के तीसरे सर्ग में आयी निम्नलिखित पंक्तियों का अवलोकन किया जा सकता है-

ऐ हो मरङ ददा ए हो मरङ बोया	अर्थात्- हे बड़े भाई, हे दादा
एकाइसि बुण्डु बाइसि तमाड़	इक्कीस बुण्डु बाइस तमाड़
दोलं सेनोग, दोलं बिरिदा	चलो हम चलें, चलो हम उठें
तुड़ी सुतमते बादी बयर ते	तुड़ी की सूत के बादी की रस्सी से
एकैसि बुण्डु बाइसि तमाड़	इक्कीस बुण्डु बाइस तमाड़ में
एन रे किन डेरा केदा,	वे ठहर गए,
एन रे किन बसाकेदा [102]	वे रुक गये.

इसी स्थान पर सिंङबोंगा ने असुरों का विनाश करने हेतु अग्नि वर्षा की थी। तब दोनों पर आफत आई और वे दोनों एकासी मैदान-तिरासी टाँड़ के राजा-गाँव की ओर दौड़ गये। एक भाई लोहरा के घर के पीछे तथा दूसरा भाई ब्राह्मण के पवित्र तुलसी चबूतरे की पीछे जा छिपा। वर्षा बन्द होने के बाद दोनों मिले। फिर वे चलते-चलते 'बड़े जाते' - 'छोटे जाते' गाँव पहुँचे। वे वहाँ नहीं ठहरे, फिर छोटा डोरण्डा - बड़ा डोरण्डा और वहाँ से राँची के छोटा पहाड़ से बड़ा पहाड़ पहुँचे। तब भगवान ने अपने बड़े भाई से कहा - दादा (भैया) मैं तुम्हें यहीं छोडूँगा। यहाँ से तुम चारों दिशाओं को देखोगे; तुम्हारी पूजा होगी। हम सब कुछ पूरा करेंगे। अगर कोई तुम्हें काला, लाल, चितकबरे जीव की बलि तथा दक्षिणा देगा तो तुम उसे ग्रहण कर लोगे। केवल सफेद रंग के बकरे या मुर्गे और सिरनी आदि की दक्षिणा मुझे दे देना। ऐसा कह कर ईश्वर बड़े भाई को राँची पहाड़ी पर छोड़कर एकासी मैदान और तिरासी टाँड़ चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने चाल चली। ईश्वर ने रोग की वर्षा की। खेत जोतने वाले लड़के को फोड़ा-फुंसी हो गयी। तब ईश्वर ने उसका दुखड़ा पूछा। फिर ईश्वर ने उस लड़के की खाल उतार कर उसे अच्छा बना दिया।

वही फोड़ा-फुंसी वाली खाल ईश्वर ने पहन ली। खसरा लड़का के रूप में लुटकुम बूढ़ा, लुटकुम बुढ़िया के घर में असुरों को खत्म करने के लिए वह दास अर्थात् धांगर बनकर काम करने लगे। इससे सम्बन्धित गीत असुरों के द्वारा गाया गया था, अब यही गीत मुण्डाओं द्वारा गाया जाने लगा है -

सू कड़े गोड़ा रटापटा	अर्थात्- देखो, कासी-मैदान रट पट
सू लो तना भला -2	देखो, जल रहा है !
सू लुपुःतियम चिरि बिरि	देखो, लुपुःतियम (घास) चिट चिट
सू लो तना भला -2	देखो, दहक रहा है !
सू अकोए गे ओन्डोर केदा	देखो, किसने जलाया है?
सू लो तना भला -2	देखो, जल रहा है !
सू चिमएगे अतर केदा	देखो, किसने आग लगाई है?
सू लो तना भला -2	देखो, दहक रहा है !
सू दसि कोड़ा ओन्डोर केदा	देखो, धांगर ने ही आग लगाई है।
सू लो तना भला -2	देखो, जल रहा है !
सू खसरा कोड़ा अतर केदा	देखो, खसरा युवक ने ही जलाया है।
सू लो तना भला -2	देखो, जल रहा है !

बुण्डु-तमाड़ असुरों का गढ़ था तो स्वाभाविक है वहाँ लौह उद्योगों का गढ़ रहा हो। इस प्रसंग में विभिन्न राग के मुण्डारी लोक गीत भरे पड़े हैं। एक जरगा लोकगीत इस प्रकार है-

ओको रेको बइ तना	अर्थात्- कहाँ बनता है
समड़ोम मइल दो	सोने का पांथा
चिमए रेको बुड़ःइ तना	कहाँ बनता है
रूपा अःसार दो	चाँदी का धनुष
बुन्डु रेको बइ तना	बुण्डु में बनता है
समड़ोम मइल दो	सोने का पांथा
तमाड़ रेको बुड़ःइ तना	तमाड़ में बनता है
रूपा गेल अःसार दो	चाँदी का धनुष

समड़ोम मइल रे	सोने का पांथा
सोना चांको जुड़ः जदा	स्वर्ण लटका है
रूपा गेल अःसार रे	चाँदी के धनुष में
बयर चाको तोल तदा	रस्सी लटकी है
समड़ोम मइल रे	सोने का पांथा
सोना चाको जुड़ः तदा	स्वर्ण लटका हुआ है
किरिङअइञमे एयङरे	हे माँ मुझे खरीद दो
सेंदेराञ इदिया	मैं शिकार में ले जाऊँगा
रूपा गेल अःसार रे	चाँदी का धनुष में
बयर चाको तोल तदा	रस्सी बाँधा हुआ है
खेजाइङमें अपंङ रे	हे पिता मुझे खरीद दो
करेगातेञ पयरेया [103]	मैं शिकार में पकडूँगा.

मुण्डारी लोक गीतों में पेड़-पौधों का वर्णन अधिकांशतः मिलता है जहाँ असुर गाँव के पेड़ों का चित्रण हुआ है। सोसोबोंगा या भेलवा पूजा कथा में ऐसा वर्णन मिलता है। उसी भाँति तमाड़ में दिउड़ी की सोलहुभुजी देवी मंदिर असुरों द्वारा बनाया कहा जाता है। शिव के भी मंदिर यहाँ है। लक्ष्मी, सरस्वती आदि सात बहनों में सोलहभुजी देवी बड़ी बहन है। "दिउड़ी मंदिर की एक विशेषता यह है कि यहाँ मुण्डा पहान (आदिम जाति पुजारी) मंगलवार को छोड़कर शेष दिन पूजा कराता है।" [104]

असुरों का और एक नगर लोहरदगा था। "लोहग्गल (लोहरदगा), नागरी संस्कृति का एक विकसित नगर था, जो विनिमय केन्द्र के क्रम में ख्याति अर्जित कर चुका था। चारों ओर के लोग विनिमय के लिए यहाँ आते थे। मुण्डाओं और कुडुखों के यहाँ आने और बसने से पूर्व इस प्रदेश में निवास करने वाले असुर जिनका प्रमुख काम लोहा गलाना था, इसी लोहग्गल के विनिमय केन्द्र में अपने लोहे के बदले अन्य आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करने आया करते थे।" [105]

मुण्डारी लोक साहित्य में भी इसका प्रमाण मिलता है। जिसमें चेतन

दिसुम (उपरी क्षेत्र), नगुरी दिसुम (नगर-क्षेत्र), लोहग्गल नगर के लिए आया है तथा बुन्डु-तमाड़ के लिए - हसादः तमाड़, लतर दिसुम (निचली क्षेत्र) नाम आया है। इन दो क्षेत्रों की सीमा रेखा के बीच में राँची-चाईबासा मार्ग है। इस मार्ग से पूरब लतर दिसुम और पश्चिम चेतन या नगुरी दिसुम है। यहाँ इनके स्पष्ट सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि परिदृश्य परिलक्षित होते हैं। इन ऊपर देश और निचले देश से सम्बन्धित अनेकों लोक गीत हैं। ऐसा ही एक जदुर लोक गीत है-

नगुरी कुड़िया ददा	अर्थात्-	हे बड़े भाई, नगुरी- लड़की का,
बोः दंदा पुंदाया ददा		हे बड़े भाई, बाल बिखरे है।
हसादाः कुड़िया ददा		हे बड़े भाई, हसादः(निचले क्षेत्र) की लड़की,
सेनए हिसद होसोद		धीरे-धीरे चलती है।
बोः दंदा पुंदाया ददा		हे भाई, सिर के बाल बिखरे है।
नकिः किरिंअइमे ददा		उसे तुम कंघी खरीद दो।
हिसद होसोदा ददा		हे भाई, धीरे-धीरे चलती है।
डुलि तोलाइ मे		उसे तुम डोली बांध दो।
नगुरी कुड़िया ददा		हे बड़े भाई, नगुरीया ऊपरी क्षेत्र की लड़की,
जी रेञ सुकुअइया ददा		हे बड़े भाई, मुझे पसन्द है।
हसादः कुड़िया ददा		हे बड़े भाई, हसादः(निचले क्षेत्र) की लड़की,
तिंयुः गे सेटेरालङ में [106]		लाने के लिए हमें पहुँचा दो।

ईश्वर ने असुरों को नष्ट करने के लिए लीलाएँ की और असुरों का अन्त हो गया। "असुर संस्कृति के बारे में यह कहा जा सकता है कि यह संस्कृति कम से कम कुशान काल, लगभग(70 से 150) ई0 सन् तक तो थी ही।"[107] परन्तु झारखण्ड के आदिवासी लोगों में असुर संस्कृति आधुनिक युग में अब तक कुछ अंशों में देखने को मिलती है। जैसे- "लोग मरनोत्तर जीवन में विश्वास करते थे तथा मृतक व्यक्तियों को भोजन और जल प्रदान करते थे एवं करते है।" [108] इतना ही नहीं, ये असुर मुर्दों को चावल-भरा कासे की थाली देकर मिट्टी देते हैं।

अतः छोटानागपुर के विभिन्न जनजातीय ही उस काल में असुर

कहलाते थे। झारखण्ड की सभी जनजातियाँ शिव या महादेव-पार्वती के पुजारी हैं। महादेव मण्डा में पाठ-भोक्ता प्रायः लोहरा आदिवासी होते हैं। मण्डा घर में भक्तों का प्रवेश मानो असुरों द्वारा खसरा कोड़ा को भट्ठी में ढकेल कर सात दिन तक धुकने के समान है। मण्डा के पहले दिन धुँवासी भट्ठा धुकने का प्रतीक है। दूसरी रात जागरण में छौ नृत्य, असुरों से युद्ध और हार का प्रतीक है। इसी रात फुलखुन्दी में भक्तगण आग में चलते हैं। सुबह झूलन होता है। भक्तों का साज-श्रृगांर से ऐसा प्रतीत होता है मानो भट्ठा में न जलकर खसरा इसी भाँति सुशोभित हो बाहर आया था। 'मण्डा' पर्व का पुजारी गोसाईं होता है। आदिवासी लोग इसका चयन करते हैं। वह गोसाईं (पुजारी) हिन्दुओं के सम्पर्क में हिन्दुत्व को स्वीकार करता है। वर्त्तमान समय में आदिवासियों के पूजा स्थलों को हिन्दुओं का भी माना जाता है। इसलिए यहाँ पर धार्मिक एवं सांस्कृतिक मिलन का वातावरण बनता आ रहा है।

छोटानागपुर का शासन नागवंशी राजाओं के हाथ में चले जाने के पश्चात् पुनः मुण्डा लोग नई बस्तियों की खोज में दक्षिण की ओर राँची, डोरण्डा होते खूँटी क्षेत्र में पहुँचे। उनमें से एक अलदेव मुण्डा के पाँच पुत्र और एक पुत्री पुस्की थी। जिसने इस इलाके में घूमते हुए मिट्टी से पानी निकलते देखा, तब इस भू-भाग को हसादः कहा गया। चार भाई खूँटी के पूरब-दक्षिण और उत्तर की ओर बढ़े। लेम्बा और पाण्डु नामक भाई जरंगा नामक गाँव बसाये। मंझला भाई वहीं रह गया। सबसे छोटा भाई अलदेव चोन्डोर नामक गाँव बसाया, वह सोदाः और कदलडीह नामक गाँव के धनी व्यक्ति से कृषि में मदद लेता था। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-"तइन जनए कोड़ो अलदेव लुतुम मुण्डा रे ए हिसि दासी धंगड़ा ए हिसि कमड़ी को तइकेना रे।" [109] अर्थात्- अलदेव मुण्डा पद में रह गया। उसके एक सौ चालीस धांगर और एक सौ चालीस धंगरिन थे। इस प्रकार मुण्डाओं की बड़ी जनसंख्या खूँटी क्षेत्र के वनों में विस्तृत रूप से बसी तथा गाँव का विस्तार होता गया। खूँटी, मरंगहादा, बुड़ाडीह, सोयको, किताहातु, अड़की, गेरेड़ें उलिहातु, बुण्डु, तमाड़, सोनाहातु तथा दक्षिण में मुरहू, सरवादाग, संडीगाँव, बन्दिगाँव, कोचंसेंजड़ी, बुड्डजू आदि तथा पश्चिम में जलटंडा, कर्रा, गोविन्दपुर, जरिया, लोधमा, डोड़मा, सोन्दारी, तोरपा, तपकरा, बसिया, बानो आदि क्षेत्रों में वे केन्द्रित हो गए। जहाँ फिर उन्होंने 'अबुवाः दिसुम' (हमारा देश) की स्थापना की। यह

सब तब नागवंशी राजाओं के अधीन था, फिर भी उस समय पहले की तरह मुण्डाओं में अमन-चैन का सिलसिला चलता रहा। छोटानागपुर में कोई बाहरी आक्रमण का भय नहीं दिख पड़ता था।

उत्तर मध्य काल के 1206 ई0 में मुस्लिम शासन की स्थापना के बाद बहुत से हिन्दू राजवंशों ने छोटानागपुर में आकर अपने-अपने राज्य स्थापित किये। पहाड़ों और जंगलों से आच्छादित होने के कारण यह इलाका मुस्लिम आक्रमणकारियों के लिए दुर्गम था। इसलिए तुर्क-अफगान शासन काल में छोटानगपुर में कई हिन्दू राज्यों की स्थापना हुई, जिनमें नागवंशी, रक्सेल, सिंह और रामगढ़ राज्य उल्लेखनीय हैं। इन सभी राजवंशों ने अपने को क्षत्रिय कहा। इन्हीं राजवंशों के संरक्षण में आर्यावर्त से पुरोहित, सैनिक, शिक्षक, व्यापारी, बुनकर, लुहार, बढ़ई तथा अन्य व्यवसायी यहाँ आकर बसने लगे।" [110]

मुस्लिम शासकों का मूल उद्देश्य शासन करने से कहीं अधिक लूट-हड़प लेने का था। यहाँ से पुनः छोटानागपुर में बाहरी आक्रमण का बिगुल बजने लगा। अकबर के शासन काल में सरहुल के दिन आदिवासी युवा सुबह होते ही साखू फूल के लिए वन निकल गये थे। तब अकबर की मुगल सेना ने इनके गाँव पर आक्रमण कर दिया था। सिनगी दई तथा उसकी सहयोगिनी कैली दई और माकी दई के नेतृत्व में समस्त वीरांगनाओं ने अपन-अपने भाइयों तथा पतियों के पोशाक तथा हथियार उठाकर मुगल सैनिकों के दाँत खट्टे कर दिए थे। जिसका ज्वलंत उदाहरण है प्रति बारह वर्षों में एक बार झारखण्ड की आदिवासी महिलाओं और युवतियों द्वारा निकाला जाने वाला जनी शिकार। जिसमें ये महिलाएँ उसी युद्ध की याद में पुरुषों की भाँति वेश धारण कर प्रतीकात्मक शिकार पर निकलती हैं। इसका नेतृत्व अभी भी प्रत्येक गाँव या मौजा के पहान अथवा मुण्डा की पत्नी, पत्नी के न होने पर बेटी ही करती है। स्त्रियाँ अपने पति का एवं लड़कियाँ अपने भाइयों का पहनावा पहन लेती हैं। उस समय तक के लिए उसकी सहयोगिनियाँ उसे उसके पति के नाम से ही सम्बोधित करती हैं। इसी तरह कुंवारी लड़कियाँ अपने भाई के नाम से सम्बोधित होती हैं। इससे स्पष्ट है कि मुण्डा जाति एवं छोटानागपुर के आदिवासियों में स्त्री-पुरुष की सहभागिता हर जगह, हर परिस्थिति में आदिम काल से प्रचलित रही है। अभी भी मुण्डा गाँवों में सरहुल, करम आदि पर्वों में एक गाँव के अखाड़े में बहुत से गाँव के युवकों की नृत्य मंडली

पहुँचती है जिससे अखाड़े में काफी भीड़ हो जाती हैं। कभी-कभी कोई अपनी बारी भूल जाते हैं, तब दो दल में गीत-युद्ध चलता है। इसका फैसला गाँव के युवकों की अनुपस्थिति में आगे नाचती हुई युवतियाँ ही करती हैं। फिर गाँव की युवक मण्डली जब दूसरे गाँव के अखाड़े में भाग लेने जाती है तब भी गाँव के अखाड़े का नेतृत्व युवतियाँ ही करती हैं।

इसके उपरान्त ''तुर्क अफगान काल में छोटानागपुर पर कोई संगठित हमला नहीं हुआ। शेरशाह ने श्यामसुन्दर नामक उजले हाथी को प्राप्त करने के लिए झारखण्ड के राजा के विरुद्ध एक सेना भेजी थी। मामूली युद्ध एवं थोड़ी लूट-खसोट के बाद यह हाथी शेरशाह को वापस कर दिया।'' [111]

''मुगल शासक जहाँगीर ने 1616 ई0 में खुखरा पर चढ़ाई की और नागवंशी राजा दुर्जनशाल को बन्दी बना लिया था।'' [112]

उपर्युक्त तथ्यों से साफ पता चलता है कि छोटानागपुर में मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद ही और अनेकों शासक बाहर से आये। ''मुगल साम्राज्य के लगभग अन्तिम शासन काल में अंग्रेज भारत में व्यापार करने के लिए आए थे। लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने भारत में अंग्रेजी शासन की नींव दी।''[113] विदेशी शासकों की इस दमन नीति से यहाँ की जनता में आक्रोश पैदा हुआ। 1765 ई0 में बक्सर युद्ध के बाद ''जब अंग्रेजों का आगमन झारखण्ड की धरती पर हुआ और रामगढ़ को पहला 'हिलटेक्ट जिला' बनाया गया, जहाँ से अंग्रेजों ने साम्राज्यवादी शासन का विस्तार प्रारम्भ किया तो सबसे पहले 1769 ई0 में अंग्रेजों के विरुद्ध दालभूम के राजा ने बगावत की मशाल अपने हाथों में ले ली। रामगढ़ के राजा रतन साय को साथ देने के लिए सिरि परगना के टुन्डीगड़ा-हजाम के राजा दुखन साय ने भी अपने परगने की जनता को सतर्क कर दिया था। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोक गीत द्रष्टव्य है-

डुंड़िगड़ दुकन सय	अर्थात्-	डुन्डीगड़ा का दुखन साय
का होए बोरोएअ		हे बन्धुओं तुम डरपोक नहीं हो
रमगड़ा रोतोन सय		रामगढ़ का रतन साय
का होए एकेलाओःअ		हे भाइयों घबराना नहीं
बइअतबुपे		भाइयों हम उसे बना देंगे
सय दनुवर हो		सौ तीर-धनुष

बड्डइअ तबु पे — उसके लिए हम बना देंगे
हिसि हतोवल — बीस धनुष की बाँस पट्टी

तिंगुतइ तबुपे — हम उसे खड़ा कर देंगे
मेरेल सुबारे — आँवला पेड़ के नीचे
जपअः तइ तबुपे — हम उसे खड़ा कर देंगे
रोला सुबा रे [113] — बहेरा वृक्ष के नीचे।

इसके बाद 1793-95 ई0 में तिलका मांझी विद्रोह हुआ जिसका नेतृत्व तिलका मांझी ने किया। इससे सम्बन्धित मुण्डारी लोकगीत है-

चिहो बलगा रजा अर्थात्- हे बलगा के राजा
दिसुमतम चि दुदुगारजन? क्या तुम्हारा देश धूल-धूसरित हुआ?
चिहो इचाः रजा हे इचाः के राजा
गमएतम दो कोंवसि जन? क्या तुम्हारा गाँव धुंधला हो गया ?

हे हो रजा तुपुइङ तना- हाँ, बन्धु! राजा मांझी युद्ध कर रहा है
हे हो दुदुगर जन हाँ, बन्धु! धूल-धूल हो गया है
हे हो तेलेगाको मपःतना हाँ, भाई! दुश्मन युद्ध कर रहे हैं
हे हो कोंवसिजन [114] हाँ, भाई! धुंधला छा गया है

सन् 1798-99 ई0 में मानभूम में भूमिज विद्रोह का बिगुल बजा। इसका संचालन गंगानारायण ने किया। इससे सम्बन्धित मुण्डारी जदुर गीत इस प्रकार है-

हय नराएन गंगा नराएन अर्थात्- हे नारायण गंगा नारायण
डुलुः लेकम जलतिंतना तुम डुण्डली(टिड्डी) की तरह मंडरा रहे हो
हय नराएन गंगा नराएन हे नारायण गंगा नारायण
हेंणेः लेकम बुलतिं तना हेणेः(बलुवा पक्षी) की तरह मंडरा रहे हो

डुलुः लेकम जलतिंतना तुम डुण्डली की तरह मंडरा रहे हो
खंडा तम जुले तना तुम्हारी ढाल चमक रही है।
हेंणेः लेकम बुलतिं तना हेणेः की तरह मंडरा रहे हो
फिरितम लिंगितना तुम्हारी तलवार चमक रही है

खंडा तम जुलेः तना तुम्हारी ढाल चमक रही है।
तरा दिसुम लो तना आधा देश जल रहा है
फिरितम लिंगितना तुम्हारी तलवार चमक रही है
तरा गमए बले तना [115] आधा देश बरबाद हो रहा है

1800-02 में पलामू में भूखन सिंह के नेतृत्व में चेरो विद्रोह भड़क उठा। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोक गीत इस प्रकार है-

*मरबाबु रामे साय भूखल सिंह*अर्थात्- हे रामशाह और भूखन सिंह
मरबाबु चँवर सबे बिन हे पुत्रों ! तुम चाँवर पकड़ो
मरबाबु रामे साय भूखन सिंह हे रामशाह और भूखन सिंह
मरबाबु झंडा तोले बिन हे पुत्रों ! तुम झंडा बांधो

मरबाबु हतु दोको बियुर केदा हे पुत्रों ! गाँव को घेर लिया
मरबाबु चँवर सबे बिन हे पुत्रों ! तुम चाँवर पकड़ो
मरबाबु दिसुम दोको टपओकेदा हे पुत्रों ! देश-दखल कर लिया
मरबाबु झंडा तोले बिन हे पुत्रों ! तुम झंडा बांधो

सन् 1819-20 ई0 में तमाड़ का मुण्डा विद्रोह और कोल विद्रोह हुआ। बुण्डू-तमाड़ में असुर युद्ध के बाद यह दूसरा बड़ा नरसंहार का युद्ध रहा होगा। मुण्डा और कोल से सम्बन्धित अनेकों लोक गीत हैं। एक जदुर लोक गीत प्रस्तुत है-

ओको रेको मपःतना अर्थात्- कहाँ मार-काट(युद्ध) हो रहा है
मइल गेले पुन्डि सदोम दस सफेद घोड़े हैं
चिमए रेको तुपुञ तना कहाँ तीर की लड़ाई चल रही है
महाराजाः पंइकि दो महाराज का पैइखा है।

मइल गेले पुड़ि सदोम दस सफेद घोड़े हैं
किकिःकेन किकिःकेन हिनहिनाना गूंज उठा है।
महाराजाः पंइकि दो महाराज का पैइखा है।
दोला केन दोला केन हिल रह है, लहर रहा है

बुन्डु रेको मपः तना	बुण्डू में मार-काट हो रहा है
किकिःकेन किकिःकेन	घोड़े हिनहिना रहे हैं
तमाड़ रेको तुपुञ तना	तमाड़ में लड़ाई हो रही है
दोला केन दोला केन [116]	हिल रहा है, लहर रहा है।

1824 में आदिवासी स्वशासन पद्धत्ति में परिवर्तन किया गया और पूरे क्षेत्र को सरकार की सम्पत्ति घोषित कर 'दामिन-ए-कोह' के नाम से चिह्नित किया गया है और सरकार, नवाब एवं मांझी को भत्ते के बदले जागीर दी गई। 1831 में सिंगराय तथा बिंदराय मानकी के द्वारा अंग्रेजी सरकार तथा स्थानीय शोषकों के खिलाप कोल-विद्रोह भड़का। कोल विद्रोह का मूल कारण सिंगराय मानकी के बारह गाँव तथा बड़गाँव के सुरसा मुण्डा की जमीन दिकुओं के नाम बन्दोबस्ती करना था। 11 दिसम्बर, 1831 को लंका गाँव में मुण्डा लोग एकत्रित हुए। इस आन्दोलन को दबाने के लिए कप्तान विल्किंसन द्वारा सैनिक कार्रवाई की गई। विद्रोह के बाद मुण्डा मानकी की जमीन लौटा दी गई और एक नये दक्षिण-पश्चिम सीमा-प्रांत का गठन किया गया। लोहरदगा, पलामू तथा मानभूम तीन जिले बनाये गये। 1831-33 में भगीरथ, दुबीया गोसाईं तथा पटेल सिंह के नेतृत्व में खेरवार विद्रोह हुआ। 1833 में छोटानागपुर पठार दक्षिण-पश्चिम सीमान्त-एजेन्सी के अन्तर्गत शामिल कर लिया गया और हजारीबाग एजेन्सी का मुख्यालय बना। गर्वनर जनरल के प्रथम प्रतिनिधि के रूप में कैप्टन थॉमस विल्किंसन पदस्थापित हुए। मानकी मुण्डा पद्धति को वित्तीय और न्यायिक अधिकार देकर प्रशासनिक स्वीकृति दी गई।

1845 ई0 को अंग्रेज-ईसाई तथा सरकारी अफसर कलकत्ता से राँची तथा डोरण्डा में आकर छा गये। इसके साथ ही साथ अन्य लोग भी आये। जिससे राँची और डोरण्डा का मैदान काँप उठा। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोक गीत देखा जा सकता है-

कलिकता तेलेंगा को रकब लेना	अर्थात् - कलकत्ता से तिलेंगे जो आये
ओकोरे नजिनको डेरा केदा	हे आजी, वे कहाँ डेरा डाले ?
सरकटी सयोबेका उपर लेना	सरकारी साहब लोग आये
चिमए रे अजिनको बसाकेदा	हे आजी उनलोगों ने कहाँ निवास किया ?

मेनाः मेनः दोरे अलचि पिड़ि	राँची का मैदान है
अलचि पिड़ि रेको डेरा केदा	वे राँची मैदान में डेरा डाले।
मेनःमेनः दोरे डोरन्डाबादी	डोरण्डा का टाँड़ है
डोरन्डा बादी रेको बसा केदो	वे वहीं बस गये।

अलचि पिड़ि रेको डेरा केदा	वे राँची मैदान में डेरा डाले।
अलचि पिड़ि दोरे एकेला जना	राँची मैदान काँप उठा।
डोरन्डाबादी रेको बासा केदा	वे डोरण्डा टाँड़ में बस गये
डोरन्डाबादी दोरे तमुर जना [117]	डोरण्डा टाँड़ हिल उठा।

इस प्रकार राँची का सिसिपिड़ी (एक प्रकार पौधा जो लाल होता है) या सिसिमैदान तथा डोरण्डा का तिलइबादी (तिलाई वृक्ष) के नाम का मैदान में बाहरी लोगों के छा जाने से मुण्डाओं का अस्तित्व खतरे में पड़ गया । इससे सम्बन्धित एक जदुर लोक गीत का अवलोकन अपेक्षित होगा-

लेलेसि सिसिपिड़ी हो	अर्थात्- देखो, सिसि-मैदान
लेलेसि लो तना	देखो, जल रहा है
लेलेसि तिलइबादी हो	देखो, तिलाइ टाँड़
लेलेसि बले तना	देखो, बरबाद हो रहा है

सिसिपिड़ि लो तना मनजु	हे मैना (बन्धुओं) सिसि मैदान जल रहा है
ओकोरेम अतिंअ मनजु	हे मैना, तुम कहाँ चरोगे ?
तिलइबादी बले तना असकल	हे असकल (भाईयों) तिलाइ मैदान जल रहा है
चिमए रेम गुसम	तो हे असकल कहाँ क्रीड़ा करोगे?

तरातेदो लो तना मनजु	हे मैना आधा जल रहा है
तरारेम अतिंअ मनजु	हे मैना तुम आधे में चरना
तरातेदो बले तना असकल	हे असकल (पक्षी) आधा बरबाद हो रहा है
तरारेम गुसम [118]	तुम आधे में बिचरना।

यही कारण है कि मुण्डा लोगों को फिर से आधुनिक युग में राँची-डोरण्डा को छोड़ देना पड़ा। दक्षिण की ओर जिस तरफ आग नहीं लगी है अर्थात् बाहरी लोगों का अतिक्रमण नहीं हुआ था वह क्षेत्र खूँटी है, की ओर

बढ़े, जहाँ पहले से रह रही मुण्डा जाति के क्षेत्र में वे आ बसे और गाँव तथा जनसंख्या में उन्होंने विस्तार किया।

अंग्रेजों ने छोटानागपुर में फूट डालो और शासन करो की नीति अपनाई। उन्होंने यहाँ के आदिवासियों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए तथा इनकी सांस्कृतिक एकता को उखाड़ फेंकने की कोशिश की गई। मुण्डा जाति जैसी एक ही समुदायों के लोगों को रोमन, आंग्लिकन, एस0पी0जी0, लुथेरन और डुबकी ईसाई आदि धर्म के कई मिशन समुदायों में धर्मान्तरित किया गया। फिर ईसाई और गैर-ईसाई का विभेद खड़ा हुआ। यहाँ के कुछ लोगों को अपना व्यापार या उद्योग चलाने के लिए असम के चाय बगानों में तथा अण्डामन-निकोबार में गिरमिटिया मजदूर के रूप में अंग्रेज ले गये थे। इन्हें छोटानागपुर क्षेत्र से सदा के लिए वंचित कर दिया गया। धीरे-धीरे बाद में वे वहीं के जंगलों तथा दलदली जमीन को साफ कर खेती करने लगे और वहीं स्थायी रूप से बस गए। इसे सम्बन्धित एक जदुर लोकगीत द्रष्टव्य है-

दोलं गतिञ रे	अर्थात्- हे मित्र
असम दिसुम ते	चलो, हम असम चलें
दोलं संगञ रे	हे मित्र
कछड़ गमए ते	चलो, हम कछाड़ चलें
असम दिसुम रे	असम में
चउलि गेले तना	चावल उपजता है
कछड़ गमए रे	कछाड़ में
पोएसा हो डिबुआकना	रुपये-पैसे हैं
दोलं संगञ रे	हे मित्र, चलो
सुकु तेलङ तयुगा	हम सुख से रहेंगे
दोलं संगञ रे	हे मित्र, चलो
लङकमि नालाः [119]	हम कमाने जाएंगे

अतः छोटानागपुर के आदिवासियों में असम, भोटांग तथा अण्डामन-निकोबार जैसे जगहों में जाने की तथा अपने क्षेत्र व गाँव छोड़ने की प्रक्रिया और भी बढ़ गई।

1857 ई0 में आन्दोलन चला, यह लड़ाई अंग्रेजों के लिए महंगी पड़ी। इसको सिपाही विद्रोह के नाम से जाना जाता है। पूरा झारखण्ड एक साथ दावानल की तरह धधक उठा। आदिवासी एक होकर मैदान में कूद पड़े। जिससे अंग्रेजों का अस्त्र-शस्त्र बेकार हो गया। "इस संघर्ष को दबाने के लिए अंग्रेजों ने सदानों को 'छूट' की व्यवस्था दी। जमीनदारी, जागीरदारी, एवं पटवारी प्रदान करने का लोभ दिया। पिठोरिया के परगनइत जगतपाल सिंह अपने सहयोगियों के साथ अंग्रेजों क पक्ष में चले गये। आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले ठाकुर विश्वनाथ शाही, पाण्डे गणपत राय एवं शेख भिखारी सहित सैकड़ों विद्रोहियों को फाँसी दे दी गई।"[120] जिन पहाड़ों को यहाँ के आदिवासी और सदान बुरुबोंगा कह कर पूजा करते थे। वहाँ अंग्रेजों से यहाँ की जनता फाँसी की सजा पा कर अपनी बलि देने लगी।

इसके बाद 1875-95 में गाँव-गाँव के अंग्रेजी दलालों, जमीनदारों एवं ठेकेदारों के जुल्म के विरुद्ध जमीनदार आन्दोलन चला। तब तक मुण्डा लोग खूँटी क्षेत्र में पूर्ण रूप से संगठित थे। तमाड़ के चलकद गेरेंड़े उलीहातु नामक गाँव में 15 नवम्बर सन् 1870 ई0 को क्रान्तिकारी वीर पुरुष बिरसा मुण्डा का जन्म हो चुका था। वे सबसे पहले तो अंग्रेज ईसाइयों के चंगुल में पड़ गये। परन्तु धीरे-धीरे उन्होंने यह देखा कि अंग्रेजों ने इस धरती की जनता के धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक संगठन एवं राजनैतिक संगठनों को छिन्न-भिन्न कर, अपनी संस्कृति-सभ्यता थोप कर, इनके अस्तितव को सदा के लिए खत्म कर इन्हें गुलाम बना डालने की साजिश कर रखी है। इनकी नीतियों से भलि-भाँति अवगत होने पर बिरसा ने ईसाई धर्म को त्याग दिया। उन्होंने अंग्रेजों और जमींदारों से मुक्ति पाने लिए 1895 से 1900 ई0 तक 'अबुअः दिसुम अबुअः राज' का स्वतंत्र आन्दोलन चलाया। अंग्रेजी तथा मिशनरियों ने उन्हें पागल घोषित कर दिया। बिरसा आन्दोलन को ठप्प करने के लिए अंग्रेजी प्रशासन ने 1896-97 ई0 में बिरसा को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया। बिरसा के पिता सुगना मुण्डा और माता करमी असहाय हो गये। कारावास के अधिकांश समय में बिरसा हजारीबाग जेल में थे। सरकार को उन्हें राँची जेल में रखने का साहस न हुआ। अन्त में कुछ समय के लिए राँची लाया गया। 30 नवम्बर, 1897 ई0 को वे जेल से रिहा हुए।

उनके जेल से छूटने के बाद ही मुण्डा और उराँव जनपदों में खुशी का

ज्वार उठ पड़ा। बहुत से मुण्डा ईसाई हो गये थे, वे मिशन छोड़कर वापस चले आए। ढोल, नगाड़े बजने लगे, नृत्य गान, खान-पान होने लागा और चलकद में मेला लग गया। "बिरसा-आन्दोलन के मुख्य चार परिप्रेक्ष्य थे। पहला यह कि यह सरदार लड़ाई का विकास था। आदिवासी अपनी जमीन और धर्म की रक्षा करना चाहते थे। उनका लक्ष्य था मुण्डा राज्य का पुर्नस्थापना। इसके लिए उन्हें अंग्रेजों से लड़ना पड़ा। यह इनका राष्ट्रीय पक्ष था। अंग्रेजों ने जिस भू-व्यवस्था को प्रश्रय दिया उससे यहाँ की पारंपरिक व्यवस्था धीरे-धीरे सर्वथा छिन्न-भिन्न होने लगी और बाहर से आकर बसने वाले दिकू ठीकेदारों तथा जागीदारों की बनती गयी।" [121]

इधर की परिस्थिति विद्रोह के लिए और भी अनुकूल बन चुकी थी। मिशनरियों ने बिरसा की सभा से आतंकित एवं अकाल से पीड़ित आदिवासियों को ईसाई बना कर संरक्षण और सेवा प्रदान की थी। बिरसा की महिमा फैलती गयी। बिरसा की मुक्ति का समाचार आग की तरह फैली। बोदोडीह में सभा का आयोजन किया गया। सरदार सक्रिय थे। धार्मिक-राजनीतिक आन्दोलन की नयी तैयारी शुरू हुई। सोमा मण्डा को धार्मिक संगठन और डोका मुण्डा को राजनीतिक आन्दोलन की तैयारी का भार दिया गया। गाँव-गाँव में प्रचारक भेजे जाने लगे। बिरसा भी अपने पूर्वजों की पुण्य भूमि के दर्शन के बहाने चुटिया, नवरत्नगढ़, नागफेनी, पालकोट एवं जगन्नाथपुर की यात्रा में निकल पड़े।

बिरसा की यात्राओं सो उसके संदेश दूर-दूर तक पहुँचे। सशस्त्र क्रान्ति की तैयारी होने लगी। अब उसका केन्द्र जंगल-पहाड़ों के बीच अत्यन्त सुरक्षित डोम्बारी नामक स्थान में था। फरवरी 1889 ई0 में मुण्डाओं की एक प्रतिनिधि सभा यहाँ हुई। दूसरे महीने सरवदा मिशन के पास सिम्बुआ पहाड़ी में फिर उनकी एक उत्साहपूर्ण सभा हुई। मुण्डाओं ने युद्ध-भावना का परिचय दिया। ब्रिटिश राज के प्रतीक रूप में इन लोगों ने एक पुतला जलाया। होली का अवसर था ही। डंडीगड़ा के दुखन साय और रामगड़ा के रतन साय की वीरता के गीत गाये गये। वे अब मुण्डा की पुर्नस्थापना के लिए कटिबद्ध थे। बसिया, सिसई, कोलिबिरा, बानो, सोनाहातु, जोरहाट, सिंहभूम- सभी क्षेत्रों में गुप्त सभाएँ होने लगीं। अनेक जगहों में बिरसा ने स्वयं लोगों को युद्ध के लिए प्रेरित किया। 22 दिसम्बर, 1899 ई0 की बड़ी सभा में बिरसा ने विद्रोह

के ठोस कार्यक्रम तैयार किया। अन्य लोगों के साथ डोरे को कोदायकेला, कातो को चाईबासा, चामो को चकलधरपुर का दायित्व सौंपा गया। इस अनुपात में सरकार की तैयारी नगण्य थी।'' [122]

''9 जनवरी, 1900 को आठ बजे सायको से तीन मील ऊपर डोम्बारी से कुछ दूर साईल रकब पहाड़ी पर विद्रोही मुण्डाओं की एक बड़ी बैठक हुई जिसमें डिप्टी कमिश्नर भी पहुँचे और वहाँ जमकर विद्रोही और सरकारी तंत्र के बीच संघर्ष हुआ, गोलियों का जबाब ढेलकुसी एवं तीर-धनुष से दिया गया। तत्पश्चात् बिरसा की गिरफ्तारी कें लिए 500 रुपये पुरस्कार की घोषणा की गई।'' [123]

यह लड़ाई डोम्बारी पहाड़ पर हुई थी। इससे सम्बन्धित अनेकों लोक गीत मिलते हैं। यथा-

तमाड़ परगना गरेंड़ें उलिहातु	अर्थात् - तमाड़ परगने के गेरेड़ें उलिहातु गाँव में
बिरसा भगवानेः जोनोम लेना	बिरसा भगवान का जन्म हुआ
अटामटा बिरको तला चलेकद रेदो	घोर घने वन के बीच चलकद में
चलेकदः हातु रेः उलगुलन लेदा	चलकद गाँव में हलचल मच गई।
सरोअदः गिरजा रे सार थुञ लेना	सरवादा गिरजा में तीर चलाया
खूँटी हतु रेदो हिल हिलओ लेना	खूँटी गाँव में हलचल मच गई
डिपुटी कमिश्नरेः हिजुः लेना	डिप्टी कमिश्नर आया
बिरसा भगवानेः पिचा केना	बिरसा भगवान का पीछा किया
डुम्बरी बुरु रेको रकब लेना	डोम्बारी पहाड़ पर चढ़ गए
गुणे ज्ञान सोबेन होड़ो	गुणी ज्ञानी सभी मनुष्य
बुरु चेतन रेको हिबि-हिबि केद	पहाड़ के ऊपर से चिल्लाए
बेड़ा लतरतेः टोटेकेद कोअ	पहाड़ के नीचे से गोली चलाई।
गोएआ कन एंगा तोवा होनेः नुनुकेना	एक बच्चा,मरी-माँ का दूध पीता
मेम सयोब लेलते जी बिलका किः	देखकर मेम साहब को बुरा लगा
हों हों चिका जना	हाय! हाय! यह क्या हो गया
नेआ दो क-टीकि जना [124]	यह तो ठीक नहीं हुआ।

इस युद्ध में मुण्डा जाति तथा उस क्षेत्र की अन्य जातियाँ और स्त्रियाँ भी गोद में बच्चे लेकर शामिल हुई थीं। बिरसा की "गिरफ्तारी का सिलसिला 13 जनवरी 1900 को प्रारम्भ हुआ।" [125] बिरसा को पकड़वाने में मुण्डाओं का ही सोलह आना हाथ था। मानमारू तथा जरीकेल के सात आदमी धन के लोभ में बिरसा को तलाशने लगे। अन्ततः फरवरी, 1900 को संतरा के पश्चिम जंगल से वे बिरसा को गिरफ्तार करवाये तथा उनलोगों को डिप्टी कमिश्नर ने 500 रु0 नगद दिया। अन्ततः 9 जून, 1900 को नौ बजे सुबह राँची जेल में हैजा से उनकी मृत्यु हो गई।"[126]

"आज यह आन्दोलन सिर्फ मुण्डा जाति की ही नहीं, पूरे झारखण्ड के इतिहास को एक नया मोड़ दे गया और वह सभी देशप्रेमी मनुष्यों को प्रेरणा देता है। इसीलिए उलगुलान सार्थक हुआ। आदिवासी अंचल के शोषित मनुष्यों के लिए जो लड़ता है वह उलगुलान के कार्य को ही आगे बढ़ाता है। आज क्या ईसाई, क्या गैर ईसाई, क्या आदिवासी, क्या अन्य सभी बिरसा को इतिहास का एक प्रधान पुरुष मानते हैं। इसीलिए उसका उलगुलान सार्थक है।"[127] अतः बिरसा मुण्डाओं के बीच धरती आबा तथा भारत के इतिहास में बिरसा भगवान के नाम से प्रसिद्ध हुए।

ब्रिटिश शासन काल में झारखण्ड में जितने भी आन्दोलन हुए वे आदिवासियों के जमीन-जंगल के हक, धर्म, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा के लिए थे। 1895-1900 में बिरसा द्वारा मुण्डाओं के खूँटकटी के अधिकार को समाप्त करने के विरोध में उलगुलान शुरू हुआ था। सन् 1855 में सिदो-कान्हू, चाँद-भैरव के नेतृत्व में द्वितीय संताल विद्रोह, 1856 में ही वीर बुधु भगत के नेतृत्व में सिपाही विद्रोह, 1875-95 का सरदार लड़ाई, 1880 में तेलेंगा खड़िया का विद्रोह, 1895 और 1914 में जतरा भगत के नेतृत्व में टाना भगत आन्दोलन हुआ।

उपर्युक्त अंग्रेजी राज में छोटानागपुर में जितने भी आन्दोलन हुए अंग्रेजों की दमन नीति के विरोध में हुए थे। ये आन्दोलन स्वतंत्रता प्राप्ति के आन्दोलन के रूप में उभरे थे। स्वतंत्र भारत में झारखण्ड नाम से एक राजनीतिक पार्टी के रूप में इसका इतिहास 1950 से शुरू होता है। झारखण्ड आन्दोलन या 'छोटानागपुर-संतालपरगना अलग प्रान्त' का आन्दोलन मुण्डाओं में बिरसा के बाद झारखण्ड की बागडोर को जयपाल सिंह मुण्डा ने आगे

बढ़या। सबसे पहले "अपने क्षेत्र के लोगों की दयनीय स्थिति को देखकर क्षेत्र के शुभचिन्तकों में अपने समाज को सुधारने की भावना जागृत हुई। ऐसे शुभचिन्तकों में राय साहब बंदी राम उराँव और पद्मश्री जुएल लकड़ा अग्रणी थे। इन दोनों ने छोटानागपुर उन्नति समाज की स्थापना की। यह संगठन 1928 ई0 के आस-पास स्थापित हुआ और यही आगे चलकर आदिवासी महासभा के नाम से प्रख्यात हुआ।"[128] जयपाल सिंह मुण्डा ने 1938-50 में झारखण्ड पार्टी की स्थापना आदिवासी महासभा के नाम से की थी। 1915 में झारखण्ड का पहला अन्तरजातीय आदिवासी संगठन छोटानागपुर उन्नति समाज संस्था की स्थापना हुई थी। यहीं से कांग्रेस के साथ राजनीतिक समीकरण हुआ और जयपाल सिंह मुण्डा ने देश के आजाद होने के पूर्व 1946 ई0 में प्रोविजनल सरकार बनाने के लिए चुनाव में भाग लिया। यहीं से क्षेत्रीय राजनीति आन्दोलन का प्रादुर्भाव (1955-57) हुआ। आगामी चुनावों में जनाधार विस्तार के उद्देश्य से 1950 में आदिवासी महासभा का पुनर्गठन झारखण्ड पार्टी के रूप में हुआ। सन् 1952 के चुनाव में यह पार्टी 32 सीटें ली। इस पार्टी ने 1955 में राज्य पुनर्गठन आयोग के समक्ष अलग झारखण्ड राज्य की मांग में प्रदर्शन किया। 1957 के बाद इसकी अधोगति और विलय की ओर अग्रसर होने लगा। सन् 1963 में झारखण्ड पार्टी का विलय कांग्रेस में हो गया। परन्तु उपर्युक्त विलय से झारखण्डवासियों को कोई लाभ नहीं मिला। जयपाल सिंह मुण्डा न सिर्फ अपने मंत्री पद से हटा दिये गये; बल्कि उनके अनुयायी भी उनके विरुद्ध खड़े हो गये। झारखण्डी नेताओं में लाल रणविजय नाथ शाहदेव, एन0 ई0 होरो आदि ने झारखण्ड पार्टी के विलय का विरोध किया तथा अखिल भारतीय झारखण्ड पार्टी को जीवित रखा। परिणामस्वरूप 1971 से 1973 तक पुनर्जागरण का काल आया। 1967-68 तक झारखण्ड मार्टी बनती और टूटती रही। इसी बीच 1973 ई0 में ए0 के0 राय, बिनोद बिहारी महतो और शिबू सोरेन के नेतृत्व में झारखण्ड मुक्ति मोर्चा का गठन हुआ। इसका काल 1973-80 तक एक क्षेत्रीय आन्दोलन के रूप में झारखण्ड आन्दोलन का विस्तार हुआ। 1977 तक आते-आते जनता सरकार के समय इस क्षेत्र में क्रियाशील सभी पार्टियों ने मतदाताओं को आकर्षित करने के लिए अपने अन्दर झारखण्ड सेल गठित किया। 1978 के बाद यह पार्टी फिर से जिन्दा हो गई। 1980-86 में सत्ता में पुनः वापसी के दौरान ही

कांग्रेस ने झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के साथ विशेष सम्बन्ध स्थापित किया। यह सम्बन्ध 1985 तक जारी रहा, जब मुक्ति मोर्चा ने बिहार विधान सभा में 14 सीटें जीतीं और इस तरह बिहार विधानसभा में विपक्षी दल के रूप में पुरानी झारखण्ड पार्टी का स्थान ले लिया। व्यवस्था के अन्दर से लड़ने का उत्साह हम अपने समय के प्रखरतम कांग्रेसी नेता कार्तिक उराँव के नेतृत्व में पाते हैं। जिनकी चेष्टाओं ने झारखण्ड क्षेत्रीय कांग्रेस को जन्म दिया। इस क्षेत्र के सबसे प्रभावशाली प्रवक्ता के रूप में इनकी पहुँच, पार्टी नेतृत्व की चोटी तक थी। इन्हीं के प्रयासों के परिणाम स्वरूप 1980 में झारखण्ड क्षेत्र मे विकास प्रक्रिया के सुदृढ़ीकरण के लिए छोटानागपुर संथाल परगना विकास प्राधिकार का गठन हुआ। दुर्भाग्यवश यह प्राधिकार प्रभावहीन सिद्ध हुआ। ऐसे ही प्रयास कांग्रेस के ही देवेन्द्रनाथ चाम्पिया द्वारा भी हुए, जिनके नेतृत्व में 1985 में बिहार विधान मण्डल के झारखण्ड क्षेत्र के 52 विधायकों ने झारखण्ड क्षेत्र में केन्द्रीय प्रशासन की मांग के साथ एक संयुक्त स्मार पत्र देश के प्रधान मंत्री को दिया था।

1981 में राँची विश्वविद्यालय में झारखण्ड क्षेत्र की भाषाओं के पठन-पाठन और शोध को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग की स्थापना हुई। धीरे-धीरे यह झारखण्ड विषयक गोष्ठियों का केन्द्र बन गया और इसने झारखण्ड चिन्तन को एक तारतम्यता दी। विभाग का वृहत्तर उद्देश्य झारखण्ड के सांस्कृतिक पुनर्निर्माण में बौद्धिक योगदान देना था। विभाग के बनने से देश में अन्यत्र उठ रही इस तरह की समस्याओं के समाधान के लिए रास्ता खुलने की उम्मीद बनने लगी।

झारखण्ड पार्टी का पुनर्निर्माण : 1986 से अब तक इस आन्दोलन में विभिन्न दलों में समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से आजसू (ऑल झारखण्ड स्टूडेन्ट्स यूनियन) और जेसीसी (झारखण्ड को-ऑडिनेशन कमेटी) का गठन क्रमशः 1986 और 1987 में हुआ। इस तरह के समन्वय की कमी के कारण ही झारखण्ड आन्दोलन प्रभावहीन होता जा रहा था। यह महसूस किया गया कि चूँकि झारखण्डी संस्कृति पर चौतरफा आक्रमण हो रहा था इसलिए इसका सामना भी बहु-आयामी तरीके से ही सम्भव है। जेसीसी ने झारखण्ड हित चिन्ता में लगे सभी राजनैतिक एवं गैर-राजनीतक संगठनों को एकजूट होने के लिए आमंत्रित किया। पूरे झारखण्ड क्षेत्र में इसका प्रतिक्रियात्मक जवाब

आशातीत रहा। 1987 के जून में रामगढ़ में एक ऐतिहासिक सम्मेलन हुआ जिसमें झारखण्ड क्षेत्र में कार्यरत 53 संगठन, जिसमें बुद्धिजीवी, श्रमिक, स्त्रियाँ, शिक्षक, छात्र - हर तरह के लोग उपस्थित थे। इस सम्मेलन में एक 23 सूत्री संयुक्त घोषणा-पत्र जारी हुआ। जिसके निम्नांकित मुख्य बिन्दु हैं-

1. झारखण्डी सांस्कृतिक पुनर्रचना में लगे शोषित पीड़ित झारखण्डी जनता की मुक्ति के लिए वर्षों पराने चेष्टारत झारखण्ड आन्दोलन को गति देना।

2. झारखण्डी सांस्कृतिक आधार पर झारखण्ड राज्य की स्थापना कर भारतीय संविधान के प्रावधानों के तहत झारखण्ड क्षेत्र को पूरी स्वायत्तता दिलाना। क्योंकि झारखण्ड का सवाल देश के अन्दर विशिष्ट पहचान का सवाल है। देश के अन्य सांस्कृतिक क्षेत्र बंगाल, गुजरात इत्यादि की तरह उपराष्ट्रीयता का सवाल है। इस मांग के आधार पर भौगोलिक समानता, सांस्कृतिक तारतम्यता और आर्थिक रचनागत एकता, जो कि पड़ोसी क्षेत्रों से बिल्कुल ही अलग है।

3. झारखण्ड क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय पूंजी निवेश के रूप में अंतरराष्ट्रीय आर्थिक उपनिवेशवाद द्वारा विशेष कर बड़े उद्योगों के क्षेत्र में संपोषित आंतरिक उपनिवेशवाद का विरोध करना। आन्तरिक उपनिवेशवाद ही झारखण्ड का प्रमुख शत्रु है; जिसके विरोध में लड़ना आसान नहीं होगा क्योंकि शत्रु शक्तिशाली और अब तक झारखण्डी लोगों को जाति - धर्म के नाम पर विभाजित करने में सफल रहा है। झारखण्ड के विभिन्न दलों- समुदायों को एकजूट करके और देश के शोषित-पीड़ित जनता के लिए यह आन्दोलन में लगी हुई है। यह एकता हासिल की जा सकती है। समान हित के कार्यक्रमों को सुंयुक्त रूप में लेकर, उदाहरण के लिए झारखण्ड की भाषाओं को संविध ाान की आठवीं सूची में सम्मिलित करने की मांग, आदिवासी दलित और अन्य पिछड़ी जातियों के हित में आरक्षण नीति का कार्यान्वयन, मण्डल कमीशन की रपट का कार्यान्वयन, झारखण्डियों की विशेषकर आदिवासियों की बेदखल की हुई जमीन की वापसी, न्यूनतम मजदूरी नीति का कार्यान्वयन, झारखण्डी स्त्रियों की आर्थिक और यौन-शोषण की सुरक्षा सरकारी और निजी उद्योगों में झारखण्डियों का सामंजन, कृषि और वन उत्पादनों का उचित मूल्य निर्धारण, आदिवासी और अन्य समुदायों का समान रूप से पुनः अनुसूचीकरण।

ऐसे मामलों में, जहाँ आपसी अंतरविरोध पैदा होते हों, उनका समाधान तदर्थ क्षेत्रों, ग्राम सभाओं में किया जाना चाहिए।

4. झारखण्ड मुक्ति के लिए समर्पित नेतृत्व के विकास के लिए समय-समय पर नेतृत्व विकास कार्यशालाएँ और शिविर आयोजित करना, झारखण्ड के लिए विभिन्न क्षेत्रों में लगे हुए आन्दोलनों के बीच विचार और अनुभवों के आदान-प्रदान के लिए सामयिक समाचार पत्रों का प्रकाशन ।

जेसीसी गठन का परिणाम तत्काल सामने आया। 15 नवम्बर, 1987 को बिरसा जयंती के अवसर पर आयेजित रैली अत्यन्त सफल रही। 31 जनवरी, 1989 को डुमरी में जीटी रोड जाम, 23 अप्रील, 1989 का झारखण्ड बन्द आदि सभी कार्यक्रमों में आशातीत सफलता मिली। केन्द्र सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए इतना ही काफी था। केन्द्र सरकार ने दक्षिणी छोटानागपुर के कमिश्नर को अपने स्तर पर झारखण्ड आन्दोलनकारियों से बातचीत शुरू करने का निर्देश दिया। कमिश्नर के आवासीय कार्यालय में आन्दोलनकारियों के साथ सौहार्दपूर्ण वातावरण में वार्त्ता हुई। प्रतिनिधिमण्डल ने झारखण्डियों की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं पर प्रकाश डाला। कमिश्नर का विचार था कि मूल समस्याओं का समाधान आर्थिक विकास द्वारा सम्भव था। किन्तु प्रतिनिधियों ने झारखण्डियों के सांस्कृतिक पहचान के सवाल के महत्त्व पर जोर डाला और उनके विचार से झारखण्ड को राजनीतिक स्वायत्तता प्रदान करना ही एकमात्र समाधान था। दूसरी वार्त्ता 31 मई, 1989 को पटना में हुई, जिसमें केन्द्र सरकार (गृह मंत्रालय) और बिहार राज्य सरकार के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। कई महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष आये, जिनमें से निम्नांकित सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं-

(क). गृह मंत्रालय ने यह स्वीकार किया कि झारखण्ड आन्दोलन एक वास्तविकता के आधार पर खड़ा है और चालीस वर्ष की स्वतंत्रता के बाद भी झारखण्ड का शोषण जारी है, इसलिए समाधान अत्यावश्यक है।

(ख). झारखण्ड आन्दोलन मात्र आदिवासियों का आन्दोलन नहीं है। आन्दोलन झारखण्ड में रह रहे आदिवासी और सदान, सबका आन्दोलन है।

(ग). झारखण्ड आन्दोलन कोई राष्ट्र-विरोधी आन्दोलन नहीं है। सारे देश के हित में एक वस्तुनिष्ठ, तटस्थ समाधान आवश्यक है इस अर्थ में झारखण्ड की समस्या का समाधान भारतीय संविधान के प्रावधान के तहन स्वायत्तता प्रदान करने से सम्भव है। इसके लिए यह आवश्यक हुआ कि क्षेत्रीय स्वायत्तता की अवधारण को स्पष्ट किया जाये। क्योंकि भारतीय संविधान में क्षेत्रीय स्वायत्तता की सीमाएँ बहुत विस्तृत हैं। जे सी सी का विचार रखनेवाला एक दृष्टिकोण पत्र तैयार किया गया।

अब तक जेएमएम उपरोक्त वार्त्ताओं में अनुपस्थित रही थी। कई स्रोतों से आग्रह हुए कि इन वार्त्ताओं में उन्हें भी शामिल होना चाहिए। डॉ. अमर कुमार सिंह, राँची विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष ने इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। उनकी मध्यस्थता में जेसीसी के सदस्यों के साथ विचार-विमर्श के उपरान्त मुक्ति मोरचा ने दिल्ली में होनेवाली आगामी वार्त्ता में सम्मिलित होने की सहमति दी। इसके अतिरिक्त इस बात पर भी सहमति हुई कि जेसीसी और जेएमएम को एक साझा कार्यक्रम तय करना चाहिए और आन्दोलन में एक साथ लग जाना चाहिए। इसी पृष्ठभूमि में दूसरी त्रिपक्षीय वार्त्ता 11 अगस्त, 1989 को दिल्ली में बुलायी गयी। गृह मंत्री बूटा सिंह द्वारा आहूत बैठक में जेएमएम ने भी एक स्मार पत्र प्रस्तुत किया। जेसीसी द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण पत्र में क्षेत्रीय स्वायत्तता की अवधारणा को एक विस्तृत व्याख्या के साथ रखते हुए इस बात की चेष्टा की गयी कि यह स्पष्ट हो जाए कि झारखण्ड क्षेत्र की अपनी पहचान है, जो प्रस्तावित झारखण्ड राज्य के तत्कालीन जिलों में परिलक्षित होती है। जेसीसी का दृष्टिकोण-पत्र राज्य पुनर्गठन आयोग 1954 के तर्कों का भी खण्डन करता है, जिनके आधार पर भारत सरकार ने अलग राज्य की मांग को अस्वीकार कर दिया था। जेसीसी का कहना था कि झारखण्ड की मांग मात्र आदिवासी मांग नहीं है, यह झारखण्ड में रहनेवाले सबकी मांग है। इसलिए इसे एक अल्पसंख्यक मांग कहना गलत होगा। दूसरे, यह कहना उतना ही गलत होगा कि झारखण्ड क्षेत्र के लोगों की कोई सम्पर्क भाषा नहीं

है, क्योंकि जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं के अलावे हिन्दी, बंगला, उड़िया भी इस क्षेत्र में समझी जाती है। तीसरे इस झारखण्ड राज्य के निर्माण से पड़ोसी राज्यों को आर्थिक असंतुलन या असमानता का सामना नहीं करना पड़ेगा। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया कि झारखण्ड क्षेत्र में विशेषकर बड़े उद्योगों और खदानों में केन्द्र सरकार के निवेश की सुरक्षा के लिए झारखण्ड राज्य का निर्माण अत्यावश्यक है। क्योंकि वर्त्तमान में तदर्थ राज्यों में यथेष्ट कार्य संस्कृति के अभाव में से सारे उद्योग भारी घाटे में चल रहे है और ये उत्तरोत्तर विदेशी ऋणग्रस्त होते जा रहे हैं। झारखण्ड पर अगली वार्त्ता 4 दिसम्बर, 1989 को दिल्ली में हुई, जिसमें झारखण्ड विषयक समिति के गठन का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। यह निर्णय लिया गया कि झारखण्ड वार्त्ता का अध्ययन करने के क्रम में कमेटी 19 सितम्बर को दुमका, 21 सितम्बर को राँची, 22 सितम्बर को जसपुर, 23 सितम्बर को रायरंगपुर और 25 सितम्बर झारग्राम जाएगी। तीन विशेषज्ञ, डॉ. कुमार सुरेश सिंह, डॉ. भूपेन्द्र सिंह और केएन प्रसाद रपट का प्रारुप तैयार करेंगे और पूरी समिति की सहमति से उसे अन्तिम रूप दिया जाएगा। बी0 एस0 लाली संयुक्त सचिव, गृह मंत्रालय समिति के संयोजक मनोनीत किये गये। यह भी निर्णय लिया गया कि समिति अपनी रपट अक्टूबर, 1989 तक सुपुर्द करेगी।

इसी बीच आम चुनाव के आने और केन्द्र में सरकार बदलने से झारखण्ड मामला कठिनाई में पड़ गया। झारखण्डियों को डर होने लगा कि नयी (वी0पी0 सिंह) सरकार में झारखण्ड विषयक समिति का अब खत्मा हो जाएगा और इस तरह से झारखण्ड का मामला एक लम्बे समय के लिए खटाई में पड़ जायेगा। इन्हीं आशंकाओं के साथ एन0 ई0 होरो के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल तत्कालीन गृह मंत्री (पी0एम0 सईद) से मिला। गृह मंत्री ने आश्वासन दिया कि प्रधानमंत्री से मिलकर वे बात को आगे बढ़ायेंगे। कई उतार-चढ़ाव के बाद 25 अप्रैल 1991 को गृह मंत्री ने झारखण्ड विषयक समिति को बुलाया। बैठक तत्कालीन गृह राज्यमंत्री सुबोध कांत सहाय की अध्यक्षता में हुई। किन्तु आशा के विपरीत समिति की रिपोर्ट बैठक में नहीं रखी जा सकी। इसमें बताया गया कि कुछ आवश्यक सुधार वांछित है। अन्ततः 14 मई, 1995 को समिति की बैठक फिर बुलायी गयी, जिसमें रिपोर्ट भी रखी गयी। काफी बहस के बाद रिपोर्ट को अंतिम रूप दिया गया।

झारखण्ड विषयक समिति की रिपोर्ट इस तरह की राजनीतिक समस्याओं (गोरखालैण्ड, बोड़ोलैण्ड, छत्तीसगढ़, उत्तरांचल और अन्य) पर अब तक की सबसे बड़ी घोषणा पूर्ण रिपोर्ट के रूप में सामने आयी। इसने झारखण्ड क्षेत्र को एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में स्वीकार किया है और अनुशंसा की है कि झारखण्ड क्षेत्र को एक अलग राज्य या केन्द्र शासित राज्य का दर्जा जा सकता है। किन्तु यह भी कहा गया कि वर्त्तमान परिस्थिति में केन्द्र को ऐसा करने में कठिनाई होगी। कमिटि के विशेषज्ञों ने राय दी है कि तत्काल बिहार के अन्दर झारखण्ड क्षेत्र (छोटानागपुर, संथाल परगना) को झारखण्ड परिषद् का दर्जा दिया जा सकता है और यह भी कहा कि कालक्रम में इस तरह की परिषदें बंगाल, ओड़िसा और मध्य-प्रदेश के झारखण्ड क्षेत्रों के लिए भी बननी चाहिए। समिति ने पूरे झारखण्ड क्षेत्र के सांस्कृतिक विकास के लिए झारखण्ड सांस्कृतिक विकास प्राधिकार के गठन की भी अनुशंसा की हैं। किन्तु बैठक में उपस्थित सभी झारखण्डी प्रतिनिधियों ने, जिसमें भाजपा, कांग्रेस और जनता दल के सांसद भी पर्यवेक्षक के रूप में उपस्थित थे, अपनी दलगत राजनीतिक सीमाओं से ऊपर उठकर सर्वसम्मति से अलग राज्य की ही अनुशंसा की। समिति ने यह राय दी कि एक सीमा निर्धारण समिति गठित हो, जो सांस्कृतिक पहचान के आधार पर झारखण्ड सांस्कृतिक क्षेत्र का सीमा-निर्धारण करेगी। समिति में इस बात पर भी आम सहमति थी कि नये राज्य का नामकरण झारखण्ड ही होगा।

जेसीसी झारखण्ड विषयक समिति की रपट को झारखण्ड राज्य निर्माण की दिशा में एक सही कदम मानती है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि कमेटी ने जो रपट प्रस्तुत की है, वह केन्द्र सरकार की सहभागिता से प्रस्तुत हुई और जिसमें झारखण्ड विषय पर आधिकारिक विद्धान, सभी प्रकार के झारखण्डी संगठन और झारखण्ड क्षेत्र के सभी सांसदों ने भाग लिया है। इसमें स्वीकार किया गया है कि झारखण्ड क्षेत्र की अपनी सांस्कृतिक पहचान है और इसके संरक्षण और संवर्द्धन का दायित्व सारे देश का है। इस दृष्टिकोण से पूरे झारखण्ड क्षेत्र के लिए झारखण्ड सांस्कृतिक विकास प्राधिकार के गठन की अनुशंसा विशेष महत्त्व रखती है। अलग झारखण्ड राज्य की स्थापना की मांग पर झारखण्ड प्रदेश के सभी प्रतिनिधियों में आम सहमति थी।

इसी बीच (1991) वी0 पी0 सिंह की सरकार भी बदल गई और

क्षणिक मिली-जुली सरकारों का सिलसिला शुरू हुआ। चन्द्रशेखर और फिर नरसिंह राव की सरकार आई। वी0 पी0 सिंह और चन्द्रशेखर के समय सरकार के कमजोर होने के बावजूद एक उम्मीद बनी थी; क्योंकि एक तो जनता दल के चुनाव क्षेत्र में छोटे राज्यों का समर्थत सम्मिलित था और उस समय गृह राज्य मंत्री एक झारखण्डी ही (सुबोध कांत सहाय) था और जिन्होंने अपना झारखण्ड प्रेम आम जनता के सामने अनेक बार प्रकट किया था, किन्तु यह दिखावे से ज्यादा और कुछ नहीं था।'' [129]

बाद में ऑल झारखण्ड स्टूडेंट्स यूनियन की उग्रवादी गतिविधियों ने इस आंदोलन को एक नयी दिशा दी। असम में चल रहे बोड़ोलैण्ड आंदोलन की तर्ज पर आजसू ने इस क्षेत्र में बन्द और विस्फोटों का सहारा लिया। तत्कालीन केन्द्रीय वन राज्य मंत्री सुमति उराँव की अपील पर तत्कालीन केन्द्रीय गृह राज्य मंत्री बूटा सिंह की छात्र नेताओं के साथ गोपनीय वार्त्ता हुई, हालांकि यह वार्त्ता आजसू नेताओं द्वारा स्वशासी परिषद की अस्वीकृति के कारण अप्रभावी सिद्ध हुइ। [130]

अप्रैल, 1994 में केन्द्र, राज्य सरकार और झारखण्डी नेताओं की एक त्रिपक्षीय बैठक में स्वशासी परिषद की स्थापना के प्रस्ताव का प्रारूप तैयार किया गया। इस प्रस्ताव पर बाद में बिहार के मुख्य मंत्री लालू प्रसाद यादव ने हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। केन्द्रीय गृह मंत्री राजेश पायलट ने पिछले वर्ष अगस्त में स्वशासी परिषद के जल्द ही गठन की घोषणा की।

''अन्ततः बिहार सरकार ने अन्तरिम झारखण्ड क्षेत्र स्वशासी परिषद के गठन की घोषणा कर दी है और परिषद श्री शिबू सोरेन की अध्यक्षता में 9 अगस्त, 1995 से कार्यरत हो गई। श्री सूरज मण्डल उपाध्यक्ष बनाये गये। परिषद् के सदस्यों की संख्या जनता दल और झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के पुनर्गठबन्धन का परिचायक है। मनोनीत सदस्यों में झारखण्ड मुक्ति मोर्चा को सबसे अधिक संख्या दी गयी।'' [131]

झारखंड अलग राज्य का यह मांग अब 15 नवंबर 2000 को पूरा हो गया।

संदर्भ स्रोत :

1. श्री दिलवर हंस, होड़ो जगर रेअः एतेहइसि नंगम, राँची, 1989, पृष्ठ - 3
2. श्री डी. एन. मजुमदार, द अफेयर्स ऑफ ए ट्राइब, पृष्ठ- 18
3. डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, इलाहाबाद, 1981, पृष्ठ-77
4. डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, इलाहाबाद, 1981, पृष्ठ - 77
5. डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, इलाहाबाद, 1981, पृष्ठ- 77, 78
6. डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, इलाहाबाद, 1981, पृष्ठ -78
7. डॉ. बाबूराम सक्सेना, सामान्य भाषा विज्ञान, पृष्ठ - 275
8. डॉ. बाबूराम सक्सेना, सामान्य भाषा विज्ञान, पृष्ठ - 96
9. डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, इलाहाबाद, 1981, पृष्ठ -80
10. डॉ. बाबूराम सक्सेना, सामान्य भाषा विज्ञान, पृष्ठ - 275
11. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक-कथाएँ, बिहार, 1968, पृष्ठ- 57
12. डॉ. एम. एम. मुण्डू, मुण्डा कुदुम ओड़ोः सोलोको, पटना, 1980, पृष्ठ - प्रस्तावना
13 डॉ. रामदयाल मुण्डा, मुण्डारी व्याकरण, राँची, 1979, भूमिका से
14. भइयाराम मुण्डा, दंड़ां जमाकन कानिको, पटना, 1960, पृष्ठ - 248
15. प्रो. दुलायचन्द्र मुण्डा, डॉ. बुल्के स्मृति ग्रंथ से, राँची, 1987, पृष्ठ - 201
16. डॉ. रामदयाल मुण्डा, मुण्डारी व्याकरण, राँची, 1979, पृष्ठ - 7
17. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाराणसी, 1990, पृष्ठ- 7, 8
18. प्रो. बद्रीदत्त शास्त्री, संस्कृत व्याकरण कौमुदी, पटना, 1992, पृष्ठ- 1, 2
19. प्रो. बद्रीदत्त शास्त्री, संस्कृत व्याकरण कौमुदी, पटना, 1992, पृष्ठ- 7
20. प्रो. बद्रीदत्त शास्त्री, संस्कृत व्याकरण कौमुदी, पटना, 1992, पृष्ठ- 9
21. वचनदेव कुमार, व्याकरण भास्कर, पटना, 1991, पृष्ठ - 28
22. डॉ. रामदयाल मुण्डा, मुण्डारी व्याकरण, राँची, 1979, पृष्ठ - 13
23. प्रो. बद्रीदत्त शास्त्री, संस्कृत व्याकरण कौमुदी, पटना, 1992, पृष्ठ-21
24. मोतीलाल बिरूवा, हो भाषा कैसे सीखें, पृष्ठ - 21
25. पे. डीनो एस जे., हो ग्रामर एण्ड वोकब्युलरी, पृष्ठ - 4, 5
26. वचनदेव कुमार, व्याकरण भास्कर, पटना, 1991, पृष्ठ - 42
27. वचनदेव कुमार, व्याकरण भास्कर, पटना, 1991, पृष्ठ - 43
28. एम. एम. मुण्डू, मुण्डारी संक्षिप्त व्याकरण, राँची, 1978, पृष्ठ - 21
29. मोतीलाल बिरूवा, हो भाषा कैसे सीखें, पृष्ठ -22, 23
30. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक-कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ- 33, 34
31. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक-कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ- 34
32. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक-कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ- 36
33. श्री शिवशेखर मिश्र, भारतीय संस्कृति में आर्येतरांश, पृष्ठ - 45 से 64
34. पी. ए. बोनार्डित, संताल लेंगुएज हैण्डबुक, कलकत्ता, 1929, पृष्ठ - 01
35. सुलेमान बडिङ, रेफरेशर कोर्स, ज.जा. एवं क्षेत्रीय भाषा स्टाफ का. राँची, 1997, पृष्ठ- 03

36. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू, पीटर शान्ति नवरंगी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राँची, 1980, पृष्ठ - 228
37. डॉ. पंजाब राव रामाराव जाधव, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन में ईसाई मिशनरियों का योगदान, पूणा, 1973, पृष्ठ - 335
38. डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, आधुनिक साहित्य की भूमिका, 1973, पृष्ठ - 462
39. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू, पीटर शान्ति नवरंगी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राँची, 1980, पृष्ठ - 330
40. - वही
41. डॉ. पंजाब राव रामाराव जाधव, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन में ईसाई मिशनरियों का योगदान, पूणा, 1973, पृष्ठ - 336
42. डॉ. नागेश्वर सिंह, छोटानागपुर के ईसाई मिशनरियों का हिन्दी साहित्य तथा शिक्षा के क्षेत्र में योगदान, राँची, 1985, पृष्ठ - 268
43 ख. एफ. ई. की, हिस्ट्री ऑफ सिरियन चर्च इन इंडिया, प्र. स., पृष्ठ-1 (डॉ. पंजाब राव रामाराव जाधव, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन में ईसाई मिशनरियों का योगदान, पूणा, 1973, पृष्ठ - 1 से उद्धृत)
44. डॉ. बलराम श्रीवास्तव, दक्षिण भारत का इतिहास, वाराणसी, 1968, पृष्ठ - 9
45. डॉ. राजकिशोर सिंह, वैदिक साहित्य का इतिहास, आगरा, 1981, पृष्ठ - 32
46. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 97
47. - वही, पृष्ठ - 348
48. सिकरादास तिर्की, बाचण्डुः आन तोअउ, पटना, 1987, पृष्ठ - 22
49. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 45
50. डॉ. सुशील माधव पाठक, डॉ. बुल्के स्मृति ग्रंथ, राँची, 1987, पृष्ठ - 236
51. डॉ. बी. पी. केशरी, छोटानागपुर का इतिहास, कुछ सूत्र-कुछ सन्दर्भ, राँची, 1979, पृष्ठ - 14
52. डॉ. सुशील माधव पाठक, डॉ. बुल्के स्मृति ग्रंथ, राँची, 1987, पृष्ठ - 236
53. जगदीश त्रिगुणायत, सोसोबोंगा, पटना, 1966, पृष्ठ - 5
54. सोमा सिंह मुण्डा, राँची, 1993, पृष्ठ - 2
55. डॉ. दिलवर हंस, होड़ो जगर रेअः एतेहइसि नंगम, राँची, 1989, पृष्ठ - 6
56. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 31
57. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 60
58. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 45
59. जोसफ कण्डुलना, छोटानागपुर के आदिवासी और उनके गीत, राँची, 1994, पृष्ठ - 7
60. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 31
61. काशीनाथ सिंह मुण्डा 'काण्डे', ससङबा, राँची, 1972, पृष्ठ - 27
62. वाहरू सोनवणे, जनहक, खण्ड-1, अंक-6, जून, 1997, राँची
63. - वही
64. श्रीकृष्ण मुरारी, प्रभात खबर, राँची, 13 नवम्बर 1998, लेख-वेद और इतिहास, पृष्ठ - 4
65. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 84
66. कुंवर बालकृष्ण मुस्तर, कुरुक्षेत्र, दिल्ली, 1965, पृष्ठ - 12
67. - वही, पृष्ठ - 13
68. डॉ. दिलवर हंस, होड़ो जगर रेअः एतेहइसि नंगम, राँची, 1989, पृष्ठ - 127

69. कुंवर बालकृष्ण मुस्तर, कुरुक्षेत्र, दिल्ली, 1965, पृष्ठ - 13
70. श्री शिवशेखर मिश्र, भारतीय संस्कृति में आर्येतरांश, पृष्ठ - 66
71. एम. एम. मुण्डू, मुण्डारी टुङकोढ़ारि, राँची, 1989, प्रस्तावना से
72. डॉ. नागेश्वर लाल, मुण्डारी और उसकी कविता, पटना, 1980, पृष्ठ - 71
73. अशोक पागल, छोटानागपुर का इतिहास, राँची, 1999, खण्ड-1 से
74. शरत चन्द्र राय, मुण्डा एण्ड देयर कंट्री, 1912
75. वसंत निरगुणे, लोक संस्कृति, मध्य प्रदेश, 1996, पृष्ठ -19, 20
76. के. सी. टुडू, सरहुल महोत्सव, राँची, 1997, पृष्ठ - 14
77. रामनिवास साहू, भाषा-सर्वेक्षण, दिल्ली, 1996, पृष्ठ - 30
78. - वही, पृष्ठ - 32
79. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू, पझरा-नागपुरी प्रचारिणी सभा, राँची, 1986, पृष्ठ - 8
80. शरत चन्द्र राय, मुण्डा एण्ड देयर कंट्री, 1912
81. जगदीश त्रिगुणायत, बाँसरी बज रही, पटना, 1968, पृष्ठ - 184
82. डॉ. दिलवर हंस, होड़ो जगर रेअः एतेहइसि नंगम, राँची, 1989, पृष्ठ - 225
83. प्रो. नोएल टोपनो, समपड़तिङ, राँची, 1998, पृष्ठ - 10
84. सी. डी. सिंह, जनहक, खण्ड-1, अंक-8, 1997, राँची, पृष्ठ - 9
85. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 9
86. भागवत मुर्मू ठाकुर, दोङ सेरेञ
87. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 48
88. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 210
89. अशोक पागल, छोटानागपुर का इतिहास, राँची, 1999, खण्ड-1 से
90. जगदीश त्रिगुणायत, बाँसरी बज रही, पटना, 1968, पृष्ठ - 500
91. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 180
92. अशोक पागल, छोटानागपुर का इतिहास, राँची, 1999, खण्ड-1 से
93. डॉ. बी. पी. केशरी, छोटानागपुर का इतिहास, कुछ सूत्र-कुछ सन्दर्भ, राँची, 1979, पृष्ठ - 105
94. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 447
95. अशोक पागल, छोटानागपुर का इतिहास, राँची, 1999, खण्ड-2 से
96. अशोक पागल, छोटानागपुर का इतिहास, राँची, 1999, खण्ड-2 और 4 से
97. प्रद्युमन सिंह, नागवंश, खैरागढ़ (राज परिवार), पृष्ठ 74-75
98. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू, नागवंशी राजधानी विषयक सेमिनार, बेड़ो कॉलेज, बेड़ो, 1999 में पठित आलेख से
99. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 125
100. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 155
101. डॉ. दिलवर हंस, होड़ो जगर रेअः एतेहइसि नंगम, राँची, 1989, पृष्ठ - 225
102. - वही, पृष्ठ - 127
103. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 150
104. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 352
105. डॉ. सुशील माधव पाठक, डॉ. बुल्के स्मृति ग्रंथ, राँची, 1987, पृष्ठ - 247

106. अशोक पागल, छोटानागपुर का इतिहास, राँची, 1999, खण्ड-5 से
107. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 74
108. डॉ. सुशील माधव पाठक, डॉ. बुल्के स्मृति ग्रंथ, राँची, 1987, पृष्ठ - 244
109. - वही, पृष्ठ - 216
110. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 216
111. डॉ. सुशील माधव पाठक, डॉ. बुल्के स्मृति ग्रंथ, राँची, 1987, पृष्ठ - 237
112. - वही, पृष्ठ - 238
113. सी. डी. सिंह, जनहक, खण्ड-1, अंक-8, 1997, राँची, पृष्ठ - 9
114. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू, पीटर शान्ति नवरंगी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राँची, 1980, पृष्ठ - 328
115. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 223
116. - वही, पृष्ठ - 163
117. - वही, पृष्ठ - 137
118. - वही, पृष्ठ - 22, 23
119. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 194
120. - वही, पृष्ठ - 138
121. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 22, 23, 186
122. सी. डी. सिंह, जनहक, खण्ड-1, अंक-8, 1997, राँची, पृष्ठ - 10
123. कुमार सुरेश सिंह, बिरसा एण्ड हिज मूवमेंट के आधार पर
124. - वही
125. धनिक गुड़िया, जनहक, खण्ड-1, अंक-9, सितंबर 1997, राँची, पृष्ठ - 28
126. जगदीश त्रिगुणायत, बाँसरी बज रही, पटना, 1968, पृष्ठ - 28
127. धनिक गुड़िया, जनहक, खण्ड-1, अंक-9, सितंबर 1997, राँची, पृष्ठ - 28
128. - वही
129. महाश्वेता देवी, बिरसा मुण्डा, राँची, 1984
130. डॉ. बी. पी. केशरी, छोटानागपुर का इतिहास, कुछ सूत्र-कुछ सन्दर्भ, राँची, 1979, पृष्ठ - 81
131. डॉ. रामदयाल मुण्डा, प्रभात खबर, 1 फरवरी 1998, पृष्ठ - 4
132. डॉ. अमर कुमार सिंह, प्रभात खबर, 10 अगस्त 1995, पृष्ठ - 12
133. - वही, पृष्ठ - 9

मुण्डारी लोक साहित्य में प्रागैतिहासिक तथ्य

इतिहास मानव जाति की उपलब्धियों का एक दस्तावेज है। यह मनुष्य की सफलताओं-विफलताओं की कहानी तार्किक ढंग से एवं कालक्रमानुसार प्रस्तुत करता है। प्राक्-इतिहास और इतिहास से हमें मनुष्य के उत्थान-पतन तथा उसकी उपलब्धियों की जानकारी मिलती है।[1]

प्रागैतिहासिक का तात्पर्य

मानव की प्रगति के उस भाग को इतिहास कहते हैं, जिसके संबंध में लिखित विवरण मिलता है। किन्तु लिखना सीखने में मनुष्य को लाखों वर्ष लगे हैं। वह सुदूर अतीत-जब मनुष्य लिखना नहीं जानता था - 'प्राक्-इतिहास युग' कहलाता है।[2] ''वह युग जब मनुष्य ने घटनाओं का कोई लिखित विवरण नहीं रखा, 'प्राक्-इतिहास' कहलाता है तथा उस युग को 'प्राक्-इतिहास का युग' कहते हैं। इसे प्रागैतिहासिक काल भी कहा जाता है।[3]

"प्रागैतिहासिक काल के इतिहास के स्रोत--अवशेष हैं। ... चीन, जावा, जर्मनी, इंगलैण्ड, अमेरिका और अफ्रीका में प्राचीन मानव के अस्थि-पंजर भी मिले हैं। खुदाई में अनेक जीवाश्म भी मिले हैं।" [4]

"प्रागैतिहासिक काल की अवधि को पाषाण युग भी कहते हैं। क्योंकि अलिखित इतिहास की जो भी बातें हम जान सके हैं , वे पत्थरों से ही प्राप्त हुई हैं। इस काल को दो भागों में बाँटा गया है -पूर्व पाषाण युग और नवीन पाषाण युग।" [5]

पूर्व पाषाण युग का समय लगभग 50,000 ई0 पूर्व से 10,000 ई0 पू0 तक माना जाता है। यह काल मानव सभ्यता का सबसे लम्बा काल था।"[6] इसी काल में भोजन, वस्त्र, आवास, औजार, आर्थिक तथा सामाजिक संगठन, कला का विकास हुआ था।

नव पाषाण युग : नव पाषाण युग 13,000 ई0 पूर्व से 3,000 ई0 पू0 तक माना जाता है। मानव सभ्यता के विकास में यह काल बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था। [7] इस काल में कृषि, पशुपालन, वस्त्र, आवास, औजार, गाँव का निर्माण, सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन, आर्थिक व्यवस्था, धर्म का विकास तथा सान, चक्र, नाव, मिट्टी के बर्तन और कृषि का अविष्कार हुआ था।

जिस प्रकार "मानव की प्रगति की कहानी के उस भाग को इतिहास कहते हैं, जिसके लिए लिखित विवरण उपलब्ध है।" [8] उसी प्रकार किसी भाषा की प्रगति की कहानी के उस हिस्सा को साहित्य का इतिहास कहते हैं, जिसके लिए हमें क्रमबद्ध लिखित विवरण मिलता है। इसके पूर्व बोल-चाल की भाषा या बोली में उनका इतिहास, मानव-सभ्यता, संस्कृति, लोकगीतों, लोकगाथाओं, कथाओं, लोक-कहानियों, मंत्रों एवं बुझौवलों आदि में किसी समाज की जनता के कण्ठों में स्मृत एवं मौखिक व्यवहार के रूप में ही मिलता है।

"इतिहास मात्र तथ्यों और इतिवृत्तियों का संकलन नहीं होता, वरन् वह अपने आप में एक सम्पूर्ण दृष्टि है।" [9]

"साहित्य के इतिहासकार भी अन्य क्षेत्रों में लिखने वाले इतिहासकारों के समान हैं। अन्तर केवल इतना है कि साहित्येतिहासकार साहित्यिक कृतियों के माध्यम से उपलब्ध मानव जीवन के इतिहास को अपना लक्ष्य मानता है।"[10]

उपर्युक्त इतिहास और साहित्य के इतिहास की परिभाषाओं तथा काल विभाजनों कों देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि झारखण्ड में सदानी, कुडुख, मुण्डारी आदि का लम्बा इतिहास और जीवन्त महत्त्व है। इनके अध्ययन की नींव 19वीं सदी के अन्त और 20वीं सदी के प्रारम्भ में ईसाई पादरियों और अंग्रेज अधिकारियों ने डाली। [11]

अतः अंग्रेजों तथा ईसाई मिशनरियों का छोटानागपुर में आने तक मुण्डारी भाषा-साहित्य प्रायः बोल-चाल तक ही सीमित थी। जैसे ''संस्कृत उत्तर पश्चिमी भारत की बोल-चाल की भाषा थी।'' [12]

मुण्डारी का कोई लिखित विवरण नहीं मिलता। परन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन के कालक्रमानुसार मुण्डारी भाषा में भी लोकगीतों, गाथाओं तथा बुझौवलों का मौखिक विकास होता रहा।

मुण्डाओं का जीवन, उनकी भाषा-साहित्य, सभ्यता-संस्कृति इत्यादि ही उनका इतिहास है। मुण्डा समाज में शादी-विवाह के सम्बध स्थापित करते समय तथा शादी के विभिन्न अवसरों पर मुण्डा इतिहास की कहानी कहने और सुनने की प्रथा रही है। परन्तु मृतक की 'छाया भीतारना' (उम्बुल अदेर) नामक सामाजिक रिवाज में मुण्डा इतिहास को विशेष रूप से अति संक्षेप में ही कहा-सुना जाता है।

अतः आगे मुण्डाओं का प्रागैतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं अन्य तथ्यों का क्रमशः अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा।

राजनैतिक तथ्य

राजनीति शब्द 'राज्य' और 'नीति' या 'नैतिकता' - दो शब्दों के मेल से बना है, जो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसको अलग-अलग देखा नहीं जा सकता, जहाँ राज्य होगा वहाँ नैतिकता भी मौजूद रहेगी। जिसका अर्थ राज्य की शासन प्रणाली होता है। दूसरे शब्दों में राज्य एक शरीर है तो नीति उसकी आत्मा है। अतः विद्वानों ने इसे अलग-अलग रूप से परिभाषित किया है--

प्रसिद्ध ब्रितानी मानववेत्ता रैडक्लिफ ब्राउन के अनुसार- ''राजनीतिक व्यवस्था किसी समाज विशेष के सम्पूर्ण संगठन का वह भाग है जो सामाजिक

व्यवस्था की स्थापना और इसे कायम रखने में समर्थ है। किसी समाज में सदस्यों के अधिकार और दायित्व की व्यवस्था राजनीतिक संस्थाओं द्वारा ही सम्भव है।"

लुसी मेयर(Lucy Mair) के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था प्रत्येक समाज में विद्यमान है। यह ऐसे लोगों का समूह है जो एक-दूसरे से निश्चित अधिकार और दायित्व द्वारा सम्बद्ध रहते हैं।

पॉल बोहानन् (Paul Bohannan) ने राजनीति की परिभाषा 'सामाजिक शक्ति के क्षेत्रीय पहलू' के रूप में की है।

आई जेक शपेरा (I Saac Schapera) ने राजनीतिक व्यवस्था के बल प्रयोग की आलोचना की है और बतलाया है -"यह व्यक्तियों का वह समूह है जो बाहरी नियंत्रण के बिना एक इकाई में संगठित होकर सारा काम सम्भालता है।"[13]

राजनीति - राज + नीति। राज का अर्थ - राजा, राज्य, श्रेष्ठ एवं रहस्य भी होता है। इस अर्थ में श्रेष्ठ नीति विधान को या रहस्यमय नीति को या राजा की नीति को या राज्य की नीति को राजनीति कहा जा सकता है। सम्प्रति राजनीति को समझना बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों के लिए भी टेढ़ी खीर होता जा रहा है। [13 क]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर मुण्डाओं के प्रागैतिहासिक राजनैतिक संगठन में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, कलात्मक और प्राकृतिक अंगों का समावेश का एक नाम राजनीतिक संगठन है।

"राजनीति विज्ञान के विशेषज्ञों के बीच यह एक चर्चा का विषय रहा है कि कुछ समाजों की राजनीतिक प्रणाली राज्य (State) जैसा ही संगठित होता है शेष समाज राज्य विहीन (Stateless) है। राज्यविहीन समाज के दो उप वर्ग बतलाये गये हैं --पहले वर्ग में वैसे समाज आते हैं जिसके राजनीतिक कार्य विस्तृत परिवार (Extended family) द्वारा सम्पन्न होते हैं। दूसरे वर्ग में वे आते है जिसके राजनीतिक कार्य कुल समूह (Lineage) और गोत्र (Clan) पर आधारित हैं।" [14]

प्रागैतिहासिक काल में मुण्डाओं के राजनीतिक संगठन को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है- गाँव, मौजा, पड़हा और पड़हा मण्डल या परगना। "मदराकान्त देव सिंह मुण्डा ने राज्य को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए

चार खण्डों में विभक्त किया था। खण्ड को परगना में, परगना को पड़हा में, पड़हा को पंचायत में, पंचायत को गाँव में तथा गाँव को खूँट में विभक्त किया गया था।"[15]

गाँव :- हर गाँव में एक ग्राम सभा होती है। इसका अध्यक्ष मुण्डा होता है। इसका एक ग्राम परिषद् होता है। यह अक्सर (अब तक) अखड़ा के इमली वृक्ष के नीचे होता है।

मौजा :- कई छोटे गाँव को मिलाकर एक मौजा होता है। इसका प्रधान 'मुण्डा' होता है। पंच जवान लोग तथा एक पंच पहान भी होता है। क्योंकि पहान एक मौजा का पुजारी एवं मालिक होता है। पूजा के नाम पर मुर्गी-चेंगना, अन्न आदि मालगुजारी या सलामी के रूप में ग्रहण करता है। एक मौजा में एक उप-पहान भी हो सकता है। इसका बँटवारा वन-सम्पदा को दो हिस्सों में विभक्त कर किया जाता है। मूल पहान ही उप-पहान को नियुक्त करता है।

पड़हा :- एक गोत्र के कई गाँवों को मिलाकर एक गोत्र का पड़हा होता है, जिसका प्रधान पड़हा राजा या करठा होता है। इसे निम्नांकित पंक्तियों से स्पष्ट किया जा सकता है -

मुण्डा कोअः गोंट दो हतु रे	अर्थात्-गाँव में मुण्डाओं का संगठन
किलि किलि रेअः पड़हा गोट कोरे	गोत्र-गोत्र में पड़हा के रूप हैं।
मुण्डा खुटकटि आद भुंइहर पटि रे	मुण्डा खुँटकटी और भुंइहर पट्टी में
सोतोः अकना नङ्को परिअएते[16]	परम्परा से ही सुव्यवस्थित है।

पड़हा मण्डल/परगना :- कई गोत्र के पड़हा को मिलाकर एक 'पड़हा-मण्डल' होता है, जैसे बाइस पड़हा, बारह पड़हा आदि। बाइस पड़हा का मुख्य व्यक्ति 'बाइस पड़हा राजा' कहलाता है तथा बारह पड़हा का मूल व्यक्ति 'बारह पड़हा राजा' होता है। ऐसे कई पड़हा मण्डलों को मिलाकर एक 'परगना' होता है। जिसका प्रधान व्यक्ति 'महाराजा' कहलाता था। इससे संबंधित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं -

"ने लेकात एया हातु बै जना ओड़ोः मोयोद हातु रे मियद मुण्डा कोरे पड़हा राजा को सला केद कोआ। नेया कमी तिसिंग गपा राँची लुतुमोः तन

टयद रे होबा लेना ओड़ोः इनकुवः चेतन रे मियद पाठ मुण्डा कोरे मरं गोमके राजा रिसा मुण्डा को बई किनाः।" [17]

अर्थात्- इस प्रकार से सात गाँव बने और एक गाँव में एक मुण्डा का और एक पड़हा राजा का चुनाव होता था। यह काम जहाँ आज राँची के नाम से जाना जाता है वहाँ हुआ था। इसके ऊपर में पाठ मुण्डा रिसा मुण्डा को बनाया गया था।

कई परगनों को (जैसे सोनपुर परगना, सिरि परगना, ढोंएसा परगना, बरवे परगना आदि) मिलाकर एक 'संसार' होता था या "छोटानागपुर पठार में नागवंशी राजाओं की शासन व्यवस्था आने (64 ए0डी0) तक एक आदिवासीय संघीय व्यवस्था थी।"[18] जैसा कि वर्त्तमान समय में अखबारों के समाचारों में पढ़ने को भी मिलता है कि मुड़मा मेला टाँड़ के या अमुक स्थान के पड़हा सम्मेलन या सरना सम्मेलन में बाईस पड़हा, बारह पड़हा, पाँच पड़हा आदि के पड़हा राजाओं ने भाग लिया था। इस संसार या संघीय शासन व्यवस्था के प्रधान 'सिंङबोंगा राजा', ईश्वर या धर्म होता है। यह मुण्डाओं का सर्वोच्च शक्तिशाली राजनैतिक संगठन है। किसी भी क्षेत्र की जनता अपने स्थानीय समस्याओं या पूरे देश की समस्याओं को लेकर 'सिंङबोंगा राजा' के पास गाँव के पंचायत तथा पड़हा पंचायत के प्रतिनिधि मण्डलों में जाकर रखते थे। सिंङबोंगा राजा उनके सुख-दुख की बातों को बड़े ध्यान से सुनता और उसका पूरा आदर करता था। देश की बुराइयों को जड़ से मिटाने के लिए हमेशा वह तत्पर रहता था। क्योंकि जनता की खुशी या जनता का सुख ही 'सिंङबोंगा राजा' का सुख था और जनता का दुःख सिंङबोंगा राजा का दुःख था।

जैसा कि प्रागैतिहासिक काल में उत्तर भारत में "आर्यो के आने के पहले अनार्यो के राज्य काल में इस प्रदेश का नाम काशी था और उस समय वह धर्म क्षेत्र नहीं था।" [19]

"परंपरा के अनुसार यह भगवान शंकर की राजधानी है। शंकर या शिव विश्व का निर्माण, पालन एवं संहार करने वाला देवता है। सप्ताह का प्रत्येक दिन और दिन का प्रत्येक पहर विशेष देवी-देवता के दर्शन-पूजन के लिए नियत है। ... 'काशी' ईश्वर का अनित्य तत्त्व है। प्रलय में सब कुछ मिट जाता है। केवल ईश्वर का दिव्य अंश 'काशी' शेष रह जाता है।" [20]

"यहाँ के आदिवासियों के अधिकार के भू-भाग को छीनकर आर्य लोग नये राज्य स्थापित कर रहे थे, नये नगर बसा रहे थे, बड़े-बड़े क्षेत्रों में अपनी खेती तथा गो-पालन की व्यवस्था कर रहे थे। वे अनार्य जी तोड़कर लड़ते थे, परन्तु आर्यो के सामने ठहर नहीं पाते थे और हार जाते थे।" [21]

जब काशी, वाराणसी में मुण्डा-उराँव आदि आदिवासी जाति निवास करती थी, तब उन्होंने कासी (एकाअसि) या वरण (रूप), आकार या गोत्र, जानवरों तथा जीव-जन्तुओं की सवारी अपने राजा सिङबोंगा राजा से माँगा। जिस कारण उस मैदान को एकाअसी कहा गया जो आज काशी रह गया है। इससे मिलती जुलती कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती है- "काश्यते प्रकश्यते अस्या सा काशी," जहाँ जीव को प्रकाश प्राप्त हो वह स्थल 'काशी' है। आध्यात्मिक साहित्य के अवलोकन तथा महापुरुषों के अनुभव से यह बात निर्विवाद है कि वह स्थल दोनों भौंहों के मध्य 'ललाट' है। याज्ञवल्क्य मुनि अत्रि से काशी के सम्बन्ध में कहते हैं - 'परब्रह्म के 'निराकार' एवं 'साकार' दो स्वरूप माने गये हैं। 'काशी' परब्रह्म स्वरूप है। निराकार उपासकों के लिए 'निराकार' स्वरूप की उपासना का विधान है जो दोनों भौंहों तथा नासिका के ऊर्ध्व भाग के मिलने का स्थान है। इसको 'वाराणसी' अथवा 'अविमुक्त' भी कहते हैं।" [22]

"अगर एक सीमित स्थल में सारे भारत की झाँकी लेनी हो तो बनारस ही ऐसा शहर मिलेगा जहाँ विविध भाषाओं के बोलने वाले, नाना वेश-भूषाओं से सुसज्जित तथा तरह-तरह से योजना करने वाले तथा रीति-रिवाज मानने वाले वाराणसी के एक ध्येय यानी तीर्थ यात्रा के उद्देश्य से मालूम नहीं कितने प्राचीन काल से इकट्ठे होते रहे और आज दिन भी इकट्ठे होते हैं।" [23]

तभी तो छोटानागपुर के 'मण्डा' पर्व में यहाँ के भक्तजन नृत्य करते तथा पूजा करते हुए काशी-विश्वनाथ का उद्घोष करते हैं- 'जय जगरनाथ, काशी बिसीनाथ, गया गजा दो...वेणी महादेव, बले शिबा महे।' [23 क]

वाराणसी 'वरण-मांगना' में अस्सी घाट (तिरासी वादी) का सम्बन्ध इससे है- "इस घाट से सम्बन्धित पौराणिक कथानक के अनुसार माँ दुर्गा ने शुम्भ-निशुम्भ का वध करने के पश्चात् अपनी तलवार यहीं फेंक दी थी, जिससे पृथ्वी कट गई तथा जलधारा बह निकली। यही कारण है कि इसे

‘अस्सी’ कहा जाता है।” [24] मुण्डारी में ‘फेंक’ के लिए ‘थेर या तेर’ और ‘अस्सी’ का अर्थ ‘मांगना’ है अर्थात् ‘थेरअस्सी वादी’ से तिरासीवादी कहलाया। वहीं आज के काशी और अस्सीघाट में असुर दिन रात लोहा गलाने का काम करते थे। तब भयानक ताप फैल गया था। कहीं भी किसी जीव को चैन नहीं था। जिसके ताप से प्रकृति भी मुरझा रही थी। तब मुण्डाओं ने सिङबोंगा राजा के पास जाकर इस दुःख दर्द को रखा। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं:-

आहो सिङबोंगा राजा, देवी कुंवारी
अमगः दिसुम दो, अमगःगमए दो
बिलाकन गेया दो, हसबा कन गेया दो
पुरुबो कोना रे, पछिमों कोना रे
उतरो कोना रे, दखिनो कोना रे
अमगः सिरिजन, अमगः उपरजन
उपलबा पुखुरी तड़यबा बंदेला
गाछेयो बिरिछि, तसद दो रुड़ः
दुबिला तसाद, रंकी गाई
चेणेओ चिपुररूद चरैयो चुनगुनी
अमगः सिरिजनः अमगः उपरजन
आहो गोमके आहो चोमके
अबुअः दिसुमरे, अबुअः गमए रे
ने लेकाबु दुकु तन, ने लेकाबु सिगिद तन
एमा निदा, एमा सिंगि
अबुअः चारा-पानी काबु नमजद [25]

अर्थात्- हे परमेश्वर, हे देवि कुँवारी
देश तुम्हारा है, दुनिया तुम्हारी है
यह जो बिछा हुआ है, यह जो फैला हुआ है
पूरब कोने में, पश्चिम कोने में
उत्तर कोने में, दक्षिण कोने में
तुम्हारी ही सृष्टि है, तुम्हारी ही रचना हैं
कमल फूलों की पोखरी, कुमुद फूलों की बावली

गाछ-वृक्ष और तृण-घास
दूब-घास और रंकी गाय
पक्षी-पखेरू आदि सभी चरने वाले
तुम्हारी ही सृष्टि है, तुम्हारी ही रचना हैं
हे मालिक, हे स्वामी
अपने देश में, अपनी दुनिया में
इतने दुःख में है इतनी विपत्ति में हैं।
सातो दिन, सातो रात
हमें दाना-पानी नहीं मिल रहा है।

मुण्डाओं की बात सुनने के बाद उनसे सिङबोंगा राजा ने कहा :-

आहो हगाको, आहो बोया को	अर्थात्- हे भाईयों, हे बन्धुओं
चिबु चिकाए, मेरेबु रिकाए	हम क्या करेंगे, हम कैसे करेंगे ?
चरियो कोना, चरियो पिरिथि	चारों कोना और सारी दुनियाँ
लेल बेड़ाए तबुपे चिना बेड़ाए तगुपे [26]	तुमलोग देखो, तुमलोग खोजो।

परन्तु मुण्डाओं ने तो देखा है। तब फिर सिङबोंगा से उन्होंने कहा--

आहो गोमके, आहो चोमके	अर्थात्- हे मालिक, हे स्वामी
लेलनम तैःयले,	हमलोगों ने देखा है,
चिना नम तैइयले	हमलोगों ने खोजा है
एकासि पिड़ रे,	एकाशी मैदान में,
तिरासी बादी रे	तिरासी टाँड़ में
बारो भाई असुर को,	बारह भाई असुर,
तेरो भाई देवता को	तेरह भाई देवता
सिपुद तन गेयाको,	फूँक रहे हैं,
लेबेद तन गेयाको	धौंक रहे हैं
एलं तन गेया दो,	ताप लग रहा है,
ऐयुर तन गेयादो	गरमी लग रही है
सिमा दुदुगर,	आकाश में आँधी है,
ओतेओ कोवाँसी	धरती पर कुहासा है
चिलंचिकए,	हमलोग क्या करें,
मरेलं रिकए [27]	हमलोग कैसे कहें ?

मुण्डाओं के कहने पर जब सिङबोंगा राजा को पूर्ण जानकारी मिली, तब उसने अपनी पत्नी से कहा -

दांते हो सिराबिंया,	अर्थात्- हे सिराबियाँ,
दाते हो सिरासंगा	हे सिरासांगा लाओ
सोने केरा डुन्टी,	सोने की डुण्टी,
रूपे केरा टैंणि	रूपा की टंउड़ी (घंटी)
चौरा-भौंरा, बंडि जा बिसिरि	चंवरा-भाँवरा, बण्डीजा-बिसिरी
सेंगेल गमा हिता, बंडि जेटे खिति	आग का बीज, आग का खेती
मनातिं लेकोअञ,	हम मनाने चलेंगे,
बुझातिं लेकोअञ [28]	हम समझाने जायेंगे।

"हे बगिना ने दिपली दो जेताए ककाे पतियः मेन्दो सिदा दिपिली ने लेकन इसु काजि को होबा लेना चिअः एन दिपली धर्म राज्य तैकेना, नः दिसुम पाप जना बोंगा को अबुअः लेल केयाते को निरतना।" [29] अर्थात्- हे भाँजे, इस युग में कोई मानने को तैयार नहीं होंगे, परन्तु उस युग में धर्म का राज था। अब देश में पाप भर गया है। यह देखकर देवता हमसे दूर हटते जा रहे हैं।

मुण्डारी लोकगीतों, लोकगाथाओं, लोककथाओं के आलावे मंत्रों में भी प्रागैतिहासिक तथ्य उपलब्ध हैं। जैसे- "जोअर सिरसा रे सिङबोंगा! अङतनलेकाम बोर रकब, बोर अड़गुन तनाम। जुङका बोतोए, पलङडंडिद, तुड़ि सुतम बदि बयर! हुंदि बा डटा तेमा, उपलबा किउवा तेमा।" [30] अर्थात्- नमन हे! आकाश के सिङबोंगा! सूर्य जैसा उदय और अस्त होने वाले! एड़ी तक बोतोए 1. और पलंग पर खड़े! तुड़ी 2. के सूत से और बदि 3. की रस्सी से हुन्दी 4. - फूल जैसे तुम्हारे दाँत है! गाल तुम्हारे कुमुद फूल के समान हैं।

मंत्रों के बाद बुझौवलों में भी प्रागैतिहासिक, राजनैतिक तथ्य उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिए एक कहावत देखी जा सकती है- 'तिसिङ ओको राजा गोएः जना।' अर्थात्- आज किस राजा की मृत्यु हो गई? इसका आशय है -कभी नहीं आने वाले व्यक्ति का अचानक उपस्थित हो जाना। ऐसे प्रसंग में झारखंड के सदान लोग कहते हैं- 'कहाँ कर राजा मोरलक जे आइझ आए हिस।' इसी तरह "जूरे-जूरे होनको निर पे, अञदोञ हका गोएः न।" अर्थात्- जाओ मेरे बच्चों, तुम सब भाग जाओ, मैं फाँसी लगाकर मर

जाऊँगा। आशय है- कोएनार का फल। जब वह पक कर फट जाता है तब फल का छिलका वृक्ष पर ही टंगा रहता है और बीज (बच्चे) दूर-दूर तक बिखर (इधर-उधर गिर) जाते हैं।

आर्थिक तथ्य

प्रागैतिहासिक युग में मुण्डाओं की आर्थिक स्थिति कृषि, शिकार, वन के कन्द-मूल और फल-फूलों पर ही आधारित थी। इस काल में मुण्डा लोग प्राकृतिक सम्पदा वाले नए भू-भाग की खोज में निकल पड़ते थे और जंगल को साफ कर झूम खेती करते थे। इससे सम्बन्धित एक जदुर लाकगीत देखा जा सकता है-

दोलं हो मागे बसी दो अर्थात्- हे मित्र, चलो माघ पर्व के दूसरे दिन
दोलं हो सउड़ी इरे ते हे मित्र, चलो खेर काटने
दोलं हो बा मोरोएः दो हे मित्र, चलो सरहुल के दूसरे दिन
दोलं हो जरा मागे ते हे मित्र, चलो वन साफ करने

प्रागैतिहसिक काल से ही मुण्डा जाति घुमन्तु रही है। यात्रा के उपरान्त वे जहाँ-जहाँ थक जाते थे। वहीं-वहीं गाँव बसाते जाते थे। जैसा कि लोककथाओं के अध्ययन से प्रमाणित होता हैः- "मरंनिः गोःगोःते लगा जना आद दूब जना। एनाते हुड़िंनिः केः कजिअइया-जू हइ अमदो अयरते सेनोःमे। अञदो नेताःगे ओतेकोञ बइया आदेञ हतुया!"[31] अर्थात्- थोड़ी दूर ढोते-ढोते बड़ा भाई थक गया और वहीं बैठ गया। तब उसने अपने छोटे भाई से कहा- 'जाओ भाई तुम आगे बढ़ो, मैं अब यहीं खेत बनाऊँगा और गाँव बसाऊँगा।'

कृषि योग्य खेत बनाने के बाद मुण्डा लोग जोत-कोड़कर खेती करते थे। ये खेत जोतने के लिए बैल, काड़ा आदि पालते आ रहे हैं। इसके अलावे आर्थिक दृष्टि से तथा मांसाहार के दृष्टिकोण से ये बकरी, भेंड़, सूअर, मुर्गी, बतख इत्यादि पालते रहे हैं। कृषि में प्रमुख फसल धान, गंगई, उरद, कुरथी, अरहर, गोंदली, मडुवा, बोदी इत्यादि है। जिसकी खेती लकड़ी का हल जैसे उपकरणों की सहायता से जोत-कोड़कर तैयार की गयी खेत में होती है। जोतने-कोड़ने से सम्बन्धित अनेकों लोकगीत हैं। एक जदुर गीत इस प्रकार है :- *सियुः सियुः चि चलुः* अर्थात्- हल जोतना या कुदाल चलाना
केटेः ओते रेञ पंडिल जना मैं कड़े खेत में पड़ गया

सियुः सियुः चि चलु	हल जोतना या कुदाल चलाना
करातद लोसोद रेञ तली जना	मैं कीचड़ में फँस गया
केटेः ओते रेञ पंडिल जना	मैं कड़े खेत में पड़ गया
ने मुण्डा कोदोको लिंलिञ तना	इस मुण्डा ने मुझे देखा
करातद लोसोदरेञ तलि जना	मैं पाटा कर (समतल कर) कीचड़ में फँसा
ने संता कोदोको चिनाञ तना [32]	संतालों ने मुझे पहचाना।

प्राक् ऐतिहासिक काल से ही मुण्डा समाज आर्थिक दृष्टिकोण से दो वर्गों में रहे हैं। एक अमीर वर्ग और दूसरा गरीब या मजदूर वर्ग। गरीब वर्ग के कुछ लोग देश-प्रदेश धन कमाने के लिए जाते थे तथा कुछ लोग गाँव या इलाके के अमीर मुण्डा के खेत में कृषि मजदूर और धांगर का काम करते थे। लड़कियाँ या कभी-कभी पति-पत्नी धांगर-धांगरिन या दाई का काम करते थे। धांगर-धांगरिन की वर्ष गणना माघ पर्व से होती है। इसी पर्व में धांगर-धांगरिन के मन में एक विचार उत्पन्न होता है जिसे गीत में ढाल दिया गया है। जैसे इस जदुर लोकगीत में :-

ने मुण्डाकोदो रेको बगेइङ देरं	अर्थात्- मुण्डा लोग मुझे छोड़ देंगे
सान गतिङ रेञ पड़गा कोअ	हे प्रिय! मैं उनकी लकड़ी फाड़ दूंगा।
ने संताकोदो रेको रड़ाइङ देरं	संताल लोग मुझे छोड़ देंगे
सउड़ि संगाइङ रेञ इराको	हे प्रिय! मैं उनके लिए खेर काट दूँगा
सान गतिञ रेञ पड़ाःकेना	हे प्रिय! मैंने लकड़ी फाड़ी
सान गतिञरे नोनोलद गेया	हे प्रिय! उस लकड़ी में कालिख लगी है
सउड़ि संगाञ रेञ इरेकेना	हे प्रिय! मैंने खेर काटा
सउड़ि संगाञ रे ससगाः गे [33]	हे प्रिय! खेर में काँटा है।

इस काल में मुण्डा लोग कभी-कभी शिकार से ही अपना जीवन बसर करते थे। इसके सम्बन्ध में लोककथाओं की कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं- "अटा-मटा बिरको तलारे ए हगेया आद मोयोद मिसिः तइकेना। सोबेन हगाको सेंदेरा गेको कमीतन तइकेना। सिउःकमि दो कको इतुअन तइकेना।" [34] अर्थात्- घनघोर जंगल में सात भाई और एक बहन थी। सभी भाई शिकार

का काम करते थे। हल जोतना या कृषि करना उन सबको नहीं आता था।

शिकार से सम्बन्धित लोककथाएँ एवं लोकगीत भरे पड़े हैं। एक जदुर गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार है :--

सेंदेरा को केड़ाकेदा ददा अर्थात्- हे भाई, शिकार जाना तय हुआ
कुजुरि बुरु रे ददा हे भाई, कुजरी पहाड़ जाना तय हुआ
करेंगाको तेले केदा ददा हे भाई, शिकार जाना तय हुआ
सेरालि बेड़ा रे ददा[35] हे भाई, कटाई घाटी जाना तय हुआ

प्राक् ऐतिहासिक युग में मुण्डाओ का आर्थिक आधार प्राकृतिक सम्पदा वन था। कन्द-मूल, फल-फूल आदि का संग्रह वे करते थे। इस विषय के अनेकों लोकगीत हैं। जदुर राग में एक लोकगीत का अवलोकन किया जा सकता है :-

सोसो-कुटी बारु जोलारे अर्थात्- भेलवा, कुटी और कुसुम चढ़ाई पर
संगा हो दिले दोंगोबा हे भाई, कन्दा हरा-भरा है
इचाः लोर बन्दु सोकड़ा रे धवई गढ़ा, लतर सोकरा में
हइको हो सिगिल बिगिला हे भाई, मछलियाँ तैर रही है।

संगा हो दिले दोंगोबा हे भाई, कन्द हरा-भरा है।
संगा हो उरालं मे हे भाई, कन्दा कोड़ लेंगे
हइको हो सिगिल बिगिला हे भाई, मछलियाँ तैर रही है।
हइको हो अरेः लङमे हे भाई, हम मछलियाँ छीटें या पकड़ लें।

संगा होइङ उरेकेना हे भाई, मैंने कन्द खोदा
संगा हो रेद चबाजन (पर) हे भाई, वह सिर्फ जड़ निकला
हइको हाकङ अरेः केना हे भाई, मैंने मछलियों के लिए पानी छींटा
हइको होको चोके चबाजन[36] (पर) हे भाई, वह सिर्फ बेंग(मेढ़क) मिले।

मुण्डारी लोकगीतों, गाथाओं और कहानियों के अतिरिक्त बुझौवलों आदि में भी आर्थिक तथ्य व्याप्त है। वनों तथा वृक्षों से फल-फूल ग्रहण करने के संकेत इनमें मिलते हैं। कुछ बुझौवल द्रष्टव्य हैं :-

'मयोम दो सिबिला, जिलुदो हड़ादा'[37]

अर्थात्- खून स्वादिष्ट है माँस तीता है

- महुवा फल।

'मियद दारु रे हइकोगे पेरे:अकना' [38]

अर्थात्- एक वृक्ष में मछलियाँ भरी है

- फुटकल।

'मेरोम कुन्टुड़ा कना, जोंड़ा अति तना'

अर्थात्- बकरी बंधी हुई है, रस्सी चर रही है

- कोंहड़ा।

'मियद होड़ो जेटे सिंगि देको थेर गिड़िया, ओड़ो: जरगी द: दोको हलं अगुइया-बबा'

अर्थात्- एक व्यक्ति को गर्मी में छितरा कर फेंक देते हैं और बरसात में उसे चुनकर लाते हैं

- धान।

'राजा: बो: रे बड़ाय दुबाकना-सोसो' [39]

अर्थात्- राजा के सिर पर लोहरा बैठा है

- भेलवा का फल।

मुण्डारी लोक साहित्य के उपर्युक्त विधाओं के अलावे सरहुल पूजा-मंत्र या गोअरि (प्रार्थना) में मुण्डाओं के सम्पूर्ण आर्थिक स्रोतों का समावेश मिलता है। जैसा कि पूजा-मंत्र में विद्यमान है-

"तेरे अबेन जयरहड़म, जयरबुड़या, लुटकुम हड़म-लुटुकम बुड़ियाकिङ। ना: दोइङ ओमाबेन तना, चेदाबेन तना रूड़ासिरमा, रूड़ा कुतुइल रे। बोओ: हसु बनोगो:का, लाई:हसु बनोगो: का। बुगिअकन कले। मेरोमएंगा- उरि:एंगा पोअ पोसाओ: काको! बाबाएंगा- कोदेएंगा रसुंड़िसिङ अरेसिङलेका गंड़ाओका बुटाओका। सेन्देरा रे नितिर रे रूसोद दलसोदकोकाले। तुइङ जिलुदा, बबा ओमरूड़ालेम, चुदरूड़ालेम! [40]

अर्थात्- हे जयर बूढ़ा -जयर बुढ़िया, लुटकुम बूढ़ा-लुटकम बुढ़िया! तुम दोनों को मैं तुम्हें दे रहा हूँ, अर्पण कर रहा हूँ कि आनेवाला वर्ष फिर दोहराऊँगा। सिर दर्द न हो, पेट दर्द न हो, हम स्वस्थ रहें! बकरी माँ, गाय माता की सृष्टि-वृद्धि हो। धान माता और मड़वा माँ का, रसून पौधा, अदरक पौधा जैसी वृद्धि हो पौधा बने! शिकार करने में, खोज की कतार में शिकार पकड़ाये। हमें बिन्धा माँस दो, धान फिर से दो, फिर से सौंप दो।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से पता चलता है कि मुण्डा जाति प्रकृति के साथ-साथ प्राकृतिक पदार्थों तथा जानवरों से अपना पालन-पोषण करती आई है। कभी कृषि कर, कभी सिर्फ शिकार और कभी विभिन्न उद्यम कर जीवन निर्वाह करती रही है। सदा से जंगल में रहने के कारण इसे हम जंगली अथवा जंगल में रहने वाले भले कह सकते हैं। परन्तु इनकी सभ्यता-संस्कृति और समाज को जंगली या असभ्यता के अर्थ में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इनकी अपनी उच्च कोटि की सभ्यता-संस्कृति है। इनकी संस्कृति में समानता, शोषण रहित समाज, पारस्परिक सहयोग, समभागिता, ईमानदारी के गुण स्पष्ट हैं।

सामाजिक तथ्य

छोटानागपुर के आदिवासी कबीलों की अपनी-अपनी एक ऐसी ध ारणा रही है कि मनुष्य की वृद्धि 'एक भाई और एक बहन से हुई है। उसी भाँति मुण्डा जाति तथा मुण्डारी लोक साहित्य एवं लोक कथाओं में भी 'एक भाई और एक बहन' की कथा प्रचलित है। मुण्डा लोग अपनी भाषा में इन्हें लुटकुम हड़म, लुटकुम बुढ़िया या लुटकुम बूढ़ा-लुटकुम बुढ़िया कहते हैं। उपर्युक्त तथ्य के आधार पर मुण्डारी में एक बुझौवल है- 'ने ओते-दिसम रे बरहोड़ो गेयाकिन'- अर्थात्- इस धरती में सिर्फ दो ही व्यक्ति हैं। इसका मतलब है 'नर और नारी'। अर्थात्- संसार की इतनी बड़ी जनसंख्या में केवल दो ही मनुष्य हैं -एक नर का रूप तथा दूसरा नारी का। इसी भाँति उराँवों में भी मानव सृष्टि भाई-बहनों से मानी जाती है।

प्रागैतिहासिक काल में मुण्डा जाति छोटानागपुर की अन्य जनजातियों की तरह धुमन्तु थी। इस घुमन्तु जीवन में वे सदा वनों में ही शरण लेते थे। तब इनकी जनसंख्या बिल्कुल कम हुआ करती थी। जिस कारण नई जगहों में मुण्डाओं का सामाजिक संगठन, समाज विहीन होकर एक परिवार के रूप में संकुचित हो जाता था। जानवरों का शिकार करना एवं वन के फल-फूलों का संग्रह कर जीवन निर्वाह करना ही इनका जीवन था। इससे सम्बन्धित

पंक्तियाँ पहले दी गई हैं। नये क्षेत्रों में इन्हें पूर्व पाषाण युग और नव पाषाण युग की भाँति नये रूप से भोजन, आवास, वस्त्र, औजार, पशुपालन, कृषि, गाँव का निर्माण, कला, स्वशासन और धर्म आदि की स्थापना परम्परानुसार करने की आवश्यकता हुई होगी।

इस युग में मुण्डा लोग छोटानागपुर के सभी दिशाओं के जंगलों में एक-एक दल के रूप में अथवा एकल परिवार के रूप में बसे हुए थे। ये ही उन क्षेत्रों के या एनपड़ा (पड़हा) का राजा या मालिक अथवा सरदार के सदृश होते थे। इससे सम्बन्धित पंक्तियों का अवलोकन किया जा सकता है। ''बरिया हड़म-बुड़िया किंआः बरिया होनकिङ तैकेना। मोयोद कोड़ाहोन आद मोयोद कुड़िहोन। इनकिङ मुसिङ मोयोद बिरते तिरिल जोमकिन सेनोःजना।''[41] अर्थात्- दो बूढ़े-बुढ़ियों की दो संतान थी। एक बेटा और एक बेटी। एक दिन वे दोनों एक वन में केन्द खाने के लिए गये।'' वे उस गाँव के राजा ही थे। ऐसे सभी एकल परिवार के गाँवों को मिलाकर एक देश या दिसुम अथवा नगर की स्थापना की गयी थी। यह नगर आज के बड़े-बड़े महलों एवं शान-शौकत का गढ़ नहीं था। राजा-रंक सभी समान हुआ करते थे। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं- ''मोयोद दिसुम रे राजा आद रानीकिन तइकेना। इनकिनः मोयोद कुड़िहोनेः तैकेना।'' [42] अर्थात्- एक देश में एक राजा और एक रानी थी। इन दोनों की एक पुत्री थी।

छोटानागपुर में भी मुण्डा लोगों ने एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र का भ्रमण किया। वे पहले से बसे मुण्डा लोगों के शरण में आकर गाँव बसाये। उन्होंने उसे ही गाँव का मुण्डा या मालिक की पदवी भी दी। शरणार्थी ने पहले का अपना गोत्र छोड़ या बदलकर मुण्डा राजा के गोत्र को स्वीकार कर एक खूँट की स्थापना की। जिसे खुँटकटी कहा जाता है। इस प्रकार से भी मुण्डाओं के आदिम गोत्रों का विलय और आगम होता रहा। रिसा मुण्डा का एक दल जब राँची आया, तब वे एक खूँट के थे। यह परिवार पहले हंस गोत्र का था। ''सिदा रअः हाँस किली तनाः।'' [43] अर्थात्- (छोटानागपुर आगमन के) पहले का हंस गोत्र है। जनसंख्या में वृद्धि होने के बाद वे अलग-अलग दिशाओं में बँटे और नये-नये गाँवों की स्थापना की। एक गाँव एक परिवार द्वारा बसाया गया है। अतः उस गाँव में एक गोत्र की जनसंख्या मिलती थी। जिस कारण मुण्डाओं को अपने लड़के-लड़कियों की शादी करने में काफी कठिनाइयाँ होती

थी। एक दिन रिसा मुण्डा एक वृक्ष के नीचे यही चिंतन-मनन करते हुए सो गया। तब ईश्वर या सिङबोंगा ने उसे सपने में बताया कि- "अम, अमःएआ पड़हा राजा को मियद टयद रे रःकोम ओड़ोः सोबेन चेड़ेंको, जनवरको रःकोम, ओड़ोःएन राजा को कुलिकोम चि ओको जनवरकोरे, ओका चेड़ेकोरे ओकोनिअःरे जी बराबरि तना इनिअः एना किली गे होबःओअ।" [44] अर्थात्- तुम अपने सात पड़हा के राजाओं के एक स्थान पर बुलाओ और सभी चिड़ियों तथा जानवरों को बुलाओ और उन राजाओं से पूछो कि वे किस जानवर से अथवा कौन सी चिड़िया से संतोष प्राप्त करते हैं, वही उस पड़हा राजा का गोत्र होगा।

उपर्युक्त प्रसंग से स्पष्ट होता है कि हंस गोत्र वालों में से ही एक ने एक ही गोत्र से अनेक गोत्रों का निर्धारण किया। इस प्रसंग से जुड़ी पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं- "मेन्दो एन हाँस किलीअः संतान को नवा किली को उदुब केदा ओड़ोः पुरना को बगे केदा मेन्दो इनिअः संतान कोयो एटः किली को सकिन जना।" [45] अर्थात्- परन्तु उस हंस गोत्र की संतानों ने अपने नये गोत्र बतलाये। उन्होंने पुराने गोत्र को छोड़ दिया, फिर उनकी संतान भी दूसरे गोत्र से जानी गयी।

इस प्रकार छोटानागपुर में मुण्डाओं के गोत्र-पुर्नस्थापना की आवश्यकता पड़ी। परम्परानुसार सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान को प्रतिष्ठित करने के लिए किया गया। ऐसे समय मुण्डा समाज की परम्परा को बनाए रखाने का आह्वान कर यह सुनिश्चित किया गया कि "एटाः किली रे आड़ान्दि बैयुःआ अर मोयोद किली रे आकोयाः कोड़ाहोन-कुड़िहोनकिन दोपो रेको अपनाः जाति किली ओड़ोः हतु दिसुम माएतेबु हरगिड़िकिंआ, नेअ कजि एन हुलं मुण्डा राजाको दस्तर को दो केदा।" [46] अर्थात्- भिन्न गोत्रों में ही शादी-विवाह होता है। परन्तु सगोत्र में जिनके बेटे-बेटी प्रेम-विवाह कर लेते हैं उनको अपनी जाति गोत्र से ही नहीं गाँव-नगर से भी बाहर कर दिया जाता था। इनके साथ लड़के-लड़की के माता-पिता या परिवार को भी समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। जब तक कि वे अपने गोत्र के करठा द्वारा पूजा-पाठ कर शुद्धिकरण नहीं कर लेते थे। यह परम्परा आज भी जीवित है।

अतः मुण्डा समाज में अनेक गोत्र थे। इनके गोत्रों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अलग-अलग लोक कथाएँ हैं। गोत्र का अर्थ सवारी है। हिन्दू

देवी-देवताओं की सवारी में तरह-तरह के पशु-पक्षियों का उल्लेख हुआ है। जैसे- शिव की सवारी बैल, पार्वती का सिंह, कार्त्तिक का मोर, गणेश का चूहा, विष्णु का गरूड़, लक्ष्मी का उल्लू, सरस्वती का हंस आदि। ऐसे सवारी के नाम (पशु-पक्षी) ही मुण्डाओं के गोत्र हुए। अब मुण्डाओं के कुछ गोत्र आर्थिक उपादान एवं आर्थिक क्रिया-कलाप तथा सांस्कृतिक पक्ष से सम्बन्धित भी हो गए हैं। जैसे-सोय मुरुम, तुइग सोय, गेद सोय, तिल सोय तथा ताम्बवार, होलोंग (रोटी), सांगा आदि। यही कारण है कि रिसा मुण्डा ने गोत्र पुनर्गठन के लिए चिड़ियों और जानवरों को ही आमांत्रित किया था। इस युग में मनुष्य की सवारी से सम्बन्धित चिड़िया या जानवर ही उनके नाम एवं जाति के द्योतक थे। जैसे-

"ढिंचुवा मारू	अर्थात्-	मारु ढिचुवा
केरकेटा जागु		जागु केरकेटा
कजिकेद गेयकिं		दोनों ने कहा
बकणाकेद गेयकिं[47]		दोनों बोले"

प्रागैतिहासिक काल में मुण्डा समाज घुमन्तु जीवन के दौरान खण्डित और संगठित होता रहा। झारखण्ड में जब मुण्डाओं की जनसंख्या स्थाई रूप से बस गई, तब इनके गोत्र तथा गोत्रानुसार पड़हा में आवश्यकतानुसार काफी वृद्धि हुई। यहाँ आने के पूर्व भी स्थान विशेष पर इन्होंने ईश्वर की आज्ञानुसार राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, आदि पक्षों की व्यवस्था को बनाए रखने के लिए गोत्रों की स्थापना की थी। जैसे सिन्धु घाटी सभ्यता में, उत्तर भारत के काशी के अस्सी घाट और वाराणसी में। दक्षिण भारत में जब सिङबोंगा राजा राम, सीता की खोज करने के लिए अपने बन्दर सैनिकों अर्थात् छोटानागपुर की सम्पूर्ण आदिवासी कबीलों के साथ जा रहे थे, तब ईश्वर के आह्वान पर सभी जल-जीव भी इनकी सहायता के लिए चल पड़े थे। इन विभिन्न जल जन्तुओं पर सवार होकर राम ने समुद्र पार किया था। सम्भवतः यहाँ भी मुण्डाओं तथा अन्य जनजातियों के गोत्र उनकी सवारी के आधार पर निकले होंगे। इससे सम्बन्धित चित्र भी श्री रामचरित मानस के पृष्ठ 656 पर है। इस प्रसंग में कुछ पंक्तियों का आवलोकन समीचीन होगा:--

"सेतु बन्धु भइभीर अति, कपिनभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरिन्हि ऊपर, चढ़ि-चढ़ि पारहिं जाहिं।।" [48]

अर्थात्- सेतु बन्ध पर बड़ी भीड़ हुई। तब कुछ वानर आकाश मार्ग में उड़कर चले। बहुतेरे जलचर जीवों पर चढ़कर जाने लगे।

इसी तरह की घटनाओं के प्रसंग मुण्डारी की गोत्र-लोक कथाओं की सम्बन्धित पंक्तियों में देखे जा सकते है-"मुसिङ हुड़िंग लेका होड़ोको मिदतःको सेनोःतन तइकेना। होरा रे मियद गड़ा को नमकेदा। गड़ा परेःयामन तइकेना। मेन्दो मियद-मियद ते सोबेन को परोम जना। मियद होड़ो बारिःसरेः जना। इनि परोम कए सासे केदा। इनिःअकबका किःचि ककला केदा। ओकोए परोमिङ्गा इनिः जिनद बारी बुगिनेञ कमिइया। एन सोमए होड़ो ओड़ोः जीवःजन्तु को जगर तन तइकेना। सेन होरा निअः ककला मियद होरो अयुम केद चि उडुंङ लेना आरेः मेतइया अञ परोम मेया। सेन होरा निःअयः होन होपोन कोलोः होरो देया रेको देःजना आर होरो सोबेन कोएः परोम केद कोवा। आएः कजि केद लेकाते अयः किली 'होरो' चा कच्छपेः दो केदा।" [49] अर्थात्- एक बार कुछ लोग जा रहे थे। रास्ते में एक नदी मिली। नदी भरी हुई थी। सब ने नदी बारी-बारी से पार कर लिया। केवल एक आदमी रह गया। उसे हिम्मत नहीं हुई। उसने घबराकर पुकारा कि जो मुझे नदी के उस पार उतार देगा मैं जीवन भर उसका उपकार मानूँगा। कथा के अनुसार उन दिनों मनुष्य और जीव-जन्तु एक दूसरे की बात समझा करते थे। राही की पुकार एक कछवे ने सुन ली और बाहर आकर बोला कि मैं तुम्हें पार ले चलूँगा। वह राही अपने परिवारों और सामानों के साथ कछुवे की पीठ पर सवार होकर नदी के पार उतर आया। तब अपने कथन के अनुसार उस व्यक्ति ने अपना गोत्र होरो या कछुवा रख लिया। एक जंगल में एक दम्पति रहती थी। बूढ़ा गाँव की ओर चावल लाने के लिए गया और बुढ़िया अपने बच्चे को सुला कर पानी लाने गई। लौट कर आने पर बुढ़िया देखती है कि एक नाग अपने फण से शिशु की रक्षा कर रहा है। तभी बूढ़ा भी आ गया और उसने भी इस दृश्य को देख लिया। तब से इस दम्पति की संतान ने नाग द्वारा रक्षित होने के कारण नाग गोत्र को अपना लिया।

इस प्रागैतिहासिक युग में मुण्डा समाज में हरण विवाह भी प्रचलित था। इस प्रसंग से सम्बन्धित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं--"इनिः मोयोद बड़े सकमरः पुडुइः बइकेदा आदएः सेनो जना। दःनम केद चिःरूड़ातन तइकेना। अनादो राजाकोएः लेल नम केद कोवा। इनकु बिरते सेंदरा को हिजुःआ कन

तइकेना। इनकु लेल केदको चि इनिःमोयोद दारु रेः दे जना। एन दारु तः रेगे एन राजा को दूब जना। चेतनेते दः मिसा-मिसा उयुःतन तइकेना। एनागे मायोद सिपइ चकालः अनादो सिबिलगेः अटकरकेदा। एनलोःगे चेतन तेः संगिलाः अनादो मोयोद राजा लेकन कुड़िहोन तनिः। एनलोःगेसिपइको रचाःहड़गु किःया आदको इदि मेसा किःया।" [50] अर्थात्- वह बरगद के पत्तों का एक दोना बनाई और चली गई। वह पानी लेकर लौट रही थी कि उसने राजाओं को देख लिया। वे जंगल में शिकार करने आए हुए थे। उन्हें देखकर वह (लड़की) एक पेड़ पर चढ़ गई। उसी पेड़ के नीचे राजा लोग बैठ गए। ऊपर से कभी-कभी पानी टपक रहा था। उसे एक सिपाही ने चख लिया तो उसे स्वादिष्ट लगा। तब उसने ऊपर देखा तो एक रानी जैसी सुन्दर लड़की थी। तुरंत ही सिपाहियों ने उसे खींचकर उतार लिया और साथ ले गये।

प्राचीन काल में विशेषकर महाभारत काल में भी हरण द्वारा कन्या के विवाह की प्रथा कायम थी। भीष्म पितामह ने अपने भाइयों विचित्रवीर्य और चित्रांगद के लिए अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका का हरण कर विवाह कराया था। श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा का हरण अर्जुन द्वारा हुआ था। स्वयं श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण कर विवाह किया था। हरण की गई कन्या को वधू कहा जाता था और आज वधू से बहु शब्द बना। मुण्डाओं में प्रचलित हरण विवाह और प्रेम विवाह आज भी सुदूर देहातों में सीमित रूप से प्रचलित है। लेकिन इनमें पहले से रजामंदी रहती है। वे मेले-ठेले, बाजार-हाट में हरण कर एक तरह से नाटक करते हैं। मुण्डारी में वधू को 'कोनेयां' और वर को 'बोर' बाबू कहा जाता है। समय के परिवर्त्तन के साथ-साथ लोगों की मनोवृत्ति में भी स्वतः बदलाव आता है। पढ़े लिखे मुण्डा अब इस संस्कार को भूलते जा रहे हैं। परन्तु गाँवों में प्रेम विवाह अब भी यथावत् है।

मुण्डा गाँव में ससङ (मुर्दाघाट), सरना (धार्मिक पूजा स्थल) और अखरा या अखाड़ा (सांस्कृतिक केन्द्र) सामुदायिक स्थल होते हैं। ससङ से सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं- "कामदेव गाई बोंगा राजा को इदि रःइ इंतम बोओःते उटूब लेदा एन उटुब तःरे ओते बुउः जना आदबु उड़ुङ्ग लेनाः बुउःरे दीदी थेर केसेद केदा एनामेन्ते अबुअः सासङ मेनाः ओड़ो सासन दिरिबु रकब जदा।" [51] अर्थात्- हरण के समय कामधेनु गाय ने अपने सींगो से जमीन छेद कर डाली, उसी छेद से मुण्डा लोग निकलने के कारण सींग (सींघ)

या सिंह कहा जाता है और वे जिस छेद से निकले उसे कपिल मुनि ने पत्थर से बन्द कर दिया था इसलिए उसमें आज भी मरने के बाद निशानी के रूप में ससङदिरी (पत्थर) गाड़ने की प्रथा प्रचलित है।

प्रागैतिहासिक काल से ही मुण्डा समाज में विभिन्न पर्व-त्योहार मनाये जाते रहे हैं। मुण्डाओं का एक महत्त्वपूर्ण पर्व सरहुल है। नव वर्ष के रूप में यह पर्व तीन दिनों तक क्रमशः अलग-अलग विधि-विधान से मनाया जाता है। जैसा कि निम्नांकित लोकगीत से भी स्पष्ट होता है। उस दिन अखड़ा में नृत्य के दौरान लुटकुम बूढ़ा लुटकुम बुढ़िया से, पति अपनी पत्नी से, देवर अपनी भाभी से, दामाद अपनी साली से, भाई अपनी बहन से, प्रेमी अपनी प्रेमिका से कहता है कि :--

तिसिंदो सजनी, हइको जोजो रसि।
गपा दो सजनी, गोटा रम्बड़ा रसि।।
अर्थात्-
हे सजनी, आज मछली और इमली का झोर (झोल) बना।
हे सजनी, कल गोटा उरद का झोर होगा।।

इस प्रकार पहले दिन मछली-केकड़ा पकता है। दूसरे चरण में उपवास के दिन साखू की कोंपलें एवं नये पत्तों में पुआ-पकवान, हड़िया तथा भोजन आदि का प्रसाद चढ़ाते हैं। इस दिन माँस-मछली नहीं चलता है। ये नये पत्तों में या कोपलों में बैठते हैं, उसे पहनते हैं और खाते हैं। तीसरे दिन सखुआ के फूल तथा गोंदली-फूल लाते हैं। इस दिन घर देवताओं या पूर्वजों के नाम से सुकाड़ा कटली लोहंजरी मुर्गी की बलि दी जाती है। फूल के दिन मुर्गी का माँस, जिया मछली और इमली का झोल, उरद की दाल, भात तथा हड़िया का रस पूजा में चढ़ाये जाते हैं। हड़िया सबसे पहले चढ़या जाता है। इस दिन घर में आये अतिथि को सबसे पहले साखू के फूलों से स्वागत किया जाता है और खुशी में इस प्रकार गीत गाया जाता है :--

बादोपे बा तना मुण्डाको	अर्थात् -हे मुण्डाओं सरहुल मना रहे हो
बा दोरे कपे ओमेंया	पर, फूल नहीं देते हो।
डालि दोपे डालि तना संता को	हे मुण्डाओं, कोंपलें तोड़ रहे हो
डालि दो कपे चेदेया	पर, कोंपलें नहीं बाँटते हो।
बा तेपे रिंगा तना मुण्डा को	हे मुण्डाओं, तुम्हें फूलों की कमी है

बा दोरे कपे ओमेंया	इसलिए फूल नहीं देते हो
डालि तेपे नोकोल तना संताको	हे भाइयों तुम्हें कोपलों की कमी है
डालि दो कपे चदेया	इसलिए कोपलें नहीं बाँटते हो
अलेअः दिसुम तेपे सेनोःरेदो	तुम सब यदि हमारे देश जाओगे
सुपिद चुटि रेले बाकुल पेआ	तो हम तुम्हें खोपा के ऊपर फूल दे भेजेंगे
आलेअः गमए तेपे बिरिद रेदो	तुम सब यदि हमारे गाँव जाओगे
रोनोपोद सुबा रेले डलिकुल पेआ	तो हम तुम्हें खोपा के नीचे कोंपलें दे भेजेंगे

मुण्डा समाज में तब भी स्त्री-पुरुष श्रृंगारप्रिय होते थे। नर-नारी दोनों ही बाल बढ़ाते थे। उनके समाज में बच्चों की छट्ठी के बाद कानछेदी, जीवन रक्षा, जातीय पहचान के साथ-साथ श्रृंगार के लिए भी महत्त्वपूर्ण था। वे सोना, चाँदी, ताम्बा, पीतल, लोहा, लाह आदि तथा पेड़-पौधों की, लकड़ी तथा पत्तों से निर्मित आभूषणों का प्रयोग करते थे। इससे सम्बन्धित अनेकों लोकगीत हैं। एक जदुर गीत इस प्रकार है :-

दोला मंइंना सोना हिसिर हिसिरेम, दो मंइंना एंगम कोरे ओड़ाः,
दोला मंइना रूपा मुन्दम तुसिंएम, दो मंइंना अपुम कोरे रोसोम।। [52]

अर्थात्-

हे पत्नी, सोने का हार पहनो और चलो मायके।
हे पत्नी, चाँदी की अंगूठी पहनो और चलो तुम्हारे पिता के घर।।

ऐसे अनेकों माता-पिता से सम्बन्धित लोकगीत हैं; जिसमें माता का नाम पहले और पिता का बाद में आया है। अतः प्रागैतिहासिक युग के मुण्डा समाज में स्त्रियों का स्थान पुरुषों की भाँति बराबर था। प्रारम्भिक काल में मातृसत्तात्मक परिवार ही हुआ करते थे, पितृसत्तात्मक समाज बाद में आया। नारी शक्ति को स्वीकार करने के कारण ही नारियों को प्रारम्भ से ही प्रथम स्थान मिलता रहा है तभी तो माता-पिता, सीता-राम राधा-कृष्ण, गौरी-शंकर जैसे प्रयोग चलते है। इन शब्दों में प्रथम शब्द नारियों से ही सम्बन्धित है। लेकिन शिव-पार्वती, पति-पत्नी, भाई-बहन इसके अपवाद हैं।

मुण्डा समाज अथवा जाति छोटानागपुर की अन्य आदिवासी कबीलों

की भाँति 'देववंशी' है। देववंशी कहने का तात्पर्य है कि असुर को देवता भी कहा गया है। मुण्डा लोग असुरों के भाई थे। इससे सम्बन्धित मुण्डारी में भेलवा पूजा की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

एकासी पिड़ी रे	अर्थात्-	एकासी मैदान में
तेरासी बादी रे		तिरासी टाँड़ में
बारो भाई असुर को		बारह भाई असुर और
तेरो भाई देवता को [53]		तेरह भाई देवता।

मुण्डा समाज में भी पति के मर जाने पर और पत्नी की मृत्यु होने पर अथवा पति-पत्नी में पूर्ण रूप से छुटा-छुटी (अलगाव) हो जाने पर दोनों दूसरी शादी कर सकते हैं। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोकगीत है :-

एंगाम मंइ बुड़ि दिला रे	अर्थात्-	हे बेटी, तुम्हारी माता बुढ़ापे में
एंगाम मंइ कोनेअन तन		हे बेटी, वह शादी कर रही है
अपुम मंइ बोः चडे रे		हे बेटी, तुम्हारे पिता बुढ़ापे में
अपुम मंइ बोरेन तन [54]		हे बेटी, वह वर बन रहे हैं।

पुत्र माता के साथ दूसरे पिता के घर में भी पालित-पोषित होता है, परन्तु जमीन-जगह का हकदार वह अपने पहले पिता का ही पाता है। प्रारम्भिक काल से ही मुण्डा समाज में विवाहित पुत्री को पिता के जमीन-जायदाद से हिस्सा नहीं दिया जाता था। क्योंकि वह स्वतः पति के घर में पा लेती है। इतना ही नहीं शादी की गई लड़कियों को मुण्डा समाज में मायके में पूजा पर चढ़ाये प्रसाद या भात-दाल, हंड़िया-माँस आदि नहीं दी जाती है। उनके लिए अलग से तैयार किया जाता है। इस प्रसंग में एक जदुर गीत देखा जा सकता है :--

अमदो दई बोंगासिम जिलु उतु	अर्थात्-	दीदी, तुम्हें पूजा-मुर्गी का पका मांस
अमदो दई कले ओमा मा		दीदी, हम तुम्हें नहीं देंगे!
अमदो दई तपन इलि टेन्डाःरसि		दीदी, तुम्हें पूजा-हंड़िया का रस
अमदो दई कले चेदा मा		दीदी, हम तुम्हें नहीं देंगे!
अमदो दईले गोंये तदेमा		दीदी, हमने तुम्हारी शादी कर दी है
अमदो दईले कले ओमा मा		दीदी, हम तुम्हें नहीं देंगे!
अमदो दईले चले तदेमा		दीदी, हम तुम्हें विदा कर चुके हैं।

अमदो दईले कले चेदामा — दीदी, हम तुम्हें नहीं देंगे!

हेयतिं मोनिआरे चकातिं सनञ — मुझे चिंता है - फिक्र है।
सिंङबोंगा एटेः रेगे बइअ कना — पर, पूजा की परम्परा का नियम है
हेयतिं मोनिआं रे चकतिं सनञ — मुझे चिंता है - फिक्र है।
हड़म-बुढ़िया कोगे चोलोना कदा[55] — पर, पुरखों की ही ऐसी प्रथा है।

यदि विधवा या परित्यक्ता फिर दूसरी शादी कर लेती है तब पूर्व पति की जमीन पर उसका हक स्वतः समाप्त हो जाता है और वर्त्तमान पति के घर में वह हकदार हो जाती है।

अतः मुण्डारी लोक साहित्य में मुण्डाओं का सामाजिक, ऐतिहासिक तथ्य आज भी किंचित बदल कर उपलब्ध है। इसका वास्तविक ऐतिहासिक तथ्य मौखिक प्रचलनों में जीवित है।

सांस्कृतिक तथ्य

"संस्कृति' शब्द अत्यन्त व्यापक है। इसलिए इसका स्वरूप भी तर्क-वितर्क का विषय है। कला, धर्म, दर्शन, आचार-विचार एवं सम्पूर्ण सामाजिकता का महासागर ही संस्कृति है।" [56]

अतः संस्कृति किसी समाज के संस्कारों की परम्पराओं की वह कृति है जो स्वर्ग के समान है। जिसमें मनुष्य जन्मता, जीता और मरता है या जन्म से मृत्यु तक इसका व्यवहार करता है।

"संस्कृति का शाब्दिक अर्थ संस्कारों की सम्यक् कृति के रूप में है। सम्यक कृति सिर्फ मानवीकृत हो सकती है।" [57]

"प्राचीन भारतीय वाङ्मय में संस्कृति शब्द का प्रयोग आचार-विचार के अर्थ में पाया जाता है। अंग्रेजी का 'कल्चर' शब्द संस्कृति का अनुवाद है।" [58]

संस्कृति का मूल उद्देश्य मनुष्य के आंतरिक गुणों का विकास करना है। विभिन्न संस्कारों के माध्यम से उसकी प्रतिभा और योग्यता को उजागर करना है। संस्कृति के जरिये मनुष्य जीवन के उस सत्य को पहचानता है जिससे मनुष्य, मनुष्य बनता है। मनुष्य जन्म से संस्कृति के मूल सिद्धान्तों और तत्त्वों को ग्रहण करता चलता है। धीरे-धीरे मनुष्य के प्रत्येक क्रिया-कलाप,

चिंतन और अभिव्यक्ति में संस्कृति का गहरा एवं अमिट प्रभाव पड़ता है। उसकी आत्मा संस्कृति के रंग में रंग जाती है। उसका मन-मस्तिष्क अपनी संस्कृति से अगाध प्रेम करने लगता है। मनुष्य के अवचेतन तक में संस्कृति की सुगन्ध समा जाती है। स्वप्न और स्मृति तक में संस्कृति का सौरभ समा जाता है।" [59]

"संस्कृति अन्तःकरण और सभ्यता शरीर है। संस्कृति एक प्रकार का साँचा है, जिसमें समाज के विचार ढलते हैं। संस्कृति समाज की आत्मा और प्राण शक्ति है।" [60]

सभ्यता इतिहास की चीज हो सकती है, लेकिन संस्कृति सदैव जीवित होने का नाम है। ऐसा नहीं है कि संस्कृति का ऐतिहासिक पक्ष होता ही नहीं है, संस्कृति का ऐतिहासिक वैभव प्रत्येक जन गण के सांस्कृतिक इतिहास में मौजूद रहता है।" [61]

इस संस्कृति के मुख्य छः अंग हैं :- "सामाजिक, धार्मिक, कलात्मक, राजनीतिक, आर्थिक और प्राकृतिक।" [62]

मानव विज्ञान की दृष्टि से संस्कृति उतनी ही पुरानी है जितना मानव। अलग-अलग क्षेत्रों में मानव समाज ने अपनी यौन भावना, भूख, आवास, पारस्परिक वार्त्तालाप एवं आदान-प्रदान सम्बन्धी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति सम्बन्धी विशिष्ट जीवन-प्रणाली का सृजन किया, जिसे हम 'संस्कृति' की संज्ञा देते हैं।" [63]

संस्कृति के सम्बन्ध में टाइलर ने यह परिभाषा दी है :- "वह जटिल इकाई जिसके अन्तर्गत ज्ञान, विश्वास, कला, विधि, रीति और अन्य वे क्षमताएँ और अभ्यास सम्मिलित हैं जिन्हें समाज के सदस्य के रूप में अर्जित करना है।"[64]

व्यक्ति अपनी संस्कृति द्वारा निर्मित होता है और यहीं उसकी रचनात्मक अभिव्यक्ति का क्षेत्र निर्धारित करती है। ... संस्कृति व्यक्ति या व्यक्तियों से अधिक बड़ी होती है। ... व्यक्ति, समाज और संस्कृति की व्यावहारिक इकाई है- उसी के माध्यम से उनकी निरन्तरता का वहन और कार्यान्वयन होता है।" [65]

श्री त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने लोक संस्कृति के निम्नांकित मूल तत्त्वों को प्रस्तुत किया है- "भिन्नता में एकता, बाह्य रूप में परिवर्त्तत परन्तु

सात्विक स्थिरता, मानवता एवं सहिष्णुता, प्रकृति से अभिन्न सम्बंध, सत्य परिपालन, विद्या और कला की उन्नति, आध्यात्मिक विकास, तत्त्वज्ञों का समय-समय पर आविर्भाव, ज्ञान की पिपासा और द्रव्यमूलक शासन।" [66]

'मुण्डा संस्कृति' मुण्डाओं की पारम्परिक संस्कृति है जिसे वे अपने पूर्वजों से ग्रहण करते आये हैं। इनके लोक साहित्य में सांस्कृतिक वर्णन पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। भले इतिहास की घटनाओं के विवरण लुप्त हो गए हों, परन्तु संस्कृति के अध्ययन की महत्त्वपूर्ण सामग्री लोकगीतों में मिलती है। अतः मुण्डारी लोक साहित्य में जहाँ हम सांस्कृतिक तथ्य का अध्ययन करने लगते हैं तो सामाजिक, धार्मिक, कलात्मक, राजनैतिक, प्राकृतिक आदि का अध्ययन भी स्वतः होता चलता है। "कर्म और आनन्द का समुचित समन्वय इसके जीवन का परम्परागत आदर्श है। उनका कोई कर्म सुरूचि और सौन्दर्य-विहीन नहीं होता, आनन्द कर्म-विहीन भले ही हो जाए। प्राकृतिक मनोहरता, स्वच्छंदता और प्रारम्भिक जीवन की भावुकता ने मिलकर इन्हें इन्हें कला-प्रेमी बना दिया है। इस कला-प्रियता ने इसके प्रत्येक कर्म में लगन और तन्मयता भर दी है।" [67]

प्रागैतिहासिक युग से मुण्डा समाज में 'अखड़ा' सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। युवागृह, अखड़ा का अंग रहा है, यह युवागृह (गितिःओड़ाः) युवक और युवतियों के लिए अलग-अलग होता था। यहाँ अपने से बड़ों तथा युवतियों के युवागृह में विधवा महिला मुख्य होती थी। वहाँ उन्हें सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, कला, जादू-टोना, यौन-शिक्षा, जड़ी-बूटी का प्रयोग, मंत्र तथा गीत, कहानियाँ-बुझौवल, वाद्य-यंत्रों का उपयोग आदि की जानकारी दी जाती थी। अतः प्रागैतिहासिक काल से ही मुण्डाओं का युवागृह पाठशाला के रूप रहता आया है। वाद्य-यंत्र, जैसे- ढोल, नगाड़ा करताल आदि युवागृह में रहते थे और आज भी रखे जाते हैं। परन्तु टुहिला, बाँसुरी, सारंगी, केन्दरा, मुरली, शहनाई आदि वाद्य-यंत्र युवागृह के अलावे इस युग में युवकों या इससे प्रेम रखने वाले बुजुर्गों के साथ भी रहता था। इस काल में मुण्डा समाज में शादी जैसे कुटुमइत सम्बन्धित मेहमानी में युवक-पुरुष अपने साथ तीर-धनुष, फरसा, डण्टा, तोनोः आदि लेकर जाते थे और पुरुष के खाली हाथ जाने का रिवाज नहीं था। लड़की या लड़के के घर पहुँचते ही सर्वप्रथम उन सबका अस्त्रों को ग्रहण कर घर में रख देते हैं। तब उनका आदार-सत्कार

सात्विक स्थिरता, मानवता एवं सहिष्णुता, प्रकृति से अभिन्न सम्बंध, सत्य परिपालन, विद्या और कला की उन्नति, आध्यात्मिक विकास, तत्त्वज्ञों का समय-समय पर आविर्भाव, ज्ञान की पिपासा और द्रव्यमूलक शासन।" [66]

'मुण्डा संस्कृति' मुण्डाओं की पारम्परिक संस्कृति है जिसे वे अपने पूर्वजों से ग्रहण करते आये हैं। इनके लोक साहित्य में सांस्कृतिक वर्णन पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। भले इतिहास की घटनाओं के विवरण लुप्त हो गए हों, परन्तु संस्कृति के अध्ययन की महत्त्वपूर्ण सामग्री लोकगीतों में मिलती है। अतः मुण्डारी लोक साहित्य में जहाँ हम सांस्कृतिक तथ्य का अध्ययन करने लगते हैं तो सामाजिक, धार्मिक, कलात्मक, राजनैतिक, प्राकृतिक आदि का अध्ययन भी स्वतः होता चलता है। "कर्म और आनन्द का समुचित समन्वय इसके जीवन का परम्परागत आदर्श है। उनका कोई कर्म सुरूचि और सौन्दर्य-विहीन नहीं होता, आनन्द कर्म-विहीन भले ही हो जाए। प्राकृतिक मनोहरता, स्वच्छंदता और प्रारम्भिक जीवन की भावुकता ने मिलकर इन्हें इन्हें कला-प्रेमी बना दिया है। इस कला-प्रियता ने इसके प्रत्येक कर्म में लगन और तन्मयता भर दी है।" [67]

प्रागैतिहासिक युग से मुण्डा समाज में 'अखड़ा' सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। युवागृह, अखड़ा का अंग रहा है, यह युवागृह (गितिःओड़ाः) युवक और युवतियों के लिए अलग-अलग होता था। यहाँ अपने से बड़ों तथा युवतियों के युवागृह में विधवा महिला मुख्य होती थी। वहाँ उन्हें सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, कला, जादू-टोना, यौन-शिक्षा, जड़ी-बूटी का प्रयोग, मंत्र तथा गीत, कहानियाँ-बुझौवल, वाद्य-यंत्रों का उपयोग आदि की जानकारी दी जाती थी। अतः प्रागैतिहासिक काल से ही मुण्डाओं का युवागृह पाठशाला के रूप रहता आया है। वाद्य-यंत्र, जैसे- ढोल, नगाड़ा करताल आदि युवागृह में रहते थे और आज भी रखे जाते हैं। परन्तु टुहिला, बाँसुरी, सारंगी, केन्दरा, मुरली, शहनाई आदि वाद्य-यंत्र युवागृह के अलावे इस युग में युवकों या इससे प्रेम रखने वाले बुजुर्गों के साथ भी रहता था। इस काल में मुण्डा समाज में शादी जैसे कुटुमइत सम्बन्धित मेहमानी में युवक-पुरुष अपने साथ तीर-धनुष, फरसा, डण्टा, तोनोः आदि लेकर जाते थे और पुरुष के खाली हाथ जाने का रिवाज नहीं था। लड़की या लड़के के घर पहुँचते ही सर्वप्रथम उन सबका अस्त्रों को ग्रहण कर घर में रख देते हैं। तब उनका आदार-सत्कार

शुरू होता है। (विदा लेने पर उनके अस्त्र लौटा दिए जाते हैं।) इतना ही नहीं उस युग में वाद्य-यंत्र युवा-गृहों के अतिरिक्त गप्प-गोष्ठी में भी बजाए जाते थे। एक लोकगीत इसकी पुष्टि में देखा जा सकता है। यह गीत गेना राग में है :--

दा तइङ दा टुइला	अर्थात्- तुम मेरा टुहिला दे दो(और)
दा तइङ दा डंडि केन्देरा	तुम मेरा डांड़ी केन्दरा दे दो।
गिति:ओड़ा:रे टुइला	मैं यवागृह में (टुहिला) बजाऊँगा (और)
जारु रोसोम रे डंडि केन्देरा। [68]	मैं गप-शपगृह में (केन्दरा) बजाऊँगा।

प्रागैतिहासिक काल में मुण्डा संस्कृति में सांस्कृतिक कार्यक्रम वर्ष भर चलते थे। परन्तु दूसरे देश की खोज में जब समाज बिखर जाता था, तब अवश्य ही सांस्कृतिक कार्यक्रम भी बिखर जाते थे। लेकिन पुनः यह बरकरार हो जाता होगा। मुण्डाओं का यह सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रकृति के साथ मिलकर विभिन्न ऋतुओं के अनुसार मुख्यतः गर्मी, वर्षा और जाड़ा तीन भागों में विभक्त होता रहा है। गर्मी के आरम्भ में जदुर नृत्य-गीत गाया जाता रहा है जिसका सम्बन्ध बा या सरहुल पर्व से हैं। गर्मी में चिटिद् गीत चलता है, जिसका सम्बन्ध मण्डा पर्व से है। वर्षा में करम, जिसका सम्बन्ध करम त्योहार से तथा जाड़े में जरगा गीत-नृत्य चलता है जिसका मेल माघ-पर्व से है। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोकगीत देखा जा सकता है :-

मागे फागुन रे	अर्थात्- माघ-फागुन में
जदुर सुसुन को	जदुरा नाच होता है
असड़ा सवन रे	*आषाढ़-सावन में*
करम खोजोड़ो को	करम का नृत्य होता है

दोलं गतिङ रे	हे मित्र, चलो हम भी
जदुर सुसुन ते	जदुर नाचने चलेंगे
दोलं संगाञ रे	हे दोस्त, चलो हम भी
करम कोजोड़ो ते [69]	करम खेलने जायेंगे

इस युग में मुण्डाओं का जीवन प्रकृति की गोद में स्वाभाविक एवं सुखमय था। खेत बनाना और खेती करना; रात को अखड़ा में नृत्य करना नित्य का अभ्यास था। इससे सम्बंधित एक जदुर लोकगीत इस प्रकार है :-

मुण्डा कोरे हिसि अराणा अर्थात्- मुण्डाओं में बीस हल चलते हैं
अञो नेअं हिसि अराणा हे माँ, मुझे भी बीस हल चाहिए
संता कोरे दुमङ दंगोड़ि संतालों में मांदर और नृत्य होते हैं
अञो नपङ दुमङ दंगोड़ि हे पिता, मुझे भी मांदर-नृत्य चाहिए

अञो नेअं हिसि अराणा हे माँ, मुझे भी बीस हल चाहिए
सिंगि दोबु सिउःकमिया हम दिन में जोतने का काम करेंगे
अञो नपङ दुमङ दंगोड़ि हे पिता, मुझे भी मांदर-नृत्य चाहिए
निदा दोबु ससुन करमा हम रात में नाचेंगे-खेलेंगे।
सिंगि दोबु सिउःकमिया हम दिन में जोतने का काम करेंगे
कमियांको मेताबुआ (तभी तो) हम परिश्रमी कहलायेंगे
निदा दोबु ससुन करमा हम रात में नाचेंगे-खेलेंगे।
रसिका को मेताबुआ (तभी तो) हम रसिक कहलायेंगे।

मुण्डाओं में परिश्रम करने के साथ ही साथ विश्राम और मनोरंजन का भी उतना ही प्रचलन था। इनका जीवन मनोरंजन के बिना नीरस एवं व्यर्थ होता है। इसके सम्बन्ध में मुण्डारी लोक गाथा सोसोबोंगा की पंक्तियों का अवलोकन करना समीचीन होगा :-

एकासी पिड़ी रे अर्थात्- काशी मैदान में
तिरासी बादी रे तिरासी टाँड़ में
बारोभाई असुर को बारह भाई असुर
तेरो भाई देवता को तेरहा भाई देवता
सिपुद तन गेयाको वे फूंक रहे हैं
लेबेद तन गेयाको वे धौंक रहे हैं
निदात नबाःते रात में भी वे
सिपुद तन गेयाको धौंक रहे हैं
सिंगिते मरेसलते दिन में भी
लेबेद तन गेयाको वे गला रहे हैं

अबुअः दिसुम रे हमारे देश में
अबुअः गमए रे हमारे गाँव में

एना तेबु दुकु तना	उससे हम दुःख में हैं
एना तुबु बलए तना	उससे हम कष्ट में हैं
इनकु तबु हो	उन्हें हमारी ओर से
कजि लेको बेन	तुम दोनों कहो
इनकु तबु हो	उन्हें हमारी तरफ से
बकणा लेको बेन	तुम दोनों बोलो
निदाको सिपुद रे	वे रात में फूँकेंगे तो
सिंगिको होकाएका	दिन में बन्द करेंगे
सिंगि को सिपुद रे	वे दिन में धौंकेंगे तो
निदा को होकाए का [70]	रात में बन्द रखें।

मुण्डारी लोक कथओं तथा गीतों के माध्यम से यह प्रमाण मिलता है कि प्रागैतिहासिक काल में राजा-प्रजा सभी अखाड़े में एक साथ समान रूप से नृत्य करते थे। एक रसिक मुण्डा राजा का बनम (केंदरा) टूटा हुआ है। राजा की रसिक रानी (पत्नी) उसे फिर से केन्दरा की मरम्मत करने के लिए कहती है क्योंकि इस टूटी हुई अवस्था में पूर्व की भाँति केन्दरा कैसे बजेगा और पहले जैसा अखाड़े में कैसे गूंजेगा? और तब आनन्द कैसे आयेगा? इससे सम्बन्धित एक करम गीत द्रष्टव्य है :-

डण्डिओ हुलागाकन	अर्थात्- डंडी भी टूटी हुई है
दनबों केचगा कन	छादन भी फटा हुआ है
राइरति बनम दो	राइरति केन्दरा का
राजारति बनम दो	राजारति केन्दरा का
चिका लेका हो राजाम	हे राजा! तुम कैसे
बनमेअं किंकों	कि कोंग की मीठी अवाज निकालोगे?
मद नव नमेम	नया बाँस खोजो
ऊर नव दबेमे	नया चाम छान्दो (छारो या लगाओ)
राइरति बनम दो	राइरति केन्दरा का
राजारति बनम दो	राजारति केन्दरा का

तोबे रेचा हो राजाम	हे राजा! तभी तो तुम
बनमेआ किं कों	किंग-कों की मीठी आवाज
	निकाल सकोगे।
हटिया हो रुम्बुलोः	तभी तो केंदरा दूर तक गूंजेगा
अकड़ा हो तम्बुलोः	तभी तो अखाड़ा दहल उठेगा
राइरति बनम दो	राइरति केन्दरा से
राजारति बनम दो	राजारति केन्दरा से
सिदा लेका हो राजाम	हे राजा! तुम पहले की तरह
बनमेआ किं कों [71]	किं कों की मीठी आवाज निकाल सकोगें।

लोकगीतों के बाद मुण्डारी लोकगाथा में भी सांस्कृतिक तथ्य उपलब्ध हैं। इसे सम्बंधित कुछ पंक्तियों का अवलोकर किया जा सकता है :-

अलोपे रःया	अर्थात्- तुम लोग मत रोओ
अलोपे चियमा	तुम लोग मत कलपो
लुटकुम हड़म किङ	लुटकुम बूढ़े ने
लुटकुकम बुड़ियाकिङ	लुटकुम बुढ़िया ने
कसरा कोड़ा दो	खसरा लड़के को
तोरो कोड़ा दो	फोड़ा-फुन्सी वाले लड़के को
दसि किङ दोवाकै	नौकर रखा है
धंगड़ा किङ जोगवाकै	चाकर रखा है
इनुं तन गेयाए	हमारे साथ खेल रहा है
खेलाड़ि तन गेयाए	हमारे संग कूद रहा है
पटि जा बबा दो	चटाई का धान
सुड़ता जा कोदे दो	पत्थर (सेरेंग) का मड़ुवा
सिमगेको जोम केद	मुर्गी खा गई
सुकरि गेको नबे केद [72]	सूअर खा गये।

मुण्डारी लोकगीत, लोकगाथा के अतिरिक्त मुण्डारी लोक कथाओं में प्रागैतिहासिक, सांस्कृतिक तथ्य व्याप्त है। इससे सम्बंधित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :- ‘अड़ान्दी रः दिन तेबः लेना। बरतिया को गजा-बजा लोःतेको

हिजुः लेना।'' [73] अर्थात्- शादी का पहला दिन आ गया। बारात गाजे-बाजे के साथ पहुँची। इस काल में मुण्डा लोक करेया (बोतोःए) पहना करते थे। इससे सम्बंधित लोककथा की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :- ''अम गोमके अञः दो ओडः नारे दुअर जेतनाः बनोः। कुड़ी-बुड़ी होन-होपोन जेतए बंकोवा। अञःदो नेः मियद हाके आद मयांग रे टोन्डोम बोतोए बारि गेया।'' [74] अर्थात्- हे महाराज, मेरा तो घर-द्वार नहीं है। पत्नी एवं बाल-बच्चे भी नहीं है। मेरे पास सिर्फ एक टांगी और बदन पर भगवा या करया है।

पहले लिखा गया है कि मुण्डा लोग प्रागैतिहासिक काल में वाद्य-यंत्र मुरली-बाँसुरी, बनम आदि बराबर साथ रखते थे तथा जब चाहे बजाते रहते थे। शिकार के समय मुण्डा लोग ढाल एवं तीर-धनुष आदि अस्त्र तथा साथ में कुत्ते भी ले जाते हैं। इससे सम्बंधित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :-''तलानिदा बना राजाए कुलि जःइया, 'चि गोमकेम दुड़ुम जना चि? राजाएः मेन 'मर उडुंओःमे अमगेञ नमतना।' ओड़ोः इसुरे, 'चि रजाम दुड़ुम जना चि' 'मेन्ते बनाए कजि केदा। रजा लगातेः कबुअकनए तइकेना ओड़ोः हेड़ाजना तोबे खंडा ओड़ोः पिरिकिङ मेनजदा, 'मरबना उडुओःमेलिङ मःगिड़िमेया।' 'एना कजि अयुम केःचि बना ओड़ोःए हपेन जना। एनका गे बना ओड़ोएः कजि केदा। चंवरा अर भंवराकिन मेन केदा, 'मर उडुंओःमे अलिङ अमलिं ओड़ेः चंगड़ा मेया।' 'टुन्डु रे राजाए दुड़ुम जन चि अःसार, ओड़ोः सोबेन को दुड़ुम जना।'' [75] अर्थात्- आधी रात को भालू ने राजा से पूछा कि हे राजा क्या तुम सो गए? राजा ने कहा - निकलो मैं तुम्हारे इन्तजार में हूँ। फिर बहुत देर में -हे राजन्, क्या तुम सो गए? - भालू बोला। राजा थका हुआ था, सो जल्दी नहीं बोल सका। तब ढाल-तलवार बोले-आओ भालू निकलो, हम तुम्हें काट डालेंगे। इस बात को सुनकर फिर भालू चुप हो गया। लेकिन थोड़ी देर बाद भालू ने फिर वैसा ही कहा। तब चंवरा-भंवरा (कुत्तों) ने कहा- आओ निकल आओ, हम तुम्हें चीर-फाड़ डालेंगे। अन्त में राजा सो गया और तीर-धनुष इत्यादि सब नींद में सो गये।

मुण्डारी लोककथाओं के बाद खेलगीतों, बुझौवलों, कहावतों और लोकोक्तियों में भी सांस्कृतिक तथ्य भरे हुए हैं। एक खेल गीत इस प्रकार है :-

इदं-इदं चिगुड़िः अर्थात्- ऊपर-नीचे होता है बहिंगा(भार)

रइबा दो मन्दोली। रइबा (एक फूल) की तरह
मन्दोलि (आभूषण)

बुझौवलों का यदि हम अध्ययन करें तो पाएंगे कि मुण्डारी के सम्पूर्ण बुझौवल सांस्कृतिक, आर्थिक पक्षों आदि पर ही आधारित हैं। उदाहरण के लिए कुछ बुझौवलों का अवलोकन अपेक्षित होगा :-

"रोड़डुटु दललेरे बुदु हइको निर उडुओःअ" [76]

अर्थात्- सूखी लकड़ी के टुकड़े को मारने से छोटी मछली दौड़कर निकलती है- इसका मतलब- 'ढाँक' होता है।

"मियद होड़ोअः सयद ते मेड़ेद सेरोःवा" [77]

अर्थात्- एक व्यक्ति के साँस से लोहे गलते हैं। इसका मतलब है- चपुवा या भाँथी।

इसी प्रकार मुण्डारी कहावतों एवं लोकोक्तियों में भी सांस्कृतिक तथ्य मिलते हैं। इससे सम्बंधित एक कहावत है- "कजि रे मेनाः मुण्डा होन चि मद गोंअंड़ा" [78] अर्थात्- कहा जाता है, मुण्डा आदमी का बाँसों का बंधा हुआ गड्डा। इसके बाद एक लोकोक्ति देखी जा सकती है -"मयंग पेरेः तोल तारे चएला, लाइः पेरेः जोम तरे रसिका।" [79] अर्थात्- अच्छे वस्त्र पहनने और भरपेट खा लेने से सब खुश रहते हैं। इत्यादि।

अन्य तथ्य

धार्मिक तथ्य

प्रसिद्ध मानववेत्ता एडवर्ड टाईलर ने धर्म की परिभाषा इस प्रकार से दी है- "आलौकिकता के प्रति विश्वास ही धर्म है।" [80]

राबर्ट मैरेट ने टाईलर के विचारों का खण्डन करते हुए बताया कि आत्मा या प्रेतों में विश्वास किये बिना ही 'धार्मिक विश्वास उत्पन्न हो सकते हैं। उसने मिलेनेशिया में प्रचलित एक विश्वास, जिसे माना (Mana) कहा जाता है, का उदाहरण देते हुए बतलाया कि लोग अमूर्त्त शक्ति में विश्वास करते हैं। यह शक्ति बिजली-प्रवाह की तरह तुरन्त असर करती है। 'माना'

लाभप्रद और खतरनाक भी है। 'माना' दैवी शक्ति ही नहीं है वरन! निर्जीव वस्तुओं में भी पाया जाता है। मैरेट ने 'माना' को धर्म का प्रारम्भिक रूप बतलाया। मैरेट के सिद्धांत को पूर्व-जीववाद की संज्ञा दी गई है।[81]

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने धर्म की उत्पत्ति का कारण भाषा का दोष बताया है। वेदों से उदाहरण देते हुए उसने प्रकृतिवाद के विचार की पुष्टि की। प्रकृति के बीच रहनेवाला मानव अपने चारों ओर के (प्राकृतिक) वातावरण से प्रभावित होता है, साथ ही थोड़ा भयभीत भी। इसी कारण वह प्रकृति की शक्तियों में विश्वास करने लगता है। उसके भाषा-दोष के कारण समयानुकूल प्राकृतिक शक्तियाँ देवी-देवताओं का रूप धारण कर लेती हैं। प्राचीन भारत में अग्नि, जल, वायु की विधिवत् पूजा होती थी और आज भी। इन शक्तियों की पुष्टि में धर्मग्रन्थ, पुराण आदि तैयार किये गये। प्राचीन ग्रीस और रोम में भी प्राकृतिक शक्तियों को देवी-देवता के रूप में पूजा जाता था।[82]

जिस प्रकार "लोक समाज लोक धर्म से बंधा होता है, लोक धर्म में संस्कृति के सभी तत्त्व संचारित होते हैं। लोक धर्म की व्याख्या सरल नहीं है फिर भी अतींद्रिय, अदृश्य जगत् की दैवी आत्माओं के जो संकेतादेश हैं, वही लोक धर्म की सीमा में आते हैं। लोक धर्म का स्वरूप मौखिक होता है। सुविचरित, लिखित धर्मों की तरह लोक धर्म के आचार-व्यवहार सिखाये नहीं जाते, वे तो स्वाभाविक रूप से दैनन्दिन लोक व्यवहार में व्यवहृत होते हैं और उसके प्रभाव में आया मनुष्य उसे सीखता जाता है।"[83]

उसी तरह छोटानागपुर की मुण्डा जाति तथा अन्य जनजातियों का धर्म 'आदि धर्म' है। (कुछ समुदाय इसे 'सरना' धर्म भी कहते हैं।) यह धर्म पूजा-अनुष्ठान में आस्था रखता है। इनके धार्मिक विश्वास में ईश्वरवाद, 'जीववाद, बोंगावाद, प्रकृतिवाद, टोटेमवाद, निषेधवाद, पूर्वज पूजा, बहुदेववाद'[84] एवं आत्मावाद पूजा की छाप है। इनसे सम्बंधित कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :- "सिदा अबु तइन तन धरती रेअः अकार-प्रकार का तइकेना। सोबेने सःदःगे परेःयाकन आद गोटा नुबाःगे नुबः तइकेना। एना रे दःरेन जीवको बारिको तइकेना। एन सोमए रे भोगोमन आन लखिठाकुरइनकिङ जगर जना चि अलं दो दः चेतन बड़े सकम रे दुबा कन्ते नेसः हेनसःलङ अतुबड़ा तना आदउ अलङ जेतन रूडु बनोः। जेतएलोःओ जोम नू जगर जारु का होबा तना। ने दःरेन जीव कोलोःदो कलङ सोंगेयोः तना। एना मेन्ते अलंङ धरती

लङबइया आद मनोव होनकोलङ सिरजव कोवा। एना तयोमते भोगोमने उडुःकेदा चि सोबेन कोवाते सिदा सिंगिमरसल आर निदा नुबाः लंङ बइया। एनाते भोगोमन निदा आद सिंगिः बइकेदा। एनाते भोगोमन लखि ठकुराइन दः रेन जीव कोकिन रःकेद कोवा।''[85] अर्थात्- शुरू में यह धरती पानी में डूबी हुई थी। धरती पर जीव-जन्तु और पेड़-पौधों का कहीं नाम भी नहीं था। पूरी दूनिया में अंधकार ही अंधकार था। एक दिन पिता परमेश्वर और माता परमेश्वरी में वार्त्ता हुई कि हम दोनों बट या कमल फूल के पत्तों में इधर-उधर घूम रहे हैं। कभी भी विश्राम नहीं मिल रहा है। पानी के इन जीवों से हमारी शोभा नहीं है। हमारे साथ उठने-बैठने वाला कोई नहीं है। यह दशा ठीक नहीं है। इसलिए हम पानी के ऊपर धरती बनायेंगे और उसपर मनुष्य की रचना करेंगे। तब उन्होंने सबसे पहले दिन-रात की रचना की और धरती बनाने का काम प्रारम्भ किया। इस कार्य के लिए उन्होंने जल-जन्तुओं को बुलाया।

अतः धर्म की उत्पत्ति माता-पिता स्वरूप उस ईश्वर की स्मृति, पूजा या वंदना से है, जिन्होंने प्रकृति, मानव एवं जीवों की रचना की है। वे (ईश्वर) प्राकृतिक शक्तियों के स्वरूप में (प्रकृति में) समा गए हैं जिनके प्रभाव या कृपा से मानव सृष्टि का यह सिलसिला प्राकृतिक शक्तियों के प्रभाव तथा माता-पिता के रूप में निरन्तर गतिमान है।

मुण्डारी लोक साहित्य से ऐसा प्रमाणित होता है कि मुण्डाओं तथा अन्य आदिवासियों के पूर्वज या पुरखे अथवा लुटकुम बूढ़ा, लुटकुम बुढ़िया पर्वत पर निवास करते हैं। लुटकुम बुढ़िया पर्वत से उतर कर जल में वास करती है। कुछ नदी, नाले, गढ्ढे, दह, सरना या वृक्ष, जंगल या तराई में वास करते हैं। मनुष्य जीवन के अन्त में पुरखों के शरण में अर्थात्- पर्वत, जल, वृक्ष, नदी, नाले आदि में गिरकर मरने वाले को उसी देवी देवता का सम्मान दिया जाता रहा है। इससे सम्बंधित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :-

सिंङबोंगा राजा, देवी कुंवारी
रचाःगिड़ि जदको, हुदमागिड़ जदको
गड़ा रे, डोढ़ा रे, डोबा रे, इकिर रे
सरना रे, बुरु रे, बिर रे, कन्दर रे
उयुःजन गेयाको, बटिजन गेयाको।

बुरु रे उयुःजनिः बुरुबोंगा जना दो
इकिररे उयुः जीनः इकिर बोंगा जना दो
डोबा रे उयुः जनीः नगे एरा जना दो
सरना रे उयुःजनीः चाण्डीबोंगा जना दो [86]

अर्थात्- भगवान राजा, देवी कुमारी
उसे खींचकर फेंक रही हैं
नदी में, नाले में, गढे में, दह में
सरना (वृक्ष) में, पर्वत में, जंगल में, तराई में
वे गिर गईं, धंस गईं।

जो पहाड़ में गिरा वह बुरुबोंगा बना
पानी में गिरा, इकिर बोंगा बना
जो डोभा में गिरा जलदेवी (नगेएरा) बना
सरना में गिरा, वह चाण्डीबोंगा बना।

इसी भाँति मुण्डाओं का धार्मिक स्थल सरना के देवी-देवता इस प्रकार हैं :-

सिङबोंगा	(सूर्य देवता)- श्रेष्ठ देव, ईश्वर, भगवान
बुरुबोंगा	(पहाड़ी देवता)
इकिर बोंगा	(जलदेवी)
नगे एरा	(जलदेवी)
बिन्दी एरा	(जलदेवी)
देसाऊली	(वृक्ष देवता) या चण्डी बोंगा
मंड़ांबरु/गुमिबुरु	(पूर्वज देवता)

उपर्युक्त देवताओं की पूजा प्राकृतिक शक्तियों के रूप में प्रकृतिकरण के साथ 'सिङ' अर्थात् डॉ0 गिरिधारी राम गौंझू के अनुसार सिङ का अर्थ महान्, सबसे बड़ा, श्रेष्ठ भी होता है। श्रेष्ठ देव को सिङबोंगा कहा जाता है, सर्वशक्तिमान ईश्वर के लिए भी इसका व्यवहार होता है। इसी से मुण्डा लोग अपने नाम के साथ 'सिंङ' जोड़ते हैं। जैसे- जयपाल सिङ मुण्डा, रामदयाल

सिङ मुण्डा। इसी का अपभ्रंश कर लोग भ्रमवश दूसरे राजपूत नामों की तरह सिङ के स्थान पर सिंह (शेर) लिखने लगे हैं। वस्तुतः इन मुण्डाओं के नाम के साथ सिंह नहीं सिङ लिखा होना चाहिए। चूँकि मुण्डा ग्राम प्रधान या सरदार अथवा श्रेष्ठ व्यक्ति होता है। इसी से वृक्ष के नीचे पूजा की जाती है। इसलिए इन सम्पूर्ण देवता का एक नाम सिङबोंगा कहा जाता है। सिङबोंगा सूर्य स्वरूप सर्वश्रेष्ठ है। इन देवताओं को व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग देवता के नाम से भिन्न-भिन्न रंग के मुर्गे (सिम) की बलि दी जाती है। इस प्रकार इसे 'सिमबोंगा' भी कहते हैं। उसी भाँति प्रागैतिहासिक काल में 'बुरुबोंगा' या गोमिबुरु के नाम से सात वर्ष में बैल की बलि दी जाती थी। कहीं-कहीं रंकी गाय की। इकिर के नाम से भैंस या काड़ा की बलि दी जाती थी। इससे सम्बंधित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :--

"गामिबुरु (कड़ा सरना) भैंस पूजा सरना।" [87]

इसे केड़ाबोंगा भी कहते हैं।

फिर इन देवी-देवताओं की पूजा विभिन्न स्थानों पर विभिन्न पर्व-त्योहार, विभिन्न अवसरों पर की जाती रही है। जिससे इनका नाम अलग-अलग भी हो जाता है। परन्तु दान-दक्षिणा वहीं दी जाती है। उदाहरण के लिए - घर में इन सभी देवताओं की पूजा पूर्वजों अर्थात् 'हड़म-बुड़िया' के नाम से नवाखानी तथा सरहुल में 'भूरे रंग की कटली (सुकड़ा) मुर्गी' की बलि दी जाती है।

देवी गुड़ी में ग्राम देवता के रूप में सामुहिक रूप से पहान देवीबोंगा की पूजा करता है। साथ में गाँव के प्रत्येक परिवार का प्रधान भी पूजा करता है। इसी तरह पहान-पहनाइन सरहुल (पर्व), हरियाली या कोदलेटा (पर्व) में जयर की पूजा करते हैं। कोलोमसिं या खलियानी पूजा में पहान अपने खलियान में इन देवी-देवताओं की पूजा करता है। इससे सम्बंधित जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग में प्रस्तुत सरहुल पर्व के मंत्र की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

पहाड़ के पहाड़ी देवता
दह के जल देवता, नाग, नागिन और दूसर
हमर खेती के ओगरे वाला, हमर लक्ष्मी के देखे वाला
शिकार में सफल करे वाला, रोग के दूर करे वाला
पेट बाथा में, मुड़ बाथा में

हमके बचायवाला, हमके शांति देवे वाला
गाँव के ग्राम देवता, घर के गृह देवता
हमर बूढ़ा-पुरखामन, हमर पितृ-पूर्वजमन' [88]

मुण्डाओं के धर्म में निषेधवाद भी है। जैसे - मरंगहदा से पूरब सुकन पहाड़ का सुकन मेला। इस मौसम में इस मेले के पूर्व उरद फोड़कर दाल नहीं बनाते हैं। क्योंकि लोगों का ऐसा विश्वास है कि इसके पहले चक्की (जांता) में उरद फोड़ने से जैसी आवाज निकलती है, वैसे ही बुरुबोंगा बाघ के रूप में अवाज करता है। ऐसे ही गोड़ा धान एवं गोंदली का भोजन में प्रयोग उपर्युक्त देवताओं के नाम से चढ़ाने के बाद ही किया जाता है। जो नवाखानी पर्व में सम्पन्न किया जाता है। मुण्डा स्त्रियाँ हल नहीं चला सकती हैं। यह संस्कृति के विरुद्ध आचरण माना जाता है। इसका उल्लंघन करने पर समाज दण्ड देता है।

संदर्भ स्रोत :

1. डॉ. रामनन्दन कुमार, विश्व इतिहास, पटना, 1994, पृष्ठ - 01
2. डॉ. सुरेन्द्र गोपाल, विश्व इतिहास प्रवेशिका, पटना, 1979, पृष्ठ- 01
3. डॉ. रामनन्दन कुमार, विश्व इतिहास, पटना, 1994, पृष्ठ - 01
4. - वही
5. विश्वनाथ तिवारी, विश्व इतिहास प्रवेश, पटना, 1990, पृष्ठ- 02
6. - वही, पृष्ठ- 03
7. - वही, पृष्ठ- 05
8. - वही, पृष्ठ- 01
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी, कल्पना, लेख, इतिहास दर्शन और हिन्दी साहित्य का इतिहास, 1961, पृष्ठ - 119
10. डॉ. जगदीश शर्मा, साहित्य इतिहासकार रामचन्द्र शुक्ल और डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, दिल्ली, 1982, पृष्ठ - 11
11. डॉ. बी. पी. केशरी, झारखण्डी भाषाओं की समस्याएँ और सम्भावनाएँ, राँची, 1992, पृष्ठ - 33
12. डॉ. रामकिशोर सिंह, संस्कृत साहित्य का इतिहास, इलाहाबाद, पृष्ठ - 08
13. डॉ. रतीश श्रीवास्तव, समाजिक मानव विज्ञान, पटना, 1978, पृष्ठ - 73
13 क. गिरिराज के साक्षात्कार से
14. डॉ. रतीश श्रीवास्तव, समाजिक मानव विज्ञान, पटना, 1978, पृष्ठ - 73
15. डॉ. उमेश कुमार वर्मा, लेख-राँची जिला के कुछ ऐतिहासिक धार्मिक स्थल, आदिवासी, राँची, 1998, पृष्ठ - 30
16. निकोदिम केरकेटा, कुदुम, राँची, 1995, पृष्ठ - 62
17. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 211
18. डॉ. रामदयाल मुण्डा, भूरिया कमिटि रिपोर्ट, दिल्ली, 1995, पृष्ठ - 3
19. पण्डित कुबेरनाथ सुकुल, वाराणसी वैभव, पटना, 1977, पृष्ठ - 48
20. डॉ. रामवचन सिंह, वाराणसी, वाराणसी, 1973, पृष्ठ - 08
21. पण्डित कुबेरनाथ सुकुल, वाराणसी वैभव, पटना, 1977, पृष्ठ - 10
22. डॉ. रामवचन सिंह, वाराणसी, वाराणसी, 1973, पृष्ठ - 15
23. मोतीचंद, काशी का इतिहास, बम्बई, 1962, पृष्ठ - 1, 2
23 क. गिरिराज के साक्षात्कार से
24. डॉ. रामवचन सिंह, वाराणसी, वाराणसी, 1973, पृष्ठ - 30
25. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 211
26. - वही
27. - वही
- बीच में छोटी मुँह वाली टोकरी के समान
28. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 211

29. - वही, पृष्ठ - 235
30. राँची विश्वविद्यालय, सारजोम बा, राँची, 1976, पृष्ठ - 04
- करेया/तोलोंग/धोती
- पूजा आदि के अवसर पर वृक्ष या वृक्ष की डाली पर लटकाये/बंधे सूत
- पूजा आदि के समय में वृक्ष की डालियों या अन्य में बंधी रस्सी
- एक प्रकार का पौधा जिसके फूल छोटे-छोटे लाल और सुन्दर होते हैं.
31. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 211
32. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 125
33. - वही, पृष्ठ - 97
34. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 241
35. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 125
36. - वही, पृष्ठ - 132
37. - वही, पृष्ठ - 130
38. - वही
39. - वही, पृष्ठ - 442
40. राँची विश्वविद्यालय, सारजोम बा, राँची, 1976, पृष्ठ - 03
41. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 366
42. - वही, पृष्ठ - 357
43. - वही, पृष्ठ - 211
44. - वही
45. - वही, पृष्ठ - 212
46. - वही, पृष्ठ - 211
47. - वही, पृष्ठ - 132
48. गोस्वामी तुलसीदासः रामचरितमानस, टीकाकार ज्वाला प्रसाद, बम्बई, पृष्ठ - 657
49. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 75
50. - वही, पृष्ठ - 366
51. - वही, पृष्ठ - 46, 47
52. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 69
53. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 121
54. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 18
55. सिकरादास तिर्की, बा चण्डुःआन तोअउ, पटना, 1987, पृष्ठ - 06
56. संतोष कुमारी जैन, कुरमाली लोकगीत, पटना, 1997, पृष्ठ - 148
57. वसंत निरगुणे, लोक-संस्कृति, मध्य प्रदेश, 1996, पृष्ठ - 07
58. - वही, पृष्ठ - 25
59. - वही, पृष्ठ - 21
60. त्रिलोकी नारायण दीक्षित, संत काव्य में लोक संस्कृति, समाज त्रैमासिक, अक्टूबर 1958, पृष्ठ - 450
61. वसंत निरगुणे, लोक-संस्कृति, मध्य प्रदेश, 1996, पृष्ठ - 12

62. डॉ. आदित्य प्रसाद सिन्हा, हो लोक कथा, वाराणसी, 1972, पृष्ठ - 112
63. प्रो. ललिता प्रसाद विद्यार्थी, भारतीय संस्कृतिः मेरी दृष्टि में, आ. अंक-1978, पृष्ठ - 5
64. श्री टायलर, प्रिमिटिव कल्चर, 1971, पृष्ठ - 01
65. डॉ. दिनेश्वर प्रसाद, लोक साहित्य और संस्कृति, 1972, पृष्ठ - 92
66. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक-साहित्य की भूमिका, इलाहाबाद, 1956, पृष्ठ - 230
67. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 53
68. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 170
69. - वही, पृष्ठ - 103
70. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 53
71. डॉ. रामदयाल मुण्डा, मुण्डारी पाठ, राँची, 1980, पृष्ठ - 136
72. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 156
73. भइयाराम मुण्डा, दंड़ां जमाकन कानिको, पटना, 1960, पृष्ठ - 306
74. - वही, पृष्ठ - 202
75. दुलायचन्द्र मुण्डा/दिलबर हंस, होड़ो जगर इतुपुथी, राँची, 1974, पृष्ठ - 27
76. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 439
77. - वही, पृष्ठ - 438
78. पी. पॉनेट, हड़मकोअः कजिको, राँची, पृष्ठ - 06
79. - वही, पृष्ठ - 124
80. डॉ. रतीश श्रीवास्तव, समाजिक मानव विज्ञान, पटना, 1978, पृष्ठ - 81
81. - वही, पृष्ठ - 84
82. - वही
83. वसंत निरगुणे, लोक-संस्कृति, मध्य प्रदेश, 1996, पृष्ठ - 73
84. डॉ. रतीश श्रीवास्तव, समाजिक मानव विज्ञान, पटना, 1978, पृष्ठ - 87
85. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 09
86. - वही, पृष्ठ - 69
87. जोसेफ कण्डुलना, छोटानागपुर के आदिवासी और उनके गोत्र, राँची, 1994, पृष्ठ - 18
88. डॉ. रामदयाल मुण्डा, सरहुल मंत्र, राँची, 1987, पृष्ठ - 02

मुण्डारी लोक साहित्य में प्राचीन ऐतिहासिक तथ्य

प्राचीन इतिहास का तात्पर्य

"विद्वान ऐसा मानते है कि 1400 ई0 पूर्व से 600 ई0 पूर्व तक भारत में उत्तर वैदिक काल था। 1000 ईसा पूर्व के समय उत्तर वैदिक युग का मध्य काल था। इस काल को महाकाव्य काल भी कह सकते हैं। इसके बाद आया बौद्ध काल, फिर मौर्य काल, शक-शातवाहन काल, गुप्त काल और उत्तर गुप्त काल।" [1]

प्राचीन इतिहास एक बीती बातों की कहानी है। ऐसे तो प्राचीन काल में बीती बातों को या मुर्दों की बातों को दुहराना अच्छा नहीं समझा जाता था। अतः इतिहास का काल वर्गीकरण वास्तविक नहीं है। फिर भी अध ययन की सुविधा के लिए इसे तीन भागों में बाँटा गया है- 1. प्राचीन काल, 2. मध्य काल और 3. आधुनिक काल। ईसा पूर्व छठी शताब्दी और सातवीं शताब्दी तक की अवधि को प्राचीन इतिहास का काल माना जाता है। इसलिए भारत का प्राचीन इतिहास का तात्पर्य आधुनिक काल और मध्य

काल से पूर्व की अवधि से है।

जैसा कि भारत का प्राचीन इतिहास महाकाव्य काल से प्रारम्भ होता है। "महाकाव्य काल का हमें क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता। इसे प्रागैतिहासिक काल कहा जाता है। हाँ, कुछ साहित्यिक ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि उस समय तक राजतंत्र की जड़ काफी गहराई तक चली गई थी और राजा की शक्ति बहुत मजबूत हो गई थी।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी और सातवीं में भारत में कोई सर्वोच्च सत्ता नहीं थी। सोलह बड़े-बड़े राज्य थे। इनके अतिरिक्त कई छोटे-छोटे राज्य थे, जिनके बारे में हमें बहुत कम जानकारी उपलब्ध है।

आर्य लोग जनों या कबीलों के आधार पर संगठित थे। धीरे-धीरे वे कुछ निश्चित स्थानों पर बस गये। जिस क्षेत्रों में जन बस गए थे वे जनपद कहलाने लगे। जिस जनपदों ने अपनी सीमा का विस्तार कर लिया, वे महाजन पद कहलाये लगे।

इस समय सोलह जनपद थे। ये थे- काशी, कोशल, मगध, अंग, बज्जि, मल्ल, चेदि, कुरू, वत्स, पांचाल, शूरसेन, मत्स्य, अश्मक, अवन्ति, गांधार और कम्बोज।

इन जनपदों में राजतंत्रीय शासन व्यवस्था थी। इस काल में कुछ गणतंत्र भी थे; जहाँ गणतंत्रीय शासन व्यवस्था थी। ऐसे जनपद थे- कुरू, पांचाल, विदेह, मल्ल।

गणराज्य का प्रधान एक व्यक्ति होता था। इस प्रधान को राजा कहा जाता था। उसे दस वर्षों के लिए निर्वाचित किया जाता था। राज्य की कार्यपालिका शक्ति उसी के हाथों में रहती थी। गणराज्य एक निर्वाचित संस्था होती थी।" [2]

मुण्डाओं के प्राचीन इतिहास के साथ भी यही बात है कि मुर्दों की बीती बातों की कहानी को दुहराना अच्छा नहीं समझा जाता था। कितने ऐतिहासिक एवं चरित्रवान् वीर पुरुष इस जाति में जन्म लिए किन्तु उनकी मृत्यु के साथ ही वे मिट गये। मात्र मुण्डाओं के बीच पुरखों की मौखिक परम्परा चलती है। इसका कोई लिखित इतिहास नहीं है।

मुण्डाओं का प्राचीन इतिहास प्रागैतिहासिक काल की समाप्ति से लेकर मदरा मुण्डा के शासन काल अर्थात् "छोटानागपुर में नागवंशियों का

प्रवेश 64 ईस्वी" [3] तक माना जा सकता है। क्योंकि यहीं से "स्पष्ट है कि फणिमुकुट राय 19 वर्ष की अवस्था में राज्यासीन हुए थे। यह सर्वथा स्वाभाविक और विश्वसनीय है।" [4] अर्थात् एक युग का आरम्भ यहीं से होता है। केशरी जी के अनुसार- "प्राचीन काल : 4000 ईसा पूर्व से लगभग 100 ईसा पूर्व तक माना जा सकता है।"

इसी आधार पर हम आगे छोटानागपुर की मुण्डा जाति के प्राचीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं अन्य तथ्यों का अध्ययन करेंगे।

राजनैतिक तथ्य

मुण्डाओं का राजनैतिक स्वरूप उनकी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक संस्कृति पर आधारित था। अतः मुण्डा जाति की राजनीतिक प्रणाली शक्तिशाली संगठन के रूप में स्थापित थी। जो एक गोत्र के रूप में संगठित थे। इनकी राजनीतिक शक्ति को तीन रूपों में देखा जा सकता है- ग्राम या जाति पंचायत, पड़हा पंचायत और पड़हा मण्डल। मदराकान्त देव सिंङ मुण्डा ने शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए निम्न प्रकार की व्यवस्था की थी :-

1. खण्ड का गठन - राज्य का चार खण्डों में विभाजन,
2. परगना का गठन - खण्डों का परगना में विभाजन,
3. पड़हा पंचायत का गठन - परगना का पड़हा पंचायत में विभाजन,
4. गाँव पंचायत का गठन - पड़हा का गाँवों में विभाजन,
5. खूंट का गठन - गाँव पंचायत का खूंट में विभाजन। (यह प्रशासन की निम्न इकाई थी) [6]

ग्राम पंचायत

प्रत्येक गाँव में एक ग्राम-सभा एवं उसका ग्राम परिषद् होता था। जिसका प्रधान 'मुण्डा' होता था। प्राचीन काल में मुण्डा का चुनाव पाँच या सात वर्ष के लिए होता था। मुण्डा को मुण्डाई खेत मिलता था। पहान को

दिए जानेवाले खेत को 'डाली कतारी' खेत या पूजा खेत या पहनइत खेत कहते है। अतः मुण्डाई खेत और पहनइत खेत, जो व्यक्ति मुण्डा या पहान पद पर आसीन होता था, उसे स्वतः ही मिल जाती थी। पद से हटते ही स्वतः उस खेत पर से उसका स्वामित्व भी समाप्त हो जाता था।

ग्राम-पंचायत मुण्डाओं का प्राथामिक एवं सबसे छोटी राजनीतिक शक्ति का अंग होता था, जो अब भी है। परन्तु ग्राम-पंचायत का यह स्थान ही मुण्डाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान भी होता है। सर्वप्रथम तो ग्राम-पंचायत के द्वारा कृषि कार्य का संचालन तथा भू-कार्य निश्पादन होता था। जैसे- हरियाली पूजा, कदलेटा या कोदेलेटे पर्व कर लेने के बाद ही एक गाँव में कृषि का काम सुचारु रूप से प्रारम्भ किया जाता रहा है। इसके पूर्व सामाजिक बन्धन या धार्मिक बन्धन रहता है इस पूजा के लिए ग्राम-पंचायत में, 'मुण्डा' ही दिन अथवा तिथि तय करता था। इसी प्रकार मुण्डाओं के पर्व-त्योंहारों का माह निश्चित रहता था परन्तु दिन-तारिख निश्चित नहीं रहता था। लेकिन सभी को आम तौर पर इसका पता रहता था। फिर भी ग्राम-पंचायत में पर्व को मनाने का अन्तिम फैसला 'मुण्डा' ही करता था। इसके अतिरिक्त गाँव में पारिवारिक मामलों, जमीन-जायदाद आदि मामलों का निपटारा भी मुण्डा ही करता था। मुण्डा अपने परिवार के प्रति अपने विशेष उत्तरदायित्व को सम्भालते हुए गाँव के समस्त लोगों के हित में तत्पर रहता था। इससे संबन्धित एक जदुर लोक गीत देखा जा सकता है :-

हतुअम बइतरे मुण्डा	अर्थात्- हे मुण्डा, गाँव को बनाकर रखोगे
अमःइति मंडिया मुण्डा	(तो) हे मुण्डा, तुम्हारे लिए हंड़िया-भात है
गमाएअम बड़ुःतरे रजा	हे राजा, क्षेत्र को बनाकर रखोगे
अमः टका सिकाया रजा	हे राजा, ये रुपये-पैसे तुम्हारे हैं
कुंडु कुंडुजा मुण्डा	हे मुण्डा (घर) के कोने-कोने में
बसितन गेयाया मुण्डा	हे मुण्डा बासी हो रहा है
मचि मचिया रजा	हे मुण्डा (वस्त्र) के आँचल में

गदेद तन गे काई या दाग लग रहा है
अमः इलि मंडि दो मुण्डा हे मुण्डा, तुम्हारे लिए हंड़िया-भात
बसितन तइना मुण्डा हे मुण्डा बासी हो रहा है
अमः टका सिका दो रजा हे राजा, तुम्हारे रूपये-पैसे
गदेद तन तइना रजा[7] हे राजा, काँई हो रहा है

इस प्रकार पंचायत मुण्डाओं का एक सजग राजनैतिक इकाई रही है। गाँव का प्रत्येक व्यक्ति तीन दृष्टिकोण से विशेष रूप से जुड़ा होता है। "प्रथमतः वह अपने परिवार का सदस्य होता है जिसके प्रति उसका अपना उत्तरदायित्व होता है। द्वितीयतः वह जिस गोत्र का होता है, उसके प्रति भी उसके कुछ अधिकार एवं कर्त्तव्य होते हैं। तृतीय, वह जिस ग्राम का निवासी होता है, उस गाँव के प्रति भी उसकी अपनी जवाबदेही होती है। उसके गोत्र का स्थानीय प्रधान व्यक्ति ही ग्राम का मुण्डा होता है, जो उस ग्राम का प्रधान होता है।"[8]

गोत्र के मामले में मुण्डा जाति के नियम बड़े कठोर हैं और अपने गोत्र के प्रति पूरी निष्ठा एवं नियमों का पालन करने के प्रति वे काफी जागरूक हैं। मुण्डा लोग गोत्र के नियम और कल्याण के विरुद्ध कोई काम नहीं करते हैं। गोत्र के नियम एवं मर्यादा को तोड़ने, जैसे- सगोत्र प्रेम विवाह करने वाले युवक-युवती को गोत्र के मुखिया के आदेशानुसार गाँववाले उसके सिर का बाल कटवाकर कालिख तथा चूना आदि का टीका लगाकर गाजे-बाजे के साथ सदा के लिए गाँव बाहर कर देते हैं। इस सगोत्र विवाह को 'गोतोरबोद' कहते हैं। प्राचीन काल में ऐसे युवक-युवती के नाम से उस गाँव की सीमान पर दो पत्थर गाड़े जाते थे। आधुनिक काल में पत्थर में लड़के-लड़की का पूरा पता तथा कारण लिखकर पत्थर गाड़ा जाता है।

पड़हा पंचायत

पड़हा पंचायत एक गोत्र की सबसे बड़ी संगठित शक्ति होती है। पड़हा पंचायत का प्रधान मानकी या पड़हा राजा होता था। इसका भी सात वर्ष के लिए चुनाव किया जाता था। इससे संबन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :-

"फणिमुकुट रायोयः खेरदरी सेंड़ां ओड़ो ओलो चाहल-चोलोन को लेल केद् चि मुण्डा परहा मानकी की सला किःया। एन तयोमते फणिमुकुट राय मरङ्ग मानकी को मेतःऐया।"[9] अर्थात्- फणिमुकुट राय के होनहार ज्ञान और चरित्र को देखकर मुण्डा पड़हा का मानकी चुना गया। इसके बाद से फणिमुकुट राय को मानकी की उपाधि मिली। इस पद के व्यक्ति के लिए जो जमीन दी जाती थी, वह 'राजहंस' कहा जाता था।

पड़हा राजा या मानकी का सहायक 'मुण्डा' होता था। जैसा कि ऊपर लिखा गया है, इस काल में गाँव का, परिवार का तथा जमीन-जगह का मामला गाँव में मुण्डा ही निष्पादित करने में सर्वेसर्वा होता था। पड़हा-पंचायत से सांस्कृतिक एवं जाति गोत्र में पाये जाने वाले मामलों का न्याय दिया जाता रहा है। इससे संबन्धित पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

"हतु रेअः मुकुदिमा कोदो हतु दुनुब रे
हतु मुण्डा कोगे बिचारेअ हतु दुनुब रे
जति किकि रेअः कजि पड़हा पंचइटि रे
पड़हा राजा को जगरेया पड़हा पंचइटि रे[10]

अर्थात्- गाँव का मुकदमा गाँव में
मुण्डा लोग गाँव सभा में करते हैं
जाति गोत्र की बातों को पड़हा पंचायत में
पड़हा राजाओं द्वारा पड़हा पंचायत में ही होता है।

प्राचीन काल में भी मुण्डाओं के एक गोत्र में एक 'करठा' अर्थात् संस्कार का भार उठाने वाला होता था। कोई लड़का-लड़की जब दूसरी जाति से प्रेम विवाह कर लेते हैं तब उनके माता-पिता का भी मुण्डा समाज में सामाजिक बष्हिकार कर दिया जाता था। जब तक कि उसके नाम से अपने पड़हा के 'करठा' द्वारा जात भीतर या शुद्धिकरण का पूजा-पाठ वह नहीं करवाता है। इससे संबन्धित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

एटाः जति रे कुड़िहोन सेनोः जन रे
एंगा अपुकिं सजाइओः तना रे
होका जदाको दङ दुब तिंगुन रे
एंगा अपुको गुना का मनातिं जद रे 11

अर्थात्- लड़की जब दूसरी जाति में चली जाती है
तब उसके माता-पिता को दंडित किया जाता है
उसके साथ उठना-बैठना बंद हो जाता है
यदि माता-पिता गलती स्वीकार नहीं करते हैं तो

पड़हा मण्डल या परगना

एक पड़हा मण्डल या परगना अनेकों गोत्र के पड़हा समूह से बनता है। जैसे- सोनपुर पड़हा मण्डल या परगना में टुटी गोत्र का पड़हा, साँगा गोत्र का पड़हा, नाग, हस्सा आदि का पड़हा है। पड़हा मण्डल का प्रधान व्यक्ति 'महाराजा' होता था। इसका भी चयन होता था। जैसे- महाराजा पद के लिए पहलें यहाँ के लोग राजपूतों को आमंत्रित करते थे। जो चुनाव का ही एक रूप है।

इस प्रकार छोटानागपुर में मुण्डा पड़हा की कई पड़हा मण्डली मिलती है तथा कई महाराजाओं की चर्चा मिलती है। जैसे बाईस पड़हा का महाराजा, सात पड़हा का महाराजा आदि। इस प्रसंग से संबन्धित पंक्तियों का अवलोकन किया जा सकता है- सुतिया मुण्डा सब गढ़ों (पड़हा) का मालिक अथवा महाराजा थे। उन्होंने 21 परगना अथवा पड़हा की देख-रेख के लिए 21 पड़हा राजाओं को चुना था। [12]

महा मड़हा मण्डल

यह 'महा पड़हा मण्डल' संसार 'महा जनपद' के सदृश विस्तृत था जिसका प्रधान सिङबोंगा राजा, परमेश्वर या धर्म होता था। जैसे- "शोक सभा में 12 पड़हा, सात पड़हा और 21 पड़हा के ग्रामीणों ने भाग लिया।"[13]

अतः कई पड़हा मण्डलों का संगम 'महा पड़हा मण्डल', मुण्डाओं का या अन्य आदिवासियों का एक सबसे बड़ा राज्य (State) राजनीतिक संगठन था। लोक साहित्य के माध्यम से भी प्रमाणित होता है कि छोटानागपुर में कई पड़हा पंचायत भी रहे थे। उसी प्रकार कई 'दिसुम' अर्थात् देशी थे। इससे सम्बन्धित एक लोक गीत की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

चेतन दिसुम दिसुम तेदो	अर्थात्- ऊपर देश वाले
रुतु तेको सुसुन तना -2	बाँसुरी से नृत्य करते हैं

लतर दिसुम तेदो नीचे देश वाले

बनाम तेको करम तना- 2[14] केन्दरा(बनम) से नृत्य करते हैं

ऊपर या नगुरी देश की राजधानी मुड़मा मेला टाँड़ था। इससे सम्बन्धित पंक्तियों का अवलोकन किया जा सकता है- "मुण्डा कोअः सिदा उत्तर इंदि चि मंड़मि जतरा चि बुरु राँचि आते सिंगि हसुर सः एना लुतुम हतु मरं पिड़ि रे होबःओ तन तइकेनाः मुण्डा कोअः मरं पाड़ां गोमक बोंगा जद तइ केना आदि गेदेला होड़ोको रसिकन तन तइकेनाः अयः गतिकुड़ी होनकोलोः सुंड्न्दा रेन एन कुड़िहोनओ एना बुरू लेल अर सुसुन रसिकन नतेनेःसेन सोंजोको केना।" [15] अर्थात्- मुण्डाओं का पहला और सबसे बड़ा इन्द या जतरा मुड़मा जतरा (मेला) राँची से पश्चिम की ओर उस मुड़मा नाम के गाँव बहुत बड़े मैदान में होता था। मुण्डाओं का 'मरं पांड़ां गोमके' अर्थात्- सिङबोंगा राजा यहाँ पूजा करते थे एवं कितने लोग आनन्द लेते थे। सुड़न्दा गाँव की एक लड़की अपनी सहेलियों के साथ उस मेले में आई थी और नृत्य की पंक्ति में जुड़कर आनन्द लिया था।

असुरों द्वारा फैलाए भट्ठों के प्रदूषण से, मानव-जाति में होनेवाली पीड़ा से जब मनुष्यों ने अपने सिङबोंगा राजा को अवगत कराया था तब सिंङबोंगा राजा की पत्नी के आदेश पर सहयोगी पड़हा के राजाओं को दूत बनाकर असुरों को समझाने के लिए भेजा गया था। सबसे पहले केरकेट्टा गोत्र के पड़हा राज 'केरकेट्टा' और ढेचुवा पड़हा राजा 'ढेंचुवा', इन दोनों को उनके पास एक साथ भेजा गया था। इनके द्वारा सुनाया गया संदेश जब असुरों ने नहीं माना तब ऐसा ही बोचो (पक्षी), लङ (पक्षी), सोना गीध, रूपा कौवा पड़हा के, पड़हा राजाओं को बारी-बारी से भेजा गया। परन्तु असुरों ने किसी की बात नहीं मानी। अन्त में सिङबोंगा राजा अपने बड़े भाई को लेकर बुण्डु-तमाड़ में या लतर दिसुम में अवस्थित एकासी मैदान-तिरासी टाँड़ पर गये। इन्होंने वहाँ असुरों को नष्ट करने के लिए अग्नि की वर्षा की थी। जिससे स्वयं पर भी आफत आ गई। तब दोनों इधर-उधर भागते-दौड़ते हुए उसी गाँव की ओर गये और उन्होंने वहीं अपने प्राणों की सुधि ली। इससे सम्बन्धित गीतों की पक्तियों का अवलोकन यहाँ अपेक्षित होगा :-

निरकेद गेयाकिं, हुजुलकेद गेयाकिं
सिङबोंगा राजा हतु तला रे

निराजोलो बमाणे तुडुसि पिड़िंगिरे
सुरून जना दो, जपागेन जना दो
मरंग जा हगाते हतु अतोम रे
बड़ाय कोवः पयिरि रेः सुरुन जनादो [16]

अर्थात्- वे दोनों दौड़े, वे दोनों भागे
भगवान राजा गाँव में जाकर
स्वच्छ जल ब्राह्मण के तुलसी चौरा में
वे बचे, वे छिपे
बड़े भाई गाँव के किनारे
लोहराओं के चहरदिवारी से बचे

इस तरह 'लतर दिसुम' अर्थात् पूरब की ओर बुण्डु-तमाड़ में असुरों का गढ़ था जिसका विस्तार खूँटी तक था। मुण्डारी लोक साहित्य में प्राचीन राजनैतिक तथ्य लोकगीतों, गाथाओं, कथाओं तथा बुझौवलों के बाद मंत्रों में भी प्राप्त होते हैं। एक मंत्र की पंक्तियाँ प्रस्तुत करना यथेष्ठ होगा :-

''सिरमा रेन सिङबोंगा दइबि रजा
तोव लेमक तुरतना, दहि लेकम हसुर तना
ने मनोवा होन ने मनोवा गांड़ां दुकु ओम मेनते
ओकोनिः होपोराकन, ओकोनिः नड़ेःयाकन
इनिः अमः पोरतब ते ने चाउलि जंङ खुदि जङ रे
हिजुः नम दांड़े नमोः कएः।'' [17]

अर्थात्- हे आसमान के परमेश्वर! हे दैवी राजा
दूध जैसा उगने वाले, दही जैसा डूबने वाले
इस मानव जाति में, इस मानव समुदाय में दुःख पहुंचाने में
कौन समक्ष है, कौन सामने आया है?
वो आपकी कृपा से इस चावल में, टूटे हुए चावल में
साफ दिखाई दे, साफ पता चले।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि मुण्डाओं का प्राचीन राजनैतिक संगठन उर्वर था और मुण्डाओं ने अपना राज्य स्वयं चलाया था।

इसका सर्वोच्च अधिकारी पड़हा राजा होता था। इसका एक संयुक्त सर्वोच्च अधिकारी महा पड़हा मण्डल 'महाजनपद' के सदृश्य था। इससे आधारित ये लोग गढ़ बनाकर रहते था। अतः इनहों ने तेईस गढ़ों का निर्माण किया, जो इस प्रकार हैं :-

1. कलेंजर गढ़	*9. लकनीर गढ़*	*17. लोहार गढ़*
2. चितौरगढ़	*10. नँदनगढ़*	*18. पालुम गढ़*
3. धरवाडगढ़	*11. राजगृह गढ़*	*19. खरवाड़ गढ़*
4. नगरवार गढ़	*12. रूईदास गढ़*	*20.लचरा गढ़*
5. पीपरगढ़	*13. खानदेश गढ़*	*21. हाजरी गढ़*
6. पालीगढ़	*14. आजम गढ़*	*22. उदयपुर गढ़*
7. बिनगा पहाड़ गढ़	*15. विनजा गढ़*	*23. रैपुरा गढ़*
8. हल्दीनगर गढ़	*16. सुरजुस* [17 क.]	

इनके अलावा उन्होंने और भी छोटे-छोटे गढ़ों को बनाया परन्तु ये ही मुख्य गढ़ थे और इनके साथ ही बाईस सरदार चुने गए; जो कि राजा कहलाये। फिर इन राजाओं ने अपने ऊपर एक मुखिया राजा सुतिया मुण्डा को चुन लिया जो कि महाराजा कहलाया और अधीन सभी राजा अपना राजकाज चलाने लगे। इन राजाओं के नाम था उनके अधीनस्थ गढ़ इस प्रकार थे :-

1. बिरसा मुण्डा	*- कलेंजरगढ़*
2. चम्पा मुण्डा	*- चितौर गढ़*
3. करमा मुण्डा	*- नगरवार गढ़*
4. डुका मुण्डा	*- धरवाड़ गढ़*
5. गारगा मुण्डा	*- पाली गढ़*
6. सोमरा मुण्डा	*- पीपर गढ़*
7. नगु मुण्डा	*- नंदन गढ़*
8. लेन्दा मुण्डा	*- बिनगा पहाड़ गढ़*
9. उदय मुण्डा	*- लकनीर गढ़*
10. गंगु मुण्डा	*- नंदन गढ़*
11. मँगता मुण्डा	*- राजगृह गढ़*
12. रैइया मुण्डा	*- रूईदास गढ़*

13 लखे मुण्डा - खानदेशगढ़
14. साम मुण्डा - आजम गढ़
15. पोटा मुण्डा - विनगा गढ़
16. बेलो मुण्डा - लोहारगढ़
17. सानिका मुण्डा - सुरजुस गढ़
18. दुखु मुण्डा - पालुम गढ़
19. लम्बा मुण्डा - खरवाड़ गढ़
20. जितराम मुण्डा - लचरा गढ़
21. सालु मुण्डा - हजारी गढ़
22. उदयपुर गढ़ - (इन दोनों गढ़ों को महाराज
23. रपुरागढ़ - सुतिया ने अपने पास रख लिया था) [1]

महाराज बनने के बाद सुतिया मुण्डा ने अपने राज्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए उसे सात खण्डों में बाँटा और प्रत्येक खण्ड में तीन-तीन गढ़ रखा। इसी तरह सात मुख्य सरदारों अर्थात् राजाओं को चुना गया जिनके अधीन तीन-तीन गढ़ तथा दो-दो सरदार होते थे। उन सरदारों के नाम तथा गढ़ इस प्रकार थे :-

1. बिरसा मुण्डा तथा उसके अधीन-
   (क) कलेंजर गढ़ (ख) चितौरगढ़ (ग) नगरवार गढ़
2. डुका मुण्डा तथा उसके अधीन -
   (क) धरवाड़गढ़ (ख) पाली गढ़ (ग) पीपरगढ़
3. नगु मुण्डा तथा उसके अधीन -
   (क) बिनगा पहाड़ गढ़ (ख) हल्दीनगर गढ़ (ग) लकनीर गढ़
4. गंगु मुण्डा तथा उसके अधीन -
   (क) नँदन गढ़ (ख) राजगृह गढ़ (ग) रूईदास गढ़
5. लखो मुण्डा तथा उसके अधीन -
   (क) खानदेश गढ़ (ख) आजमगढ़ (ग) विनजा गढ़
6. बेलो मुण्डा तथा उसके अधीन -
   (क) सुरजुस गढ़ (ख) लोहारगढ़ (ग) पालुमगढ़
7. लेम्बो मुण्डा तथा उसके अधीन -

(क) खरवाड़ गढ़ (ख) लचरा गढ़ (ग) हजारीगढ़

महाराजा सुतिया मुण्डा के अधीन- (क) उदयपुर गढ़ और (ख) रैपुरागढ़ था, परन्तु वह उदयपुरगढ़ में रहता था। मण्डा राजाओं की हादरी (गोत्र) बैठकी रैपुरागढ़ में और कभी-कभी हजारी गढ़ में होती थी, परन्तु सलाना हादरी बैठकी रैपुरागढ़ में ही होती थी।'' [18]

उस समय तक मुण्डा लोगों का कोई गोत्र-विभाजन नहीं था अर्थात् गोत्रों के महत्त्व में गिरावट आ गयी थी और सभी आपस में ही निर्विध्न शादी-विवाह करते थे। सुतिया मुण्डा ने सोचा कि यह ठीक नहीं है और उसने निर्णय किया कि सभी सरदार (राजा) अपने लिए एक-एक गोत्र फिर से चुन लेंगे और उसी के अनुसार सभी एक-दूसरे के गोत्र के साथ ही शादी-विवाह करेंगे।

''जब पुनः हादरी बैठकी हुई तो सुतिया मुण्डा ने सभी राजाओं के आगे यह प्रस्ताव रखा जिस पर सभी सहमत हो गए। इस पर उसने इक्कीस भिन्न-भिन्न जन्तुओं की आकृति को अलग-अलग पोटलियों में बाँधकर सिंह द्वार के भीतर टँगवा दिया और सभी राजाओं से कहा कि सभी अपने लिए एक-एक पोटली चुन लें। चुनने के बाद सभी ने खोलकर यों देखा--

1. सुतिया मुण्डा को - हंस गोत्र
2. डुका मुण्डा को - होरा गोत्र
3. कुरा मुण्डा को - केरकेट्टा गोत्र
4. बेलो मुण्डा को - कौवा गोत्र
5. लखो मुण्डा को - धान गोत्र
6. गंगु मुण्डा को - ढेचुवा गोत्र
7. लेम्बो मुण्डा को - डुंगडुंग गोत्र
8. जितराय मुण्डा को - जोजोवर गोत्र
9. बिरसा मुण्डा को - बारु गोत्र
10. चम्पा मुण्डा को - सँगा गोत्र
11. करमा मुण्डा को - तिडू गोत्र
12. गोरगा मुण्डा को - लुगुन गोत्र
13. सोमरा मुण्डा को - बुटु गोत्र
14. लेदा मुण्डा को - हेरेंज गोत्र

15. उदय मुण्डा को - नाग गोत्र
16. मंगता मुण्डा को - ओड़े कण्डीर गोत्र
17. रैईया मुण्डा को - टुटी गोत्र
18. समु मुण्डा को - बाघ सुरिन गोत्र
19. पोटा मुण्डा को - हेम्ब्रोम गोत्र
20. सनिका मुण्डा को - डहंगा गोत्र
21. दुखु मुण्डा को - हऊ (तोपनो) गोत्र
22. परन्तु सलु मुण्डा को - टुण्डू अर्थात् आखिरी में गया जबकि वहाँ कुछ बचा नहीं था। अतः उसको मुण्डु गोत्र मिला, जिसका अर्थ है-सब खत्म।" [19]

इस प्रकार "प्रचीन काल में सुतिआम्बे गढ मुण्डाओं का प्रशासनिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु था। छोटानागपुर में मुण्डा पूर्वजों में राजा आरम देव सिंह मुण्डा पहले मुण्डा माने जाते हैं। इनके पुत्र बचुदेव सिंह हुए जिनके पुत्र का नाम जंगदेव सिंह था। जंगदेव सिंह के पुत्र का नाम जंगफतेह देव सिंह था। जंगफतेह देव सिंह के चार पुत्र हुए- 1. मदरा कांत देव सिंह मुण्डा, 2. मानकी कांत देव सिंह मुण्डा, 3. उपनाकांत देव सिंह मुण्डा तथा 4. सोनाकांत देव सिंह मुण्डा।

मदरा कांत देव सिंह मुण्डा को अपने वृद्ध पिता से शासन भार मिलने के पश्चात् चारों भाइयों ने मिलकर पूरे छोटानागपुर का चार खण्डों में बँटवारा किया- 1. उत्तरी खण्ड- मदरा कांत देव सिंह मुण्डा- सुतिआम्बे; 2. दक्षिणी खण्ड- सोनाकांत देव सिंह मुण्डा- खूँटी, सोनपुर; 3. पूर्वी खण्ड- पूर्वी खण्ड- मानकी देव सिंह मुण्डा- मानभूमि, सिहभूम और 4. पि चमी खण्ड- उपना कांत देव सिंह मुण्डा- देवर खंण्ड, उमेडण्डा। मदराकांत देव सिंह मुण्डा राज्य के मुख्य उत्तराधिकारी थे। इनकी राजधानी सुतिआम्बे थी।" [20]

परन्तु उपर्युक्त मुण्डा राजाओं के नामों में प्राचीनता बोध नहीं है। इनमें कुछ नाम हिन्दी के राजपूतों, सादरी या नागपुरी और कुछ मुसलमानों से सम्बन्धित हैं। अतः इन्हें मध्यकालीन इतिहास पर आधारित माना जा सकता है।

इनके अलावे खुखरा परगना, डोएसा परगना और सोनपुर परगना

आदि नाम भी हैं। डोएसा का नवरत्नगढ़ मुगल काल में नागवंशियों के द्वारा बना। ऐसे ही जरियागढ़, पालकोटगढ़ तथा रातू आदि गढ़ भी नागवंशी राजाओं द्वारा बनाया गया है।

आर्थिक तथ्य

मुण्डारी लोक साहित्य में आर्थिक तथ्य प्रचुर मात्रा में मौजूद है। प्राचीन काल में मुण्डाओं का आर्थिक स्रोत कृषि था। दिनभर के काम के बाद रात में नृत्य-गान कर मनोरंजन करना भी उतना ही महत्त्व रखता था, जितना जीवन के लिए भोजन या वस्त्र। अतः "मुण्डा संगीत के बहुत प्रेमी होते हैं। सूर्यास्त के बाद मुण्डा युवक अपने गीत गाते हुए या बजाते हुए पाये जाते हैं।" [21]

इतना ही नहीं, दिन में काम करते समय गीत में वही बोल रहते हैं, जो वह कर रहा होता है और रात में वही, जो उसे करना है। ठीक ऐसे ही, अखाड़े में नृत्य के समय भी, वह वही बोलकर गा रहा होता है, जो उसने दिन में किया था और जो अगले दिन उसे करना है। इससे सम्बन्धित एक जदुर गीत है:-

जजदुर अकड़ा रे मइना	अर्थात- हे बेटी, जदुर अखाड़ा में
पिरि पिरि बिउरेने मे	तुम तेजी से घूमो
बरूडुंग सेरेंग रे मइना	हे बेटी, धान कूटने वाले चट्टान में
रिले रिले गुमे गुमे मे	तुम ठोटको (खुदकाओ) और फटको
फिर पिरे बिउरेन में	तुम तेजी से घूमो
रसिका को मेता मेआं	तुम रसिक कहलाओगी
रिले रिले गुमे गुमे मे	तुम ठोटको और फटको
कमिआं को मेता मेआं	तुम परिश्रमी कहलाओगी
रसिका को मेता मआं	तुम रसिक कहलाओगे
अकोअः दिसुम तेको इदिमेआं	तुम्हें हर कोई चाहेंगे
कमिआं को मेता मेआं	तुम परिश्रमी कहलाओगे
अकोअः गमए तेको सेटेर मेंआं	तुम्हें हर कोई पसन्द करेगा।

खेती या खेती-खलिहान का काम निपटाकर मुण्डा लोग खेती योग्य भूमि बनाने के लिए जंगल या झाड़ियों को जला देते थे। जिसे मुण्डा लोग अपनी भाषा में 'जरा' या आग लगाना कहते है। झाड़ी तथा वन को जलाने से वहाँ वास करने वाले विषैले जानवर तथा जीव भाग या जल जाते हैं और काँटे आदि भी जलकर नष्ट होकर उर्वरा शक्ति को बढ़ा देते हैं। वे तब पूर्वजों की स्मृति-पर्व माघ के बाद जले हुए वन या झाड़यों को काटते हैं। इससे सम्बन्धित अनेक लोकगीत एवं कहानियाँ हैं। कथा की कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती है- "फागुन चैत रेअः चण्डु तइ केना जरा को मःकद तइकेना। अद जरा रे सेंगेल को कोड़ारा कद तइकेना। मोयोद तयुः सेंगेज तः दुबा कनेः तइ केना।" [22] अर्थात्- फागुन-चैत का महीना था। जंगल काट कर साफ कर दिए गये थे और झाड़ियों में आग लगा दी गई थी। एक सियार आग के पास बैठा हुआ था।

इस प्रकार मुण्डा लोग जंगल को खेत बनाने के लिए काट कर जला देते हैं, इसी तरह पहाड़ों को भी जिसमें मेला लगता है, वहाँ के घास-फूस को काट कर उसे एक दो दिन पूर्व जलाया जाता है। ऐसा साफ करने के पीछे मुण्डाओं का यह विश्वास है कि पहाड़ की आग को देखकर जंगल के जानवर एक ओर एकत्र हो जाते हैं।

प्राचीन काल से ही मुण्डा जाति भी अन्य जनजातियों की तरह जंगल-पहाड़ों के बीच में रहती आई है। "इन जंगल-पहाड़ों की कुल जमीन-जंगल उन्हीं लोगों की थी। जो चाहे इस क्षेत्र या भू-भाग में आकर या बसकर अपनी इच्छा और शक्ति के आधार पर खेती करने योग्य खेत तैयार करके गाँव के मुण्डा-मानकी और महतो पहान से हक प्राप्त कर लेता था। क्योंकि गाँव के मुण्डा-मानकी और महतो-पहान ही जमीनों की बन्दोबस्ती आदि करते थे।" [23] अतः किसी गाँव की जमीन वितरण की दो पद्धति मौजूद थी। पहला तो खेत बनाकर मुण्डा-मानकी या पहान-महतो द्वारा बन्दोबस्ती और दूसरा गाँव की जनता द्वारा सामूहिक रूप से तैयार खेतों को गाँव के पदाधिकारीगण तथा कर्मचारियों को वितरित कर दिया जाता था। वे खेत सामूहिक खेत के रूप में ही थे। जैसे- 1. राजहंस या मझियस खेत, 2. मुण्डा का मुण्डाई खेत, 3. पहान का पहनइ खेत 4. पानीभरा खेत, 5. लोहरा खेत, 6. कोटवार खेत, 7. कुम्हार खेत, 8. चौकीदारी खेत, 9. पूजा-स्थल खेत, 10.

गाँव का पूरा बकास्त खेत और 11. गैर मजरूआ खास आदि थे।

प्राचीन काल में राजहंस, मुण्डाई, पहनई के नाम पर मिले खेतों का स्वामित्व वैसे ही समाप्त हो जाता था जैसे कि अमुक व्यक्ति को उस पद से हटा या बदल दिया जाता है। यह परिपाटी आधुनिक युग आते-आते स्थायीकृत हो गई है। पदाधिकारियों को बदलने की परम्परा थी, वह थम कर रूढ़ होती चली गई। तब से गाँव के कुछ कर्मचारियों को सामूहिक रूप से वर्ष में चन्दा के रूप में धन दिया जाने लगा। जैसे- अहीर, लोहरा, कोटवार आदि कर्मचारियों को वर्ष में पारिवारिक कार्य-भार के अनुसार सामूहिक रूप से धन दिया जाने लगा। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं- ''सम्पूर्ण जगन्नाथपुर गाँव भगवान जगन्नाथ को सौप दिया गया था; जिसके लगान से जगन्नाथपुर के मन्दिर का खर्च चलता था। मन्दिर व्यवस्था के लिए जगन्नाथपुर में भगवान जगन्नाथ के पुजारी के नाम से 895.01 एकड़ जमीन थी। पुजारी और अन्य कर्मचारी तथा टहलू, माली, लोहार, कुम्हार, चौकीदार इत्यादि के जीविकोपार्जन हेतु उसी 895.01 एकड़ में से जमीन दी गई थी, जिसका विवरण इस प्रकार हैः- 1. मझियस 20.00 एकड़, 2. बैठ खूँटा 08. 00 एकड़, 3. पुजारी 12.00 एकड़, 4. टहल 10 एकड़, 5. कोटवार फलहरा 03.00 एकड़, 6. पहान 03.00 एकड़, 7. जनेऊ हेतु 03.00 एकड़, 8. पगड़ी बंध 03.00 एकड़, 9. कोईरी 03.00 एकड़, 10. कुम्हार 03.00 एकड़, 11. बढ़ई 03.00 एकड़, 12. लोहार 02.00 एकड़, 13. चौकीदार 03.00 एकड़, 14. गाँव का पूरा बकास्त 15.00 एकड़ और गैर मजरूआ खास 250.00 एकड़। इसका योग 341.02 एकड़ है। [23 क]

श्री श्री जगन्नाथ स्वामी के 895.01 एकड़ जमीन से लगभग 341.02 एकड़ जमीन मंदिर में सेवारत पुजारी एवं अन्य कर्मचारियों के जीविकोपार्जन हेतु दी गयी थी। इस मन्दिर के पुजारी ब्राह्मण थे तो माली हरिजन और पहरेदार जुलाहा। प्रधान पुजारी रैयत बनते थे- चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान अथवा उराँव हो या मुण्डा।'' [24] अतः इनकी कृषि भूमि टाँड़, चाँवरा और दो तीन प्रकार के मिलते हैं। इसी आधार पर सर्वे में एक नम्बर खेत, दो नम्बर और तीन नम्बर खेत का नाम दिया गया है। जिसमें मुण्डा लोग खेत के अनुसार बीज बोकर खेती करते आ रहे है। इस विषय का एक लोकगीत प्रस्तुत करना उचित होगा-

ओको रेलं हेरेया ददा	अर्थात्- हे भाई, हम कहाँ बोयेंगे?
तिलासारि बबाया ददा	तिलासार धान
चिमए रेलं पसिरेया ददा	हे भाई, हम कहाँ छीटेंगे?
इचाः चिगिड़ि पसका लटिः नंगलि कोबोः बबा	फूलदार, लम्बा झुकनेवाले धान

गड़ा रेलं हेरेया ददा	हे भाई, गढ़ा (खेत) में बोयेंगे?
तिलासारि बबाया ददा	तिलासार धान
डोड़ारेलं पसिरेया ददा	हे भाई, हम डोढ़ा (खेत) में छीटेंगे?
इचाः चिगिड़ि पसका लटिः नंगलि कोबोः बबा	फूल से छितराए लम्बे झुके धान को
डेम्बो जनाया ददा	हे भाई, (धान) फूट गये हैं
टुपाः टुंकी लेकाया ददा	बाँस की बनी छोटी टोकरी-बड़ी टोकरी जैसी लगती है
गेले जनाया ददा	हे भाई, बालियाँ निकल आई हैं
ढाकि डटोम पसका लटिः नंगलि कोबोः बबा [25]	बड़ी टोकरी फैली हुई है और झुके हुए धान हैं।

लोकगीतों के अतिरिक्त मुण्डारी लोकगाथाओं में भी आर्थिक तथ्य प्राप्त होते हैं। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैंः-

अलेगे सिङबोंगा,	अर्थात्- हम ही ईश्वर हैं,
अलेगे मरङबोंगा	हम ही देवता हैं
जेतयो जाँएओ, कले बोरोवै	हमें किसी का भय नहीं है
जाँएयो जेतायो कले चिरयै	हमें किसी का डर नहीं है।
मेणेद गेले कमि तना,	हम लोहा कमाते हैं,
मेड़ेद गेले जोम तना	लोहा ही खाते हैं
दिरि लेका कुड़म तेले,	पत्थर की तरह छाती है,
पड़ंगा लेका सुपु तेले	काँड़ की तरह बाँहें हैं
मेने-मेने को कजि केदा दा	उन्होंने (असुरों) कहा
मेने-मेने को बकण केदा दो [26]	वे बोले।

सेनोः जन गेया किं,	अर्थात्- वे उठ गए,
बिरिद जन गेयाकिं	वे चले गए

एकासी पिड़ी रे,	एकासी मैदान में,
तिरासी बादी रे	तिरासी टाँड़ में
जोजोगे जुम्बुलय,	इमली के झुंड में,
उलिगे अम्बराय	आमों के झुरमुट में
दूब जना गेयाकिं,	वे बैठ गए,
जारु जन गेयाकिं	वे ठहर गए
अकिं चारा पानी लेलतन गेयाकिं	अपना दाना-पानी,
	अपना चारा पानी
अकिं अबहरपानी	वे देख रहे है,
चिना तन गेयाकिं	वे खोज रहे हैं
लेलनम तैयाकिं,	उन्होंने देख लिया,
चिना नम तैयाकिं	उन्होंने पा लिया
नुपुगे नपरोव,	कीड़े मकोड़े,
चिमरि गे पिपिरि [27]	फुनगे फतिंगे।

मुण्डारी लोकगीतों एवं लोकगाथाओं के अलावे लोक कथाओं में भी आर्थिक तथ्य भरे पड़े हैं। कोई भी मुण्डारी की लोक कथा ऐसी नहीं है, जिसमें आर्थिक पक्ष का प्रसंग नहीं आया हो। इससे सम्बन्धित कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं:-

''मोयोद राजा गंगाएः हेर केदा। अउरि जरोमोः तेगे मोयोद बिर बना जोम एटेः केदा।'' [28] अर्थात्- एक राजा अपने टाँड़ में गंगई बोया था। पकने के पहले से ही एक भालू उसे खाने लगा।

मुण्डा लोग गंगई की खेती गोड़ा धान के साथ टाँड़ या ऊँची जमीन पर करते है। उरद भी टाँड़ में बोया जाने वाला फसल है। इसे मंडुवा के साथ भी लगाया जाता रहा है। इससे सम्बन्धित कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं--''मोयोद हातु रे मोयोद होड़ोवः होनको तइ केना। इनकु खेती बारी केयातेको असुलेन तन तइकेना। मरङ्ग उतर निः राजाः ओड़ाः रे जनाव राजालोः बिचार तनेः तइकेना। जनओ सेताः रे लोलो मण्डी ओड़ोः रम्बड़ा उतुको ओमइ तन केना।''[29] अर्थात्- किसी गाँव में सात भाई रहते थे। वे खेती-बारी करके अपनी जीविका चलाते थे। बड़ा भाई राजा के दरबार में जाता था इसलिए उसे सबेरे गरम भात और उरद दाल खाने को मिलता था।

उसी युग से आज तक मुण्डा लोग कृषि कार्य के लिए गाय-बैल, काड़ा भैंस तथा अन्य जानवरों को पालते आ रहे हैं। जब महुआ फूलने तथा साखू गिरने के दिन आते हैं तब उस समय गाय-बैल, बकरियाँ-भेड़े चरानेवाले लोग परेशान हो जाते है। क्योंकि ये पशु महुए की ओर उसे खाने के लिए दौड़ पड़ते हैं। ऐसे में उन्हें महुवा-साखू फल इकट्ठे करने वाली स्त्रियों से बात सुननी पड़ जाती है। इसी भाव का चित्रण करता एक जदुर लोकगीत द्रष्टव्य है:-

उरिः गुपि बुगिना चि मेरोम गुपि बुगिन
मदुकम होरो कुड़ि एरङ तना
उरिः गुपि बुगिना चि मेरोम गुपि बुगिन
सरजोम जंगी कोड़ाए सेगेद तना

मदुकम होरो कुड़ि एरङ तना
जाति मति गेहोए तरङ तना
सरजोम जंगी कोड़ाए सेगेद तना
किली नलङ होए सेगेद तना [30]

अर्थात्- गाय चराना अच्छा है या बकरी
महुवा-रखवाली कराने वाली डाँट रही है
गाय चराना अच्छा है या बकरी
सखुवा उठाने वाला पुरुष फटकारता है
महुवा-रखवाली करने वाली डाँट रही है
जात-पात कहकर डाँट रही है
सखुवा उठाने वाला पुरुष फटकारता है
गोत्र नाता बोलकर फटकारता है।

उपर्युक्त गीत से स्पष्ट होता है कि मुण्डा लोग वन्य फल-फूलों का भी संचयन करते थे। इसी प्रकार वर्षा ऋतु में होने वाले रूगड़ा और खुँखड़ी आदि भी इनकी आर्थिक सामग्रियाँ है। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जता सकती हैं। *''जरगि दिपलि ओते-पिड़ि, टोनङ कोरे होड़ोको उद ओड़ोः पुटुकुइः हलङ बड़ातन, दंड़ाबड़तन गेम लेलकोअ हतुरेन होनको ओड़ोः दंगड़िको इदंग*

रे उद दंड़ा को सेना। [31] अर्थात्- वर्षा ऋतु में जंगलों, टाँड़ों और मैदानों में मुण्डा लोग रूगड़ा-खुँखड़ी उठाते हुए दिख पड़ते है। गाँव के बच्चे और लड़कियाँ विशेषकर बहुत जल्दी खुँखड़ी की खोज में निकल पड़ती हैं।

मुण्डा लोग मांसाहारी हैं। वे पूजा में पशु पक्षियों की बलि चढ़ाते हैं। पूजा-पाठ ही इनका यज्ञ है। अतः पूजा के नाम से ही माँस खाने का रिवाज था। इसलिए वे मुर्गी, बकरी, भेड़, बत्तख, कबूतर आदि भी पालते रहे हैं। उस युग में शिकार करके भी उनका सेवन करते थे। इससे सम्बन्धित बहुत से लोकगीत तथा लोक कथाएँ हम देख चुके हैं। एक लोक कथा की पंक्तियों का अवलोकन करना समीचीन होगा- *"मोयोद राजाः एआ होनको तैकेना। सोबेन कोअते हुड़िंग उतरनिः कांड़ालिटा तइकेना। एंगा-अपुकिन गोएः जन तयोमते इनकुवाः असुलेन रः जेतन उपाए का तैकेना। एना मेन्ते जनओ बिरते सेन्दरा को सेनोः तन तइकेना। सोबेन हगोको मिमियद सेन्दरा सेता कोको असुला काःको तैकेना। इनकु पुरःगे अकोवः गोमके कोवः कजिको को अपयुम तैकेना।"* [32] अर्थात्- एक राजा था। उसके सात बेटे थे। सबसे छोटे अंधा था। माता-पिता की मृत्यु के बाद उनकी जीविका का कोई साधन नहीं रहा। इस कारण प्रतिदिन वे शिकार करने जंगल जाते थे। सबके पास एक-एक कुत्ता भी था। कुत्ते अपने मालिकों की आज्ञा का पालन करते थे।

इसी तरह मुण्डारी लोकगीतों, लोकगाथाओं, कथाओं के अतिरिक्त मंत्रों, खेलगीतों तथा बुझोंवलों में भी आर्थिक तथ्य उपलब्ध है। एक मंत्र देखा जा सकता है-*"ने बबा एंगा रे ने कोदे एंगारेम तोललेना, ने सोसोबरकद, सोएअसिम जरोम, तिलए ओतोरोङ्ते जिरगिड़ि टपागिड़िजदञ।"* [33] अर्थात्- धान माता में, मड़ुवा माता में तुम बंधे हुए थे। भेलवा-टहनी से, अण्डा से, तिलई लतर से, मैं तुम्हें धूँककर, झाड़कर अलग करता हूँ।

खेल गीत- *"गड़ाको परोम रे सुरगुजा सकेः केन सेकेः केन*
नइको परोम रे तिलमिङ रोलोःकेन रोलोःकेन" [34]

अर्थात्- नदी के उस पार का सुरगुजा सकसका रहा है
नदी के उस पार का तिल झनझना रहा है।

बुझौवल- *"खसरा सेता जेमन सिबिल"।*

अर्थात्- खसरा कुत्ता बड़ा स्वादिष्ट है --कटहल।
"मेरोम कुन्टुड़ा कना जोंड़ा अतिंग तना।" [36]

अर्थात्- बकरी बन्धी हुई, रस्सी चर रही है।--कोंहड़ा इत्यादि लत्तर वाली सब्जियाँ।

सामाजिक तथ्य

लोक साहित्य अपने समाज का सांस्कृतिक दर्पण होता है। इसलिए समाजशास्त्रियों ने साहित्य को समाज का दर्पण कहा है। इतना ही नहीं लोक साहित्य समाज का निर्माता या दिशा निर्देशक भी हो सकता है। उसी तरह 'मुण्डारी लोक साहित्य' मुण्डा संस्कृति का संवाहक है। अतः मुण्डारी लोक साहित्य में मुण्डाओं का सामाजिक चित्रण मिलता है। उनका मौखिक लोक साहित्य युग विशेष में समाज की स्थिति, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था, पारिवारिक जीवन आदि का यथार्थ चित्रण कालक्रमानुसार उपस्थित करता चलता है।

मुण्डारी लोक साहित्य तथा उनकी अलिखित भाषा-परम्परा से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल से पूर्व ही मुण्डाओं का समाज, सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित था। परन्तु जैसा कि लोक साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि इस काल में भी मुण्डा जाति प्राकृतिक वन सम्पदा वाली नयी जगहों की तलाश में निकल पड़ती थी। वे शिकार करते थे, इसके साथ-साथ वे झूम खेती भी करते थे। अतः नवीन जगहों की खोज में इनकी सामाजिक व्यवस्था सदा टूटती और जुटती चली आई है। प्राचीन काल में ही जब मुण्डाओं की जनसंख्या छोटानागपुर की धरती में पूर्ण रूप में थम गई थी, तब फिर से यहाँ उनका आदिम सामाजिक रूप स्वतः कायम हो गया।

"सिदा दो एनेटेःरे पाँड़ गोमके गे बोंगा बुरू रेअः ओड़ोः हतु चवलवए रेअः सोबेन कमिए रिकाजद तइकेना, मेन्दो तयोम तयोम ते हतु मरङ इदिओतन चि अर कमि पुरअः नोः पोसा ओःतन चि पाँड़ हुड़िङ हगाते हतु चलवए कजिए हिसवजना। इनिः तयोद दो हतुरेन 'मुण्डा' ए नुतुम जना! पांड़ा ओड़ः बरिको पांड़ा खूटको लुतुम जना ओड़ोः मुण्डाअः ओड़ा बरिदको मुण्डा खूटको कजि जना।" [37] अर्थात्- पहले-पहले पहान ही गाँव चलाने और पूजा पाठ का काम सम्भालता था। परन्तु बाद में जब गाँव का विकास होता गया और गाँव का काम भी बढ़ गया, तब पहान ने अपने छोटे भाई को गाँव चलाने का काम सौंप दिया। तब वह बाद में गाँव का 'मुण्डा' कहलाया। पहान का परिवार 'पहान खूट' कहलाया और मुण्डा परिवार के सारे लोग

'मुण्डा खूट' कहलाये।

इसी भाँति प्राचीन काल में भी मुण्डा समाज दो वर्गों में बँटा हुआ था- मुण्डा-पहान और रैयत-प्रजा। इसके पूर्ण स्पष्टीकरण के लिए हम सरहुल पर्व के कुछ अंश को ले सकते हैं। सरहुल (बा) पर्व के अवसर पर उपवास के दिन 'जयर' में जब दो नये घड़े में पानी भरा जाता है, तब यह प्रसंग सुना जा सकता है कि प्रथम घड़ा का पानी 'मुण्डा-पहान' खूट का और दूसरा घड़े का पानी 'रैयत-प्रजा' खूट का है।

इस काल में मुण्डा समाज पितृ प्रधान रहा है। फिर भी वहाँ स्त्रियों का स्थान तब पुरुषों के बराबर समझा जाता था। दोनों मिल-जुलकर एक साथ बराबर काम करते थे। परन्तु दोनों के कामों का वर्गीकरण किया हुआ था। स्त्री का काम स्त्रियाँ ही किया करती थीं और पुरुषों का काम पुरुष ही करते थे। अतः मुण्डा सामाज में स्त्री-पुरुष के कुछ कामों में सामाजिक बन्धन भी है। हल चलाना या छूना, छप्पर छाना आदि स्त्रियाँ नहीं कर सकती हैं। छप्पर छाने में स्त्रियाँ नीचे से खपड़ा, लकड़ी आदि सामग्री दे सकती हैं परन्तु ऊपर चढ़कर छप्पर नहीं छा सकती है और न छप्पर पर काम ही कर सकती है। यह परम्परा अन्य आदिवासियों में भी है। उपर्युक्त तथ्य से सम्बन्धित एक बुझौवल है- "मियद होड़ो के मोद साल रे मुसिङगेको जुटिदिया।" अर्थात्- एक आदमी को एक वर्ष में एक ही दिन छूते हैं। इसका अर्थ 'हल' है। मुण्डारी में इसे 'नयल' कहा जाता है। जिसको स्त्रियाँ वर्ष में एक बार सिर्फ सोहराई पर्व के दिन लक्ष्मी पूजा के बाद सिन्दुर-टीका आदि लगाने के क्रम में सम्मान देने के लिए छूती है।

उसी प्रकार मुण्डा समाज के पर्व-त्योहारों में घर की लिपाई-पुताई परिवार की स्त्रियाँ ही करती रही हैं। इससे सम्बन्धित अनेकों लोकगीत है। एक जदुर लोकगीत प्रस्तुत है-

बा चण्डुः मुलुः लेना मइ	अर्थात्- हे बेटी, सरहुल चाँद निकल आया
बा हसाम अदेर तना	तुम सरहुल की मिट्टी अन्दर ला रही हो
सिंगि दोएः तिकिन लेना मइ	हे बेटी, दोपहर हो गया
नड़ाका हसम लोवदे तना	तुम नगड़ा मिट्टी भीगा रही हो
बा हसाम अदेर तना मइ	हे बेटी, तुम सरहुल की मिट्टी अन्दर कर रही हो

ओकोए लोःम जोलोमे	तुम किसके साथ लीपोगी?
नड़का हसम लोवद तना मइ	हे बेटी, तुम नगड़ा मिट्टी भिंगा रही हो
चिमिए लोम नंड़कानते	तुम किसके साथ बाल धोओगी?
गतिमदो बंगइयना मइ	हे बेटी, तुम्हारी सहेली तो नहीं है।
ओकोए लोःम जोलोमे	तुम किसके साथ लीपोगी?
संगमदो बंगइयना मइ	हे बेटी, तुम्हारी सखी तो नहीं है
चिमए लोम नड़कानेते [38]	तुम किसके साथ सिर धोओगी?

प्राचीन मुण्डा समाज कृषि पर निर्भर था। इस सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत मुण्डाओं का समाज बड़ा परिश्रमी था। इनके समाज में संस्कारों का बड़ा महत्त्व रहा है। 'गर्भाधान' से लेकर मृत्यु के बाद तक अनेक संस्कार हैं जो उन्हें जीवन की शुद्धता प्रदान करते हैं। मुण्डा समाज में लड़का या लड़की का पैदा होना (दोनों ही हाल में) समान रूप से आनन्द देता है। जन्म पूर्व पूजा-अर्चना करना ईश्वर से नये जन्म की शुभकामना करना इनका धर्म है। बच्चा जन्म लेता है तब माता-बच्चे को अलग रखा जाता था। नाभी झरने के पाँचवें, सातवें, नवें दिन पर छठी होती थी। इस दिन बच्चे की माँ के साथ स्त्रियाँ नदी आदि जलाशयों में स्नान करने जाती थीं। नदी के किनारे सिन्दुर के टीके एवं सिंदुर की पुड़िया घड़ा से ढक कर छोड़ देती थीं। उसी दिन या दूसरे दिन बच्चे का नामकरण किया जाता था। फिर बच्चा जब खाने योग्य होता है, तब मुँहजुठी होती है। इसके बाद बच्चा खड़ा होकर कदम बढ़ाता है तब उस समय भी संस्कार सम्पन्न होता है। बच्चा जब दो-ढाई साल का हो जाता है तब कानछेदी संस्कार होता है। इस दिन बच्चे के पिता या समान नाम वाले को अवश्य आमंत्रित किया जाता है। कानछेदी के बिना मरने पर, आग नहीं दिया जाता उसे मिट्टी दी जाती है। परन्तु मुण्डाओं में वैसे बच्चों को अलग से मिट्टी दी जाती है। इससे सम्बधित एक कहावत है- "होन चुटु बरुजं जुदारेको तोपा मा।" अर्थात् - हे छोटा बच्चा तुम्हें अलग से मिट्टी मिलेगी। यह कहावत बच्चे-बच्चे की गाली है।

उपर्युक्त तथ्य के अनुसार मुण्डा समाज में बच्चा का पहला संस्कार छट्ठी और दूसरे दिन नामकरण किया जाता है। नामकरण के समय स्त्रियाँ कांसे की थाली में पानी लेकर आँगन में बैठ जाती हैं। सर्वप्रथम पानी में एक सिक्का, दूब घास ईश्वर के नाम से एक अरवा चावल डालती है। तब बच्चे

से एक चावल सटाकर पानी में डालती है फिर परिवार के दादा या अन्य बुजुर्गों या गाँव के अन्य व्यक्ति के नाम से चावल डुबाया जाता है। जब बच्चे के लिए डाला गया चावल और दादा के नाम से डाला गया चावल सट जाता है, तब उसी बुजुर्ग के नाम से पुकार कर खुशी से हँसते हुए उस थाली के जल को भीड़ में चारों ओर छींट दिया जाता है तथा नामकरण की उद्घोषणा कर दी जाती है। यह काम स्त्रियों द्वारा सम्पन्न होता है।

नामकरण के बाद सभा होती है। सभा में हंड़िया चलता है। तब बच्चे के नाम से तेल बँटता है। इसके पश्चात गाँव का एक व्यक्ति या मुण्डा 'सबपुडु' अर्थात् - साखु-पत्ता का दोना पकड़कर नामकरण अनुष्ठान कथा सभा में खड़ा होकर सभा को सम्बोधित करते हुए सुनाता है। इससे सम्बन्धित प्रसंग निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट किया जा सकता है- *"एअ हगाकोः होनको तबु इलि नू मेनते नकागेबु रपअः। मिसा-मिसा दो समा नूइ इलि मेनते अद पुरःसादो जान जेतन नतारः इलि नू मेनते। एन दिपिलि एन नतारे जगर लगतिंअ, हड़मको एनकागेको चोलोन तदा। एना मेन्ते नःदो तिसिङ चेनाः मेनते निमिनङ हगाहोनकोबु हुंडिअकना एनाइङ जगरेअ। ओकोतः काइङ तेबःएअ एनतःको कजि देंगाइङ्पे।*

सेतःसिंगि रः रिम्बिल गुलकेन गुलकेनबु लेलकेदा, आदबु मेनकेदा तिसिङदो जाए गमाए, गपागे जाएः गमाए, निदाए गमाया चि सिंगिः गमाया आद अबुअः जीरे नेआ मरङ बोरोगे तइकना, इदुड़ोः सेंगेल दःए गमाया चि बनड़ि जेटेया! अदबु मेनजद तइकेना, गमातब केरे दो होनंबु लेलतबे। मेन्दो अबुअः सनङ लेका दो कएः गमाकेदा। अयः दिनमुण्डिः तेबाः रिकाकेदा आद नाः दोए गमाया मेन लेकारे कुड़िको बर अपि होड़ो लेकाको जमानजना आद दाः गमा केदा। एनाते कुड़िको मेन जदा, चेकानिः नाः? कुला चिना बिङ? चि मनोव होन? आद कजि रूड़ओ तना मनोव होन गेना। ओड़ोः गे कजिओः तना, अब चिना अको? अद कलि रूड़ओः तना, अको गेना। मिअद निः मेन केदा, एना, हुड़िंङ दःगे गमाद बुअ, नाःदो अबुअः बोरो सेनोः जना।

एनते सोबेन कुड़िको रसिका जना अदको मेनकेदा, नाः दना अउरि रिचिगिड़िन बारिदो अदिङ बोलो आद मनडि चुटको जुटिदबड़ा किना होका लेका; हड़मको एनका गेको दसतुर तदा।

एनातो एटाः जाति लेका जुदा कुटरि रेकिङ तइन जना आद डाङ ते

चराकिङ ओम जना। मोद पीटि लेका होबा चना चि, नवा होड़अः बुटि उरुडु जना। ओड़ो कुड़िको जमा जना आदको मेन केदा, तिसिंदो बुटि उरूडु जना, नाः दो जतिकिङअ। एनाते सोबेन दसतुर अबु मुण्डा होनकोरे चवलवअकन सोबेन नेबको रिकाकेदा आदको जति केद किङअ।

एन तयोमते ओड़ः रेको जगरकेदा, नःदो जति दोकिङ जति जना, पोन्चोकोबु नमलकोअ आद जगरको जगरोःका, आद नवा होड़ोअः लुतुम को अयुमतका। एनतेको रःकेदबुअ आद जमनजन तेबु लेल जदा सोबेनः बुगिन गेआ। सेंगेल दः कएः गमाकेदा मेनदो बुगिन दःगे गमाकेदा। रोड़ो दरु रेः देःअकन तइकेनिः बुगि लेकाए अड़गुन जना। हड़म मियद सिउःनिः कुलदबुआ, इनिअः लुतुम मतुरा दो जना। हड़म अमिनॅए बुगिकेदबुअ मेनते सोबेनकोतेः जोअरोःका। ओड़ोः दो हड़म आते नुअबु अरजिया, ने नवा होड़ो नेकागेबु जोम हरा नू हराइका, हड़द सुकु, हड़द डिंबु लेकाए हरा" - कन मता कनका, नीरे हिसिंगा बनोःका, चेनटा बनोःका, रुता पनडुइ पनडुःका।" [39]

अर्थात्- हे भाइयों, पुत्रों हम हंड़िया पीने के लिए ऐसे ही मिलते रहते हैं। कभी-कभी तो सिर्फ हंड़िया पीने के लिए और अधिकतर तो किसी नाता को लेकर ही हंड़िया पीते हैं। उस समय उसका नाता या परिचय प्रस्तुत किया जाना चाहिए। पुरखों ने ऐसा ही संस्कार दिया है। इसलिए अब हम सभी भाई-बन्धु किसलिए एकत्र हुए हैं, उसे मैं संक्षेप में बता देना चाहता हूँ। जहाँ मुझसे छूट जाए वहाँ हम सभी मिलकर उसे पूरा करेंगे।

सुबह का बादल काला ही काला छाया हुआ था और हम उसे देखकर कहने लगे थे कि यह बादल आज बरसेगा या कल ही बरसेगा, रात में वर्षा होगी या दिन में। हममें यह एक भय बना हुआ था कि कहीं अग्नि वर्षा कर दे या शोले वर्षा दे! हमारी इच्छा थी, जल्दी से वर्षा हो जाती तो हम सभी देख लेते। परन्तु हमारी इच्छानुसार तो वर्षा नहीं हुई। वह अपने दिन-तारिख के पहुँचने पर ही हुई। दो-तीन स्त्रियाँ जमा हुईं और पानी वर्षा (बच्चा का जन्म हुआ)। तब स्त्रियाँ कहने लगीं- हे सखी कौन सा जीव है। बाघ! या हे सखी साँप? या मानव का बच्चा? तब उत्तर मिलता है- हे सखी मानव बच्चा ही है। आगे फिर कहा जाता है - हे सखी हम लोग हैं या वो लोग? अर्थात्- अर्थात् लड़की है या लड़का? फिर जवाब मिलता है- नहीं सखी 'वे लोग' अर्थात् लड़का है। तब एक स्त्री कहती है- हमारे लिए

सामान्य या अनुकूल वर्षा हुई, अब तो हमें भय नहीं है।

तब सभी स्त्रियाँ आह्लादित हो उठीं और कहने लगीं- अब तो जब तक छट्ठी नहीं होती है तब तक अन्दर के कमरे में जाना और खाना बनाने वाले घड़े (चेरू) को छूना मना कर देना चाहिए। पुरखों ने ऐसी ही रीति बनायी है।

इस भाँति दोनों अछूत जाति के समान अलग कमरे में रहने लगे और उन्हें भोजन पहुँचा दिया जाने लगा। एक सप्ताह पर बच्चा का नाभी जब झड़ गया तब फिर स्त्रियाँ मिलीं और बोली कि आज तो नाभी गिर गयी। अब उन्हें जाति में लाने के लिए छट्ठी कर देंगे। यही नियम मुण्डाओं में चलता है। सब नेग-दस्तूर हो गया और जाति में वापस आ गये।

उसके बाद घर में बातें हुई कि अब तो वे शुद्ध हो गए। पंचों को बुलाकर और उन्हें दस्तूर वचन कहा जाए। नये मनुष्य का नाम भी सभी सुन लें। हम इसीलिए बुलाए गए हैं और इकट्ठे हुए- हम सब देख रहे हैं। सब ठीक है, अग्नि वर्षा नहीं हुई, परन्तु सुख का पानी वर्षा। सूखे पेड़ पर चढ़ा हुआ था, वह अब सुखपूर्वक उतर गया। बूढ़े ने हमें एक हल जोतने वाला दे दिया है और उसका नाम मतुरा रखा गया। बूढ़ा (ईश्वर) हमें सुख दे गया। इसलिए हम सबों की ओर से उसका नमन हो। हम अब बूढ़े से ऐसी ही विनती करें कि नया मनुष्य हमें ऐसा ही सुख दे तथा इसके नाम से खाते-पीते रहें तथा तीताकदु या तीता डीम्बु जैसा यह बढ़ता रहे। इसपर किसी को कोई ईर्ष्या, द्वेष नहीं है। रुता वृक्ष के समान यह बूढ़ा हो।

इस प्रकार नामकरण के दिन बच्चे के साथ-साथ जिस बुजुर्ग के नाम पर बच्चे का नाम रखा गया है कि वह व्यक्ति उस समय सर्वाधिक आनन्द का अनुभव करता है। क्योंकि, मानो उसका, समाज में जन्म दिवस मनाया जा रहा हो। ऐसी परम्परा मुण्डा तथा अन्य आदिवासियों में आदि काल से चली आई और चलती ही रहेगी।

प्राचीन काल से मुण्डा समाज के बालक-बालिकाएँ बचपन या छोटेपन से ही कृषि काम में किसी-न-किसी रूप में जुट जाते थे। इसके साथ ही युवावस्था में युवागृह तथा अखाड़ों में गीत-गोविन्द कहानी-किस्सा तथा गुण-ज्ञान गुरुओं से सीखा करते थे। फिर शादी का आयोजन, अगुवा या दुतम के माध्यम से होता था। शादी के पहले जो रस्म-रिवाज है इसके लिए

'बला गोनोङ (बड़ा कुटमइत और दाम का तय), रइगड़ा सअःएते' (रइगड़ा वालों की ओर का अपसगुन) आदि देखा जाता था ओर ऐसा ही अब भी होता है। इस काल में मुण्डा समाज में शादी के कई तरीके थे, जो अब भी हैं। जैसे- दुतम बिवाह, प्रेम विवाह, उत्तराधिकारी विवाह, हरण विवाह, ढुकु विवाह आदि। हरण विवाह अब प्रायः नहीं के बराबर है।

विवाह के पश्चात् बाल-बच्चे पैदा होते हैं, फिर अपने पुत्रों को उसी सामाजिक संस्कार में ढालते हुए जीवन-यापन करते हैं। जब मनुष्य बुढ़ापे में मर जाता है तब भी उसके क्रिया-कर्म के बाद कई संस्कार हैं। जैसे- कमान और छाया भीतरना, पत्थर धोना (दिरिचिपि) संस्कार होता है।

मुण्डारी लोक साहित्य के अन्तर्गत लोकगीतों, लोककथाओं, कहानियों एवं बुझौवलों में मुण्डाओं की सामाजिक संरचना के साथ-साथ उनके आचार-व्यवहार का चित्रण मिलता है। जैसे- दो भाई में, छोटे भाई की पत्नी बड़े भाई (भैंसुर) को दूर से प्रणाम करती है। इतना ही नहीं पूरे गाँव के लोगों के साथ किसी-न-किसी प्रकार का नाता-रिश्ते का जाल फैला मिलता है। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोकगीत का अवलोकन किया जा सकता है :

अञ हुड़िंजना चिरे अम मरङ जना
दुवर परेमतेम जोवरङ तना
अञ मरंग जना चिवरे अम हुड़िंजना
ओमबः जना तेम जोअरङ तना

होंजारिङगा अइङ किमिन जना
दुवर परेमतेम जोवरङ तना
अञ किमिनमेगा अमहोंजर जना
आमबाः जनातेइङ जोवरम तना [40]

अर्थात्- मैं छोटा हूँ या तुम बड़ी हो
तुम दरवाजे के पार से प्रणाम करती हो
मैं बड़ा हूँ कि तुम छोटी हो
तुम जमीन में झुककर प्रणाम करती हो

हे मेरे भैंसुर, मैं आपकी बहू हूँ
दरवाजा के पार से प्रणाम कर रही हूँ
मैं आपकी बहू हूँ और आप मेरे भैंसुर हैं
मैं आपको झुककर प्रणाम करती हूँ।

इस प्रकार के उदाहरण लोकगीतों के अतिरिक्त लोककथाओं में भी मिलते हैं। जैसे- " ने लेकारः होरा ते नाः समतेयो किमिनको कको जुटिद जःकोवा आद कको लन्दा जगरा होंजारेया किमिनेया, का देदो सहसरदल लेका गाराः।" [41] अर्थात्- इस प्रकार के रिवाज के कारण अब तक भाई पुतोह को नहीं छुआ जाता है और भैंसुर-पुतोह में हँसी-मजाक भी नहीं किया जाता है। नहीं तो सहस्त्रदल जैसा पाप लगेगा। परन्तु एक परिवार में रहते कभी गलती से स्पर्श भी हो जाता है तब इसका निपटारा समाज में हंड़िया देकर किया जाता है। इस प्रकार की प्रथा छोटानागपुर के अन्य जनजातियों में भी प्रचलित है।

प्राचीन मुण्डा गाँव में मुख्य तीन स्थल हुआ करते थे- अखड़ा, सरना और ससङ। इस काल में भी आकस्मिक घटना जैसे - हत्या, महामारी, जलकार, डूबकर और गर्भावस्था आदि से मरे मुर्दों को 'ससङ' या श्मशान घाट में मिट्टी नहीं देते है और न ही घर में छाया भितारते हैं। उनके लिए अलग घाट होता या बनाया जाता है और अलग जगह पर गाड़ा जाता है तथा उसे अग्नि नहीं दी जाती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्राचीन मुण्डा समाज एक संस्कारी समाज था। यह समाज संस्कारी था तो सभ्य भी था। इनके समाज में कोई भी पक्ष ऐसा नहीं जो सामाजिक नहीं है। नृत्य-गान जैसे सांस्कृतिक पक्षों का शुभारम्भ सामाजिक संस्कारों एवं अनुष्ठानों के अनुसार होता है। अतः मुण्डा, मुण्डा समाज में जन्म लेता है और उसी समाज में ही मरता है। तभी तो समाजशास्त्रियों ने कहा है कि मनुष्य एक समाजिक प्राणी है।

सांस्कृतिक तथ्य

पहले लिखा जा चुका है कि मुण्डारी लोक साहित्य में जब हम सांस्कृतिक तथ्य का अध्ययन करते हैं तो उसमें सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, कलात्मक एवं प्राकृतिक तथ्यों को भी साथ लेकर चलना पड़ता है। क्योंकि इन विभिन्न पहलुओं के फूलों की गुंथी हुई एक माला ही 'मुण्डा संस्कृति' हैं।

मुण्डारी लोक साहित्य का लिखित साहित्य प्राचीन नहीं हैं। फिर भी इस काल में मुण्डारी लोक साहित्य में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। जिसमें लोकगीतों की संख्या लोककथाओं से कहीं अधिक है। परन्तु मुण्डारी लोककथाओं की कहानी भी पुरानी है। मुण्डा संस्कृति में पर्व-त्योहार जैसे - सरहुल, मण्डा, कोदेलेटा या हरियाली पूजा, भेलवा पूजा, नवाखानी, करम, कोलोमसिङ या खलियान पूजा, माघ- फागुन इत्यादि के पीछे अपना महत्त्व है और उनकी अपनी लोककथाएँ भी हैं। इन पर्व-त्योहारों के संग-संग कई सामाजिक संस्कार एवं सांस्कृतिक रीति-रिवाज भी चलते रहते हैं। जैसे- करम पर्व मनाने या देखने जाने के बहाने लड़की देखना एवं शादी के लिए पसन्द की गई लड़की को लड़के वाले करमलिजः या करम किचिरि या वस्त्र पहुँचाते हैं। करम के दूसरे दिन करम टहनी बदलकर 'सहिया' जोड़ने का भी प्रचलन है। इसी प्रकार माघ पर्व के दूसरे दिन मुण्डा समाज में बच्चों का कनछेदी संस्कार किया जाता है। परन्तु सांस्कृतिक क्षेत्र में मुण्डारी लोक साहित्य की अधिक उपयोगिता लोकगीतों की रही है। धार्मिक कथाओं को छोड़कर प्राचीन कहानियाँ मनोरंजन के लिए हुआ करती थी। इसका उपयोग युवागृह में शाम को विश्राम की घड़ी में होता रहा है। धार्मिक कथाओं, गाथाओं एवं मंत्रों का उपयोग पूजा-पाठ के समय होता है। इसलिए मुण्डारी लोक साहित्य में सांस्कृतिक तथ्य प्रचुर मात्रा में इनके लोकगीतों में उपलब्ध हैं, उसके बाद गाथाओं, कथाओं एवं बुझौवलों में ये प्रतिबिम्बित हैं।

प्राचीन काल में मुण्डाओं का छोटानागपुर की अन्य जनजातियों के लोगों की भाँति ही, खेत बनाकर खेती करना ही मुख्य पेशा था। इनका कृषि कार्य भी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक आधार पर शुरू होता है और अन्त भी। इस युग में घर बनाने के लिए खेर काटना और खेत बनाना माघ

पर्व के बाद होता है। जैसा कि इससे सम्बन्धित एक लोकगीत हैः-

एलं हो मागे बसि दो	अर्थात्- हे बन्धु माघ के दूसरे दिन
दोलं हो सउड़ि इरते	हे बन्धु हम खेर काटेंगे
एलं हो मागे बसि दो	हे बन्धु माघ पर्व के दूसरे दिन
दोलं हो जरा मगे ते [42]	हे बन्धु हम वन साफ करेंगे।

होलिका दहन की रात मुण्डा लोग सेमल की दो डाली को, रास्ते के किनारे 'बोंगा फागू' के रूप में गाड़ते हैं। अन्य रास्तों के बीचों-बीच भी वे इसी प्रकार की डाली गाड़ते हुए खाने-पीने का पानी लेने वाले कुंए तक गाड़ते और काटते जाते हैं। 'बोंगा फागू' (जहाँ पूजा की जाती है) में पहान काला चेंगना चराकर खेर से बना कुम्बा या कुटी में छोड़ देता है और आग लगा दी जाती है। खेर तथा पुवाल लदा फागू जब जलने लगता है तब विजय घोष कर उसे काट दिया जाता है। इसके बाद फागू की टहनियों को दो-तीन फीट लम्बे आकार में काट लिया जाता है। तब एक आदमी उसे एक-एक करके अपने गाँव की चौहद्दी वाले गाँवों का नाम पुकारता और फेंकता हुआ कहता है- तेरा फलना हातु रेन होड़ोको, जिलु कपे डोंओःअ। अर्थात्- लो, अमुक गाँवों के लोगों! तुम्हें माँस नहीं होता है (जुटता है)। इसके बाद बारी-बारी से अन्य फागुओं को आग लगाते-काटते जाते हैं। अन्त में 'गड़ा-गड़ाते हरिमेया गोसाईं, टिकुरा रे सबि मेया गोसाईं, अलोम हियायोड़इया या गोसाई, सेरेदपटि और ते देःइ मेया गोसाईं।' अर्थात्- हे गोसाईं उसे नदी-नदी दौड़ाओ, टिकरा में उसे पकड़ लो, उससे खींचा-तानी मत करना, फटी चटाई लेकर उसमें, हे गोसाईं चढ़ जाना।....यह नारा लगाते लोग अखाड़े में आते हैं और रात भर नृत्य-गान चलता है। सवेरे या होलिका दहन के दूसरे दिन जोते हुए खेतों में किनारे-किनारे तथा बीचों-बीच एक बार या तीन बार हल चलाकर घेर देते हैं। इसे 'दुराड़ी', धुराड़ी या धुराइर कहते हैं। इसके बाद शिकार के लिए जंगल जाते है। शिकार जाने के समय स्त्रियाँ घर में ही रहती हैं। शिकार से वापस लौटने पर स्त्रियाँ अपने परिवार के सदस्यों के पैर धोती हैं।

होली या फागू पर्व के बाद सरहुल पर्व आता है। यह पर्व नव-वर्ष के रूप में धरती माता या प्रकृति की पूजा का पर्व है। सरहुल के बाद गोबर गढ़ा से गोबर गोड़ा जाता है। केरः मुण्डारी क्षेत्र में सरहुल के दूसरे दिन गाँव के सभी युवक मिलकर सब गोबर गढ़ा को कोड़ डालते हैं। इसमें नया दामाद

अनिवार्यतः शामिल होता है। गर्मी में ही मुण्डा पर्व पूरे छोटानागपुर में चैत से आषाढ़ माह तक अलग-अलग चाँद की तिथि के अनुसार मनाया जाता है। बरसात आने पर सर्वत्र खेती प्रारम्भ हो जाती है। परन्तु 'कादेलेटा' या हरियाली पूजा के बाद ही सुचारू रूप से सुबह-शाम हल जोतना और सुबह-शाम गोड़ा धान बुने खेतों से घास का निकावन करने की प्रथा है। धान रोपनी इस पूजा के बाद की जाती है। इसके पहले किसी का खेत तैयार हो जाता है, तब पहान को दान या पूजा स्वरूप एक रंगुवा अथवा लाल मुर्गा एवं हंड़िया दे देता है। भादो मास के आते गोड़ा-धान गोंदली पकने का समय आ जाता है। इसे घर लाने के पूर्व एक दिन नवाखानी की प्रथा है। यह नवाखानी गोड़ा-गोंदली का अलग-अलग किया जाता था। प्राचीन काल में रथ मेला या जगन्नाथपुर का ऐतिहासिक मेला होने तक गोंदली पक जाता था। इस मेले के दिन ही शादी में गड़े मण्डप उखाड़े जाते हैं। इस तरह की प्रथा सदानों में भी है। इस दिन वृक्ष जैसे- कटहल, पुटकल, पीपल आदि रोपने की प्रथा रही है तथा मेले से ढोल, नगाड़े तीर-धनुष, बक्से आदि सांस्कृतिक उपकरणें आज भी खरीदी जाती है।

इसके बाद सोहराई पर्व में कृषि के सम्पूर्ण उपकरणों की पूजा होती है। पशुधन की पूजा विशेष रूप मे होती है। क्योंकि इन्ही के द्वारा कृषि-उद्योग पूरा होता है। इसी दिन प्रत्येक घर में दोन का धान प्रवेश पाता है। इससे घर में लक्ष्मी प्रवेश करती है ऐसी मान्यता है। धान पकने पर कटनी होती है। तब खलिहान का सुखा-सजाकर 'एनपुना' या मिसनी शुरू की जाती है। इससे सम्बन्धित मंत्र की पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-

'जोअर सिमा रे सिङबोंगा! अङतनलेकम बोर रकब बोर हड़गुनताम। जुङका बोतोए, पलङ डडिंद, तुड़ि सुतम बदि बयर! हुंदि बा डटातेमा, उपलबा किउवतेमा। अमः मोचाते बोलजद कबुलजदमेअइङ। गेलबर लुतुरते, गेलबर मेदते, अयुमिङमे! बबा एंगा तलारे, गोदे एंगा तला रेञ रःजदमेअ!'' [43] अर्थात् - हे स्वगं के परम ईश्वर! प्रकाश के समान उदय होते और अस्त होते हो! कान में आभूषण पहने, तुड़ी का सूत और बादी की रस्सी! हून्दी फूल जैसे दाँत हैं, उपल फूल जैसे गाल हैं! मैं तुम्हें, तुम्हारे मुख से ही निकले शब्दों से सम्बोधित कर रहा हूँ, विनती कर रहा हूँ! तुम अपने बारह कानों से सुन लो, बारह आँखों से देख लो! मैं तुम्हें धान माता के बीच में, मड़ुवा माता के बीच

में बुला रहा हूँ।

प्राचीन काल में मुण्डा स्त्री-पुरुष तथा लड़के-लड़कियाँ सभी हाथ से बुने वस्त्र पहना करते थे। जिसे लहंगा, पड़िया, बोतोएः (करेया), पिचुड़ी (पेछौरी) इत्यादि के नाम से जाना जाता था। खोपा में डुरिया फीता होता था। पड़िया सफेद रंग का तथा पाड़ लाल होता था जिसमें कलात्मक आकृति लाल, पीला आदि रंगों की दी जाती थी। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोकगीत प्रस्तुत है :-

पड़िअ रिगि मिगिअ	अर्थात्- पड़िया (कपड़ा) नुकीला है
पड़िअम जलातिं तन	तुम्हारा कपड़ा उड़ रहा है
डुरिया जोलोमोलो हो	डुरिया (फीता) फरफरा रहा है
डुरियातम बुलतिं तन	तुम्हारा फीता फरफरा रहा है
पड़िया ओको कोरे हो	पड़िया कहाँ पर?
पड़िया तम जलातिं तन	तुम्हारा पड़िया उड़ रहा है
डुरिया चिमए कोरे हो	डुरिया कहाँ पर?
डुरिया तम बुलातिं तन	डुरिया लहरा रहा है
पड़िया सुसुन कोरे हो	पड़िया, नृत्य अखाड़े में
पड़िया तम जलातिं तन	तुम्हारा कपड़ा उड़ रहा है
डुरिया तम करम कोर हो	फीता, नाच अखड़े में
डुरिया तम बुलातिं तन [44]	तुम्हारा फीता लहरा रहा है।

उस युग में युवक-युवती एवं स्त्री-पुरुष सभी सोने-चाँदी की अंगूठी, कासी घास के पत्ते की माला 'कड़ेमाला' पहनते थे, सुदूर ग्रामों में आज भी यदा-कदा 'कड़ेमाला' के दर्शन सुलभ हैं। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोकगीत का अवलोकन अभिष्ट होगा :-

बलेः बलेः रेलं सोंगोति लेना	अर्थात्- हमारी संगति बचपन में हुई
नाःदो गतिकं बपगे तना	अब हम अलग हो रहे हैं
हुड़िं-हुड़िं रेलं सोंगोतिलेना	हमारी दोस्ती छोटी अवस्था में हुई
नाः दो संगाजलं रपड़ा तना	अब हम बिछुड़ रहे हैं।

नाःदो गतिञलं बपगे तना	अब हम दोनों अलग हो रहे हैं
तीरे मुंदम ओमाइञमे	तुम मुझे हाथ में अंगुठी दे दो
नाःदो संगाञलं रपड़ा तना	अब हम बिछुड़ रहे हैं
होटोःरे कड़े माला चेदञमे	तुम मुझे गले में कासी-माला दे दो
ओकोरे गतिंलं लेपेल रूड़ाः	हे प्रिय, हम फिर कहाँ मिलेंगे?
तीर मुंदम ओमञमे	तुम मुझे में अंगुठी दे दो
चिमए रे संगाञलं चिपिना रूड़ा	हे प्रिय, फिर हमारी भेंट कहाँ होगी?
होटोःरे कड़े माला चेदाञ मे [45]	तुम मुझे कासी-माला दे दो।

इस काल में भी इसी प्रकार स्त्रियाँ मोती के हार और शंखा चूड़ी पहनती थीं। इससे सम्बन्धित बहुत से लोकगीत है। एक जदुर लोकगीत इस प्रकार है :-

मंइना मुति हिसिर हिसिरेमे	अर्थात्- हे बेटी, मोती का हार पहनो
दो मंइना एंगाम कोतेलं	हे बेटी, तुम्हारे मायके जायेंगे
मर मंइना संकि सकोम सकोमेमे	हे बेटी, चूड़ी पहन लो
मर मंइना अपुमकोतेलं [46]	हे बेटी, तुम्हारे पिता-घर जायोंगे।

मुण्डा लड़की या स्त्रियाँ कान में ताड़ पत्ता का तड़कि या तरकी भी पहनती थी। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोकगीत इस प्रकार है -

तड़कि मंइना तड़कि	अर्थात्- देखो बेटी तरकी
तड़कि लेसेलेसे	तरकी झबराया हुआ है
मुण्डा होन तड़कि	मुण्डाओं की तरकी
तनम तड़कि	परम्परा की तरकी
किरिं अञमे एयां	हे माँ, मुझे खरीद दो
तड़कि लेसेलेसे	तरकी झबरा है
केजाञमे नपां	हे पिता, मुझे खरीद दो
जनम तड़कि	परम्परा की तरकी
चिते मइञ किरिंअम	हे बेटी, मैं किससे खरीद दूँगी?
तड़कि लेसेलेसे	झबराया हुआ तरकी
चीता बेटिञ केजाम	हे बेटी मैं किससे खरीद दूँगा?

जनम तड़कि [47] परम्परा की तरकी

प्राचीन काल में मुण्डा लोग 'तुकु' या मुसल से तथा ढेंकी से चावल बनाया या कुटा करते थे। इससे सम्बन्धित अनेकों लोकगीत हैं। एक जदुर राग के लोकगीत की कड़ियाँ कुछ इस प्रकार हैं :-

तिलासरि बबा चिमंइ तिरिल तुकु अर्थात्- तिलासार धान और केंद-मुसल
रूडुं तेगे मंइनम तिकिन जना हे बेटी, तुमने कूटते-कूटते दोपहर कर दी
ओड़ेया हटाः चिमंइ लेचेकोचे महली-सुपली टूटी-फटी है
गुगुम तेगे मंइनम तरसिंजना [48] हे बेटी, तुमने फटकते दोपहर कर दी।

धान कूटने के सम्बन्ध में कई बुझौवल भी हैं। जैसे-

"मियद होड़ो सेतःरेको पदइया"

अर्थात् एक आदमी को सुबह होते ही लात मारते हैं।

इसका मतलब है - ढेंकी।

"मियद उंडुरे बरिया बिंकिं उडुंओः बोलो तना" [49]

अर्थात्- एक बिल में दो साँप निकल-घुस रहे हैं।

इसका मतलब है - दो मूसल।

प्राचीन काल के पूर्व से ही मुण्डाओं में हंड़िया पीने तथा बनाने की प्रथा है। यह हंड़िया चावल को बिना माँड़ का खाना जैसा पकाकर ठण्ढाकर किलो मात्रा चावल के हिसाब से एक गोली हंड़िया दवा (रानू) उसमें चूरकर मिलाकर घड़ा में रख देने के बाद पाँच-छः दिनों में तैयार हो जाता है। यह हंड़िया मुण्डाओं का अपने पितरों को पवित्र करने का आकाशगंगा जल के समान रहा है। हिसाब से अच्छे व्यक्ति को पिला देने से उसकी अच्छाई निखर जाती है और थके व्यक्ति की थकावट दूर हो जाती है। अतः मुण्डा लोग हंड़िया मेहमानों को पिलाते थे। परिश्रम करने के बाद पर्व-त्योहारों में, शादी-विवाह के अवसरों में तथा सामाजिक, सांस्कृतिक सभाओं में हंड़िया बूढ़े-बुजुर्गों में उचित मात्रा में उपयोग किया जाता था। वर्त्तमान या आधुनिक युग की भाँति प्राचीन काल में बच्चा से लेकर बूढ़ा तक इसे नहीं पीते थे। बाजारों में, गाँव के गली-गली में हंड़िया-दारु का गोदाम नहीं मिलता था। बल्कि उस युग में हंड़िया बेचना एक घृणित एवं सामाजिक रूप से दण्डनीय काम समझा जाता था। युवक-युवतियों के लिए यह सर्वथा वर्जित था। पर्व-त्योहारों में भी वे दैनिक नृत्य-गान के राग-रस में ही मस्त रहते थे। एक

जदुर लोकगीत में हंड़िया का विवरण देखा जा सकता है:-

रनु बुल जना चिबु इलिबुल जन	अर्थात्- हम दवा से नशे में हैं या हंड़िया से
नेजोजोसुबा रेबु बियुरेन तना	इस इमली पेड़ के नीचे घूम रहे है
ने उलिसुबा रेबु सेकोरेन तना	इस आम पेड़ के नीचे घूम रहे हैं
रनुबुलकगे हो इलि बुल कागे	दवा का नशा भी नहीं, हंड़िया का नशा भी नहीं
रनुबुल जना चिबु इलि बुल जन	हम दवा से नशे में हैं या हंड़िया से
बियुरेन मेनाः गेबु बियुरेनतना	हम घूमने के लिए ही घूम रहे हैं
रनुबुल कागे हो इलिबुल कागे	दवा का नशा भी नहीं, हंड़िया का नशा भी नहीं
सेकोरेन मेनाःगेबु सेकोरेन तना	हम घूमने के लिए ही घूम रहे हैं
रसिका बुलगेदं हो चएला बुलगे	रसिक-नशा है बन्धुओं, छैला-नशा है
एना तेगे चबु बियुरेन तना	उसी से हम घूम रहे हैं
रसिका बुलगेदं हो चएला बुलगे	रसिक-नशा है बन्धुओं, छैला-नशा है
एना तेगे चाब सकोरेन तना 50.	उसी से हम सरक रहे हैं।

मुण्डाओं का कृषि कर्म प्राकृतिक ऋतु-क्रम के अनुसार गतिशील है। यहीं प्राकृतिक एवं आर्थिक गति के अनुरूप इनकी संस्कृति और पर्व-त्योहार के लोकगीतों का निर्माण होता है। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोक गीत :-

मागे फागुन रे	अर्थात्- माघ-फागुन माह में
जदुर ससुनु को	जदुरा का नाच करने वाले
असड़ा सावन रे	आषाढ़-सावन में
करम कोजोड़ो को	करम खेलने वाले
जदुर सुसुन को	जदुर-नाच करने वाले
लिटिः लोपोंङ	धूल-धूसरित हुआ करते हैं
करम कोजोड़ो को	करम नाचने वाले को
लटं कोयाङआ	टेढ़ा-मेढ़ा होना पड़ता है
जदुर सुसुन रे	जदुर नृत्य में
इसु होको उदर सोलकाः	बहुत ठेलम-ठेल होता है
करम कोजोड़ो रे	करम खेलने में

इसको दिर लटिःना [51] बहुत टेढ़ा-मेढ़ा होना पड़ता है।

मुण्डारी लोक साहित्य में लोकगीतों के बाद लोकगाथाओं में भी सांस्कृतिक तथ्य परिलक्षित होते हैं। इससे सम्बन्धित कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैंः-

लुटकुम हड़म लुटकम बुढ़िया अर्थात्- लुटकुम बूढ़ा, लुटकुम बुढ़िया
लेल बड़ा तना किन, सभी ओर देख रहे हैं,
चिना बड़ा तना किन सब तरफ खोज रहे हैं
पटिकिं लेलेया, चटाई देखते हैं,
पटियो परेःया कन चटाई भरा हुआ है
सेलकिन लेलेया, काँड़ी (ढेंकी अग्र गड्ढा) झांकते हैं,
पटियो पेरेःया कन वह भी भरा है

चटुकिन लेलेया, घड़ा देखते हैं,
चटु पेरेःया कन घड़ा भरा है
डटोमकिं लेलेया, बड़ी टोकरी देखते हैं,
डटोम परेःया कन [52] वह भी भरी है।

मुण्डारी लोकगाथाओं के अतिरिक्त लोककथाओं में भी सांस्कृतिक तथ्य भरे पड़े हैं। क्योंकि इसके अभाव में कथा हो ही नहीं सकती है। प्रायः सभी कहानियाँ संस्कृति के किसी न किसी पक्ष को अवश्य ही साथ लेकर चलती है। जैसे-"जीद दो नी जीद दड़ियोःअ, मेन्दो अमलों अड़ान्दी का होबा दडिओःअ। नेया नियाः मोलों रे ओला कना। आद जुदी नीम अड़ान्दी रेदो कएः टेकाओअ।"[53] अर्थात्- वह ठीक तो हो सकती है। मगर तुम्हारे साथ विवाह नहीं हो सकेगा। यह इसके भाग्य में लिखा हुआ है और यदि तुम इससे शादी कर लेते हो तो वह जिन्दा नहीं रह सकेगी।

प्राचीन काल में छोटानागपुर की धरती हीरों के लिए प्रसिद्ध थी। यहाँ की सारी जनता श्रृंगार प्रिय थी। सोना-चाँदी, हीरे- मोती के आभूषणों से विभूषित रहा करते थे यहाँ के लोग। छोटानागपुर की धरती अभी भी 'हीरा का टुकड़ा' ही है। आज भी इसे हीरानागपुर के नाम से पुकारा जाता है। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ इस प्रकार है- "हिराकुड़ी मजाए ओद नड़कान तना। गासिकुड़ी एनताः रेगेः दुब जना। खुगे चेनाः चेनाः कोकिन जगर तना। एनातेदोए मेतःइया 'ओतेगा नेया दो चिकन मुंदरा, देगो अञ मिसाञ मुन्दुरा

लेया चिलकञ लेलोःअ।''[54] अर्थात्-हीरा लड़की स्नान कर रही थी। घासी लड़की भी वहीं बैठ गई। दोनों बहुत गप-शप करने लगी। तब वह (घासी लड़की) बोली- हे सखी, यह तो कौन सा मुन्दरा (कान का आभूषण) है? दो ना सखी- मैं भी एक बार पहन लूँ, देखूँ तो सही, मैं कैसी लगूंगी?

''हीरा मुन्दरा किङनम केदचिकिङ हिजुः लेना। किमिन्ते हन्डेद कुराकनकिङ तेबाः लिःआ, पुसितकिन बोलो जना आद मुन्दुरा बिजला कोड़ाए ओमऐया।'' [55] अर्थात्-उन दोनों का हीरे का मुन्दरा (कान में पहनने वाला आभूषण) मिला और वे लौट आये। उनकी पतोहू दरवाजा बन्द किये हुई थी। उन दोनों की बिल्ली घुस गई और बिजना नामक युवक द्वारा उसे मुंदरा दे दिया।

अति प्राचीन काल में एक ही माता-पिता से जन्मे पुत्र अलग-अलग कामों से जाति या वर्ण कायम करते थे। पहले लिखा जा चुका है कि मुण्डओं का अति प्राचीन गोत्र हंस था, जिसकी संतान भिन्न-भिन्न गोत्र, जाति या वर्ण को स्वीकार कर छोटानागपुर में फैल गयी। इसी प्रकार असुर और मुण्डा भाई-भाई थे। लोहरा लोहा का काम करता था जो असुर का ही एक अवशेष है तथा पाँड़ या चिक कपड़ा बुनने वाले। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ इस प्रकार है- ''सुकन बुरु तैकेनाए बड़ाए आद कोरङ्ग बुरु तैकेनाउ पेंडाए। अकिन लड़ाई किन मोनेकेदा, सुसुनको रेयाः मेन्दो बड़ाए पुरःगे चइलेन तइकेना। करतल तीरेः सबेया ओड़ोः कुमुड़ी रे ताल कटा रे गुगुरा होटोःरे दुमङ आर रूपी रे सण्डी सिम।'' [56] अर्थात्- पहले सुकन पहाड़ एक लोहरा और कोरांग पहाड़ एक स्वाँसी था। दोनों के मध्य एक बार नृत्य-संगीत युद्ध या वाद-विवाद तय हुआ। लोहरा सदा तड़क भड़क में रहता था। उसे नाचने गाने का बड़ा शौक था। वह बराबर हाथ में झाँझ, पैर में घुंघरू, गले में मांदर और कंधे पर मुर्गा लिए नाचने को तैयार रहता था।

इसी प्रकार मुण्डारी लोक साहित्य के प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत खेलगीत एवं बुझवलों में भी सांस्कृतिक तथ्य है। ये गीत तथा बुझौवल भी संस्कृति के समस्त अंगों से ही निर्मित होते हैं। जैसे-'कटा रेअः अन्दु मोयोद गेया'। अर्थात्- पैर का पहनने वाला (आभूषण, पैंयरी) या अन्दु एक ही है 'कोते कुड़िम सेनोःतनापोलातम जिड़िप-जिड़िप' अर्थात्- हे लड़की कहाँ जा रही हो? तुम्हारे नुपूर झिड़िप-झिड़िप अवाज करते हैं।

उपर्युक्त खेलगीतों के अलावे निम्नलिखित बुझौवल देखे जा सकते हैं-
'चेतन रे अड़कटा, बितर रे केचोः' [57]
अर्थात्- ऊपर में काँड़ और अन्दर में खपड़ा।
इसका तात्पर्य है - गुंगू।
'चटु चटु तिरिंअ कना' [58]
अर्थात्- घड़े के ऊपर घड़ा है इसका मतलब हुआ - हुक्का।
'जरगि हेटेटेयोद मियदगेः कटा कना।' [59]
अर्थात्- बरसात का हेटेटेयोद पक्षी का एक ही पैर है।
इसका अर्थ हुआ - बाँस का छाता।
'मःतइ पोटःतइ तोपातःइ निःए रःया।' [60]
अर्थात्- काटा हुआ, छीला हुआ, ढँका हुआ रोता है।
इसका अर्थ है - 'ढोलक'।

अन्य तथ्य

धार्मिक तथ्य

प्राचीन काल में भी मुण्डाओं का जीवन पूर्ण रूप से धर्मिक था। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आदि धर्म के बिना कोई भी कार्यक्रम साकार नहीं हो पाता था।

अब उपर्युक्त किसी एक तथ्य को लेकर उसमें धर्म का स्थान दर्शाने के लिए हम आर्थिक तथ्य को लें। आर्थिक चाहे कृषि कर्म हो या शिकार, जिसका प्रारम्भ पूजा-अनुष्ठान के द्वारा किया जाता रहा है। शिकार से सम्बन्धित मंत्र की पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं- ''सेन्दरा रे नितिररे रूसोद दल सोदको काले! तुइङ जिलुदा'' [61] अर्थात्- हम शिकार में शिकार की अवाज की सूचना मिलते ही उसे मार सकें। हमें तीर से मारा माँस दो।

शिकार के दौरान शिकार के न मिलने या दर्शन न होने पर शिकारीगण किसी जगह एकत्रित हो बैठकर खैनी बाँट-खाकर सगुन बनाते हैं। ऐसे ही किसी बड़े पेड़ के चिड़ियों या भौंरा आदि को पकड़ने के लिए उस वृक्ष के देवता के नाम से काली कटली (मुर्गी) की बलि देने के बाद (पहले) करते थे। ऐसा नहीं करने से उस पेड़ में निवास करने वाला देव उस काम

को सफल नहीं होने देता था।

कृषि का प्रारम्भ सरहुल पर्व के बाद होता है। इस पर्व में पूजा के लिए नया सूप, नई टोकरी का भी होना जरूरी है। इसी में पूजा के फूल-पत्ते, पुआ-पकवान रखकर पूजा में चढ़या जाता रहा है। धान बोने के समय इसी सूपली से बीज या धान बुनी पर्व मनाते हैं। इस दिन भात, उरद दाल में मुनगा (सहजन) के पत्ते मिलाये जाते हैं और पूर्वजों के नाम से हंड़िया अर्पण करते हैं। इससे सम्बन्धित धन्यवाद ज्ञापन की पंक्तियाँ हैं- "ए हले हगाको तबु, अबुअः हगा तिसङए हेरपुना केना, आद हड़मकोअः नेग लेका मोद पुड्ड सबाःए तिहातदा। दे हगाकोलोःले जोम नू लेअ मेनते। का दड़ितना रे दो काओ तिहा दड़िओःअ। अलो हड़मए लिबुइकेदा मेनतेगे नमजना। नाःदो अबुअः गोवरिदो नेअगे, हड़ कड़ा- उरिः नयल पाल, हिता-रनु सोबेनए ओमाबु तना आदबु हेरजदा नाः दो मर लोयोगरेओए ओमाबुका, अबुअः पेड़ेः तेदे जेतनः का होबा दड़िओःअ जां इमिनंबु सियुः चलुः लेरे आद जाँ इमिनङ साराएरे, जाँ इमिनं जेता लेकान बुगिन हिता रनु हेरे रेओ हड़मए देअ कुंड़म केबुका ओड़ोः मिद कंड़ां दोकाराओ का होबा होबाओःअ।" [62] अर्थात्- हे बन्धुओं! हमारे भाई! आज हम बुना पर्व मना रहे हैं। पूर्वजों के नेग के अनुसार उसने एक दोना हंड़िया का इन्तजाम किया है कि हम भाइयों के साथ खा-पी सकें। औकात नहीं होने पर तो नहीं भी जुटाया जा सकता है। लेकिन बूढ़ा अर्थात्-'सिंङबोंगा' की कृपा है। अब हमारी उनसे यही प्रार्थना है कि हमें बूढ़ा, काड़ा, बौल, हल, फाल, बीज और दवा हमें सब कुछ दें। हम बीज बो रहे हैं। अब वह हमें दोन भी दें। हमारी इच्छा शक्ति के अनुसार तो कुछ नहीं होता है। कितना ही जोत-कोड़ क्यों न करें, कितना ही खाद एवं अच्छे बीज क्यों न प्रयोग करें, बूढ़ा हमें छोड़ दे तो एक दोकड़ा (पैसा) भी नहीं मिलेगा।

आषाढ़ माह के पहले सप्ताह में 'कोदेलेटा' पर्व या हरियाली पूजा होती है। जिसे मुण्डा लोग 'होनबा' अर्थात्- 'छोटा सरहुल' भी कहते हैं। इसमें पहान-पहनाइन द्वारा 'जयर' में पूजा होती है। पहले लिखा जा चुका है कि हरियाली पूजा के बाद ही नियमित रूप से खेती-बारी का काम चलता रहा है।

जब धनरोपनी का समय आता है तब यह काम भी धार्मिक आधार पर प्रारम्भ किया जाता है। रोपा रोपने के पहले दिन बीड़ा या तैयार धान के

पौधे को उखाड़कर बंधे तीन गुच्छों को थाली में रखकर घर की प्रधान महिला घर ले आती है घर में पूजा स्थल में रखकर दियावटी में दीप जलाकर, एक दोना धान, एक दोना उरद, एक दोना अरवा चावल लेकर पौधा में सिन्दूर टीका लगाकर धुवन धूप एवं पूजा-पाठ अर्थात् चुमावन कर थाली में खेत ले जाती है। तैयार खेत में पूरब की ओर मुँह करके एक जगह आड़ में पूजा सजाकर तीनों गुच्छे धाने के पौधों को वह रोप देती है। रोपनी के प्रथम दिन रोपा के लिए आई स्त्रियों को तेल-सिन्दूर खेत के पास ही वह देती है। सभी महिलाएँ अपनी सुविधानुसार तेल-सिन्दूर बाल बनाकर मांग में सिन्दूर भरती हैं और समय पर खेत में रोपा रोपने लग जाती हैं। रोपनी के साथ ही साथ गीत गोविन्द का सांस्कृतिक कार्यक्रम भी चलता है। खत्म होने के पहले युवतियाँ रोपा खेत में ही शादी मड़वा जैसा धान के पौधों का मण्डप गाड़ती हैं। इस मण्डप में नृत्य-गान करती हैं और अन्त में कीचड़ का फूल बाँटती हैं। फिर उन स्थानों में रोपा रोपकर नहा-धोकर घर आती हैं। रात में रोपा रोपने वालों को रोपा हंड़िया दिया जाता रहा है। इसमें भी अन्त में 'जोअर-जगर' या धन्यवाद ज्ञापन किया जाता है।

खरीफ की खेती लगाने की समाप्ति और खेतों में लहलहाती खेती के बाद गोंदली-गोड़ा धान पकने लगते हैं। मानो 'करम राजा' परदेश से देश अर्थात्- गाँव पहुँच चुके हों। भादो में गोंदली-गोड़ा का नवाखानी होता है। नवमी-दसमी को भेलवा-पूजा या 'सोसोबोंगा' किया जाता है तथा सुबह खेतों में भेलवा, केंद, साल आदि की छोटी-छोटी एक-एक डाली खेतों में गाड़ना करम राजा का स्वागत है। भादो एकादशी को करम पर्व या करम पूजा करम राजा के आगमन तथा 'करम-धरम' के वापसी मिलन का उल्लासमय त्योहार है। तभी तो कहा गया है 'कर्म ही धर्म है'। करम के दूसरे दिन इन्द मेला होता है। इन्द देखने के पश्चात् भी करम गाड़ने का प्रचलन है। इसे इन्दीकरम भी कहा जाता है।

छोटानागपुर के आदिवासियों का ऐसा विश्वास है कि करम, जितिया एवं दशहरा पर्वों का ढोल-ढाँक सुनने के बाद दोन के धान फूटने लगते हैं। करम पर्व का 'जावा' कृषि का बिरवा ही होता है। जावा जगाना कथा-गीत कृषि वंदना है। इस जावा में धान के पौधे गाड़े जाते हैं तथा अन्य का जैसे- मकई, उरद, कुरथी, सुरगुजा, सरसों और मंडुआ के बीज नदी के बालू में

विधिवत् बोए जाते हैं।

करम के पश्चात सोहराई का पर्व आता है। कार्तिक अमावस्या को लक्ष्मी की पूजा होती है। इस रात को लक्ष्मी घर-घर में प्रवेश करती है। जिसे गाँव में युवक मण्डली घर-घर गाजे बाजे के साथ पहुँचाते हैं। लक्ष्मी की वन्दना गीतों से की जाती है। इसी रात में 'जरगा' गीत-नृत्य आरम्भ किया जाता है। जैसे -

लखि आर लछमीकिन	अर्थात्- लखी और लक्ष्मी
बबा बा रेकिना -2	धान के फूल में हैं
पेण्डे आर पेरेंड़ेकिन	पेण्डे और पेरेंड़े (अर्थात्-पूर्वज)
बेण्डे बा रिकिना -2	बेण्डे (गोन्दली जो कार्तिक माह में पकता है) के फूल में हैं।

धान या लक्ष्मी की एक सुसर्जित युवती के रूप में भी वन्दना की जाती है। सरहुल पूजा या सूर्य-धरती की शादी में सुपली और टोकरी मिली थी। जिसके द्वारा जोते खेतों की धूल में वह क्रीड़ा करती थी। जिसके कारण सुपली और टोकरी टूट फट गई । वह लक्ष्मी आज घर-घर में प्रवेश कर रही है। जिसको युवक नाचते गाते घर-घर पहुँचाते जाते हैं। घर में स्त्रियाँ उसका स्वागत करती हैं। इससे सम्बन्धित एक प्रासंगिक जरगा गीत-

ओकोरे बिन्दी रे	अर्थात्- हे बिन्दी, तुम कहाँ?
बिन्दीम इनुंकेना-2	हे बिन्दी, तुम खेली थी?
चिमए रे बिन्दी रे	हे बिन्दी, तुम कहाँ?
बिन्दीम खेलाड़ि केना-2	हे बिन्दी, तुम नृत्य की थी?
हटिया दुड़ा रे	(जोते खेत) की धूल में
बिन्दीम इनुंकेना-2	हे बिन्दी, तुम खेली थी?
नयलगड़ा रे	हल के गड्ढे में
बिन्दीम खेलाड़ि केना-2	हे बिन्दी तुम खेली थी
टुपाः होनते	टोकरी से
बिन्दीम इनुं केना-2	हे बिन्दी, तुम खेली थी
हटाः होनते	सुपली से

बिन्दीम खेलाड़ि केना-2	हे बिन्दी, तुम खेली थी
टुपाः होन दो	वह टोकरी तो
बिन्दी चेचा जना-2	हे बिन्दी, फट गई
हटाः होनदो	वह सुपली तो
बिन्दी रोचोद जना-2 [63]	हे बिन्दी, टूट गई

सोहराई या दीपावली पर्व के दूसरे-तीसरे दिन कई गाँव मिलकर एक गाँव में सोहराई मेला लगाते हैं। इसे डाइर भी कहा जाता है। किसी-किसी गाँव में सोहराई के दूसरे दिन करम गाड़ा जाता है। इसे सोहराई करम कहा जाता है। छोटानागपुर का सबसे बड़ा और मुख्य ऐतिहासिक मेलों में 'मुड़मा जतरा' है। फिर धान पकने पर काटने के बाद खलियान में मिसना पर्व, पहान के द्वारा कोलोमसिङ या खलियानी पूजा और माघ पर्व के साथ खेती बारी का कार्यक्रम का एक दौर समाप्त हो जाता है।

संदर्भ स्रोत :

1. विश्वनाथ तिवारी, विश्व इतिहास प्रवेश, पटना, 1990, पृष्ठ - 44
2. - वही
3. डॉ. बी. पी. केशरी, छोटानागपुर का इतिहास, कुछ सूत्र-कुछ सन्दर्भ, राँची, 1979, पृष्ठ - 13
4. - वही
5. - वही, विषय सूची से
6. डॉ. उमेश कुमार वर्मा, लेख-राँची जिला के कुछ ऐतिहासिक धार्मिक स्थल, आदिवासी, राँची, 1998, पृष्ठ - 30
7. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 69
8. डॉ. आदित्य प्रसाद सिन्हा, हो लोक कथा, वाराणसी, 1972, पृष्ठ - 118
9. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 232
10. निकोदीम केरकेट्टा, कुदुम, राँची, 1995, पृष्ठ - 66
11. - वही
12. डॉ. आदित्य प्रसाद सिन्हा, हो लोक कथा, वाराणसी, 1972, पृष्ठ - 14
13. प्रभात खबर, राँची, 21 अप्रील 1999, पृष्ठ - 4
14. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 63
15. डॉ. दिलवर हंस, होड़ो जगर रेअः एतेहइसि नंगम, राँची, 1989, पृष्ठ - 92
16. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 151
17. एम. एम. मुण्डू, मुण्डा कुदुम ओड़ोः सोलोको, पटना, 1980, पृष्ठ - 249

17 क. जोसेफ कण्डुलना, छोटानागपुर के आदिवासी और उनके गोत्र, राँची, 1994, पृष्ठ - 8, 9

- - वही

18. - वही, पृष्ठ - 9
19. पृष्ठ - 10, 11
20. डॉ. उमेश कुमार वर्मा, लेख-राँची जिला के कुछ ऐतिहासिक धार्मिक स्थल, आदिवासी, राँची, 1998, पृष्ठ - 29
21. डॉ. नागेश्वर लाल, मुण्डारी और उसकी कविता, पटना, 1980, पृष्ठ - 14
22. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 509
23. बि. लकड़ा, लेख-बुधु भगत के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध छोटानागपुर के आदिवासियों का एक विद्रोह, आदिवासी, राँची, 1998, पृष्ठ - 23

23 क. डॉ. उमेश कुमार वर्मा, लेख-राँची जिला के कुछ ऐतिहासिक धार्मिक स्थल, आदिवासी, राँची, 1998, पृष्ठ - 34

24. - वही
25. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 26
26. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 137

27. - वही, पृष्ठ - 135
28. राँची सेंणा समइति, होड़ो जगर इतुपुथि, राँची, 1984, पृष्ठ - 27
29. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 459
30. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 16
31. एन. ई. होरो, सारजोम बा, राँची, 1976, पृष्ठ - 05
32. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 290, 250
33. राँची विश्वविद्यालय, राँची, 1976, पृष्ठ - 04
34. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 251
35. - वही, पृष्ठ - 438
36. - वही, पृष्ठ - 427
37. दिलवर हंस, होड़ो जगर रेअः एतेहइसि नंगम, राँची, 1989, पृष्ठ - 113
38. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 87
39. मेनस ओड़ेया, मतुराः कानि, राँची, 1980, पृष्ठ - 220, 221
40. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 02
41. भइयाराम मुण्डा, दंड़ां जमाकन कानिको, पटना, 1960, पृष्ठ - 38
42. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 20
43. राँची विश्वविद्यालय, राँची, 1976, पृष्ठ - 04
44. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 176
45. - वही, पृष्ठ - 85
46. - वही, पृष्ठ - 69
47. - वही, पृष्ठ - 58
48. - वही, पृष्ठ - 59
49. - वही, पृष्ठ - 433
50. - वही, पृष्ठ - 106
51. - वही, पृष्ठ - 97
52. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 158
53. भइयाराम मुण्डा, दंड़ां जमाकन कानिको, पटना, 1960, पृष्ठ - 137
54. - वही, पृष्ठ - 109
55. - वही, पृष्ठ - 116, 117
56. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 503
57. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 429
58. - वही, पृष्ठ - 428
59. - वही, पृष्ठ - 429
60. - वही, पृष्ठ - 432
61. राँची विश्वविद्यालय, राँची, सारजोम बा, 1976, पृष्ठ - 03
62. - वही, पृष्ठ - 01
63. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 387

मुण्डारी लोक साहित्य में मध्यकालीन ऐतिहासिक तथ्य

मध्यकालीन इतिहास का तात्पर्य

मानव सभ्यता के विकास के आधार पर अध्ययन की सुविधा के लिए इतिहास को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया गया है - 1. प्राचीन काल, 2. मध्य काल और 3. आधुनिक काल। इस तरह प्राचीन काल तथा आधुनिक काल के बीच की अवधि मध्य काल है। [1]

काल का विभाजन सभी क्षेत्रों में उत्पन्न उन व्यापक परिवर्त्तनों के आधार पर किया जाता है जो एक युग की समाप्ति तथा दूसरे युग के आगमन को सूचित करते हैं। यहाँ यह भी जान लेना आवश्यक है कि विश्व के सभी देशों में प्राचीन काल की समाप्ति और मध्य काल का आगमन एक साथ नहीं हुआ है। पश्चिमी जगत में 500 ई0 से लेकर 1500 ई0 तक की अवधि को मध्य काल माना जाता है। पर, भारतीय इतिहास में आठवीं शाताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक के समय को मध्य काल कहा जाता है। [2]

इतिहासकारों ने अध्ययन की सुविधा के लिए मध्य काल को दो भागों में बाँटा है- पूर्व मध्य काल और उत्तर मध्य काल।

पश्चिमी जगत में मध्यकाल- (1). पूर्व मध्य काल -500 ई0 से 1000 ई0 तक के बीच की अवधि को यूरोप के देशों में पूर्व मध्य काल माना जाता है। इसे अंधकार युग भी कहा जाता है क्योंकि इस युग में पश्चिमी यूरोप में चारों ओर विश्रृंखलता और निराशा थी। (2). उत्तर मध्य काल- 1000 ई0 से लेकर 1500 ई0 (पुनर्जागरण काल तक) की अवधि को उत्तर मध्य काल कहा जाता है। पुनर्जागरण काल से ही यूरोप में आधुनिक युग का आगमन हुआ।

भारतीय इतिहास में मध्य काल

जैसा कि ऊपर कहा गया है, भारत के इतिहास में आठवीं शताब्दी को मध्य काल का आरम्भ और अठारहवीं शताब्दी को उसका अंत मान लिया गया हैं। हर्षवर्द्धन की मृत्यु (647 ई0) बाद भारत के राजनीतिक-क्षेत्र में काफी परिवर्त्तन होने लगे, जिनका प्रभाव आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों पर पड़ा। आठवीं शताब्दी में इन परिवर्त्तनों के प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगे। इसलिए आठवीं शताब्दी को मध्य काल का आरम्भ माना जाता है।

औरंगजेब की मृत्यु 1707 ई0 में हुई। उसके बाद मुगल साम्राज्य का पतन आरम्भ हुआ। मुगलों के पतन एवं अंग्रेजों के उत्कर्ष के फलस्वरूप अठारहवीं शताब्दी को मध्य काल का अंत माना जाता है। इस काल के इतिहास को अध्ययन करने की सुविधा लिए इसे दो भागों में बाँटा गया है-

(1). पूर्व मध्य काल- आठवीं शताब्दी से तेरहवहीं शताब्दी तक की अवधि को पूर्व मध्य काल कहा जाता है।

भारत के इतिहास में पूर्व मध्य काल के अन्तर्गत प्रतिहार, पाल, राष्ट्रकूट राजाओं के शासन काल, उनके द्वारा कन्नौज के लिए किए गए पारस्परिक संघर्ष तथा उत्तर भारत के राजपूत राज्यों और दक्षिण भारत के चोल साम्राज्य का इतिहास आता है।

(2). उत्तर मध्य काल- तेरहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक की अवधि को उत्तर मध्य काल कहा जाता है। इसको भी निम्नलिखित दो भागों में बाँटा गया है-

(क). सल्तनत काल- 1206 ई0 से लेकर 1526 ई0 तक की अवधि को सल्तनत काल कहा जाता है। इस काल के अंतर्गत दिल्ली के सुल्तानों, बहमनों और विजय नगर राज्यों का इतिहास प्रमुख है।

(ख). मुगल काल- 1526 ई0 में पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर ने इब्राहिम लोदी को पराजित कर भारतवर्ष में मुगल वंश की स्थापना की। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का पतन आरम्भ हुआ और अंग्रेजों का उत्कर्ष होने लगा। अतः 1526 ई0 से लेकर अंग्रेजी राज्य की स्थापना तक की अवधि को मुगल काल कहा जाता है। इसके अन्तर्गत केवल मुगल साम्राज्य का ही इतिहास है। [3]

उपर्युक्त 'मध्यकालीन इतिहास का तात्पर्य' के आधार पर हम नीचे झारखण्ड तथा यहाँ की मुण्डा जाति के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और अन्य तथ्यों का अध्ययन करेंगे।

राजनैतिक तथ्य

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, काल का विभाजन सभी क्षेत्रों में उत्पन्न उन व्यापक परिवर्तनों के आधार पर किया जाता है, जो एक युग की समाप्ति तथा दूसरे युग के आगमन को सूचित करते हैं। यहाँ यह भी जान लेना आवश्यक है कि विश्व के सभी देशों में प्राचीन काल की समाप्ति और मध्य काल का आगमन एक साथ नहीं हुआ।

इसी भाँति छोटानागपुर का 'मुण्डा राजा, मदरा मुण्डा के बाद राजा का निर्वाचन परम्परा के अनुसार मुण्डा, मानकी एवं पड़हा राजाओं ने मदरा मुण्डा (हंस गोत्र) के बालपोस बेटा फणिमुकुट राय को राजा बनाया। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :-

लालन पालन पुत्र समाना
कोन्हेड मो अति प्रेम निधाना।
या विधि वीति गयी कछु कान्ता
एक दिन बोह विज्ञ नृपाला (54)

दूबे और पुरोहत पाशा
मदरा मुण्डा वचन प्रकाशा

अहिवंशोकह पुत्र मतिमाना (55) [4]

"एन दिपिली मुण्डा कोअः राज्य नागवंशी राजा कोवाः तीरे सेनोः ऐटेः जना।" [5] अर्थात्- उसी समय से मुण्डाओं का राज्य नागवंशी लोगों के हाथ में चला गया।

"संवत् 61 साल मंगार दिन तइकेना।" [6] अर्थात्- 61 या सन् 100 ई0 के मंगलवार का दिन था। (कहीं-कहीं 64 ए.डी. का उल्लेख मिलता है।) [7] फिर "हांलाकि मिस्टर रीड़ आपन सेट्लमेन्ट रिपोर्ट कर अनुवाद कइर हयँ कि नागवंशी राजा मनकर शासन काल कर आरम्भ दशवीं शताब्दी में होय होई।"[8]

अतः नागवंशी राजाओं में फणिमुकुट राय पहले राजा थे और मदरा मुण्डा, मुण्डाओं के अन्तिम राजा। क्योंकि फणिमुकुट राय के राजा बनाये जाने के दिन यह भी निश्चित हो गया कि *"तिसिं आते मुण्डाकोअः राज्य टुण्डु जना। सोबेन नगावासिया को लतर रेगेबु तइना। मुकुट राय हुड़िं राजाएः तइन जना ओड़ोः इनिःत गे मालगुजारी को ओमकेदा मेन्दो नयोको रोद केदा चि नागवंशी को चिहुला ओतेरेन किसन अलोकको तैनका मेन्ते टुण्डु रेको फैसला केदा।"* [9] अर्थात्- आज से मुण्डाओं के राज्य का अन्त हो गया। हम नागवंशी राजाओं के नीचे ही रहेंगे। मुकुट राय छोटा राजा के रूप में रहा और इसी के पास जमीन की मालगुजारी (चन्दा स्वरूप पूजा, पर्व-त्योहारों में) जमा होता रहा।

नागवंशावली के आधार पर पहले नागवंशी राजा फणिमुकुट राय हुए। तब से 1787 ई0 तक झारखण्ड में नागवंशी राजाओं का शासन रहा। नागवंशी कुर्सीनामा के अनुसार इसका विवरण इस प्रकार हैः-

क्रमः	**राजा**	**राज्यरोहण वर्ष**	**शासन वर्ष**	**शासन का अन्तिम वर्ष**
1.	फणिमुकुट राय	83 ई0	94	177 ई0
2.	मुकुट राय	177 ई0	55	232 ई0
3.	घंट राय	232 ई0	41	273 ई0
4.	मदन राय	273 ई0	53	326 ई0
5.	प्रताप राय	326 ई0	27	353 ई0
6.	कन्दर्प राय	353 ई0	38	391 ई0

7.	उदयमणि राय	391 ई0	25	416 ई0
8.	जय मणि राय	416 ई0	39	445 ई0
9.	श्रीमणि राय	445 ई0	35	480 ई0
10.	फणि राय	480 ई0	46	526 ई0
11.	उदय राय	526 ई0	21	548 ई0
12.	मंदु राय	548 ई0	15	563 ई0
13.	हरि राय	563 ई0	38	601 ई0
14.	गजराज राय	601 ई0	26	627 ई0
15.	सुन्दर राय	627 ई0	08	635 ई0
16.	मुकुन्द राय	635 ई0	18	653 ई0
17.	उदय राय	653 ई0	57	710 ई0
18.	कन्दन राय	710 ई0	46	756 ई0
19.	जगन राय	756 ई0	16	772 ई0
20.	मगन राय	772 ई0	39	811 ई0
21.	मोहन राय	811 ई0	56	869 ई0
22.	गजघंट राय	869 ई0	36	905 ई0
23.	चन्द्र राय	905 ई0	27	932 ई0
24.	अन्दु राय	932 ई0	37	969 ई0
25.	श्रीपति राय	969 ई0	28	997 ई0
26.	जोगंद राय	997 ई0	07	1004 ई0
27.	नृपेन्द्र राय	1004 ई0	43	1047 ई0
28.	गन्धर्व राय	1047 ई0	51	1098 ई0
29.	भीम कर्ण	1098 ई0	34	1132 ई0
30.	जोश कर्ण	1132 ई0	48	1180 ई0
31.	जल कर्ण	1180 ई0	38	1218 ई0
32.	गो कर्ण	1218 ई0	18	1236 ई0
33.	हरि कर्ण	1236 ई0	31	1267 ई0
34.	सेवा कर्ण	1267 ई0	38	1305 ई0
35.	बेनु कर्ण	1305 ई0	27	1332 ई0
36.	रेणु कर्ण	1332 ई0	28	1360 ई0

37.	तेहले कर्ण	1360 ई0	07	1367 ई0
38.	शिवदास कर्ण	1367 ई0	16	1383 ई0
39.	उदय कर्ण	1383 ई0	50	1433 ई0
40.	विरूपी कर्ण	1433 ई0	38	1451 ई0
41.	प्रताप कर्ण	1451 ई0	18	1469 ई0
42.	चता कर्ण	1469 ई0	27	1496 ई0
43.	विराट कर्ण	1496 ई0	05	1501 ई0
44.	पनकेतु साय	1501 ई0	11	1512 ई0
45.	वैरी साल	1512 ई0	18	1530 ई0
46.	मधुकर शाही	1568 ई0	15	1583 ई0
48.	देव शाही	1583 ई0	37	1620 ई0
49.	वाम शाही	1620 ई0	25	1645 ई0
50.	रघुनाथ शाही	1645 ई0	60	1705 ई0
51.	मदुनाथ शाही	1705 ई0	18	1723 ई0
52.	शिवनाथ शाही	1723 ई0	09	1732 ई0
53.	श्याम सुन्दर शाही	732 ई0	05	1737 ई0
54.	उदय नाथ शाही	1737 ई0	07	1744 ई0
55.	बिल्लो राम शाही	1744 ई0	03	1747 ई0
56.	मनमथ शाही	1747 ई0	14	1761 ई0
57.	दृपनाथ शाही	1761 ई0	26	1787 ई0

इसके पश्चात देवनाथ शाही, गोविन्द नाथ शाही, जगन्नाथ शाही और प्रताप उदयनाथ शाही ने राज्य किया। अन्तिम राजा चिन्तामणि शरण नाथ शाहदेव के समय जमीन्दारी उन्मूलन के क्रम में इस शासन परम्परा का विसर्जन हुआ। [10]

मुण्डा राजाओं की राजधानी सुतियाम्बे थी। अतः नागवंशी राजाओं की प्रथम राजधानी भी सुतियाम्बे थी। इन नागवंशी राजाओं ने मुगलों से बचने के लिए उसी तरह राजधानी बदलने लगे जिस तरह .... ‘ जे लखे मोगलमन कभी दिल्ली आउर आगरा के आपन राजधानी बनात रहँय, सेहे लेखे इहाँ भी राजामन राजधानी बदलेक शुरू करलँय। हाँलाकि ई बदलाव कर आपन राजनीतिके आउर सामरिक कारण भी रहे। कोकराह (खुखरा) कर बाद

डोइसा के आउर तले पालकोट के नागवंशी राजामन आपन गेलक। आगे चईल के जब मोगल समराट शाह आलम द्वितीय 1765 में बिहार, बंगाल, उड़ीसा कर दिवानी इस्ट इण्डिया कम्पनी के सोंपलँय.....।'[11]

छोटानागपुर में फणिमुकुट राय के राजा बनने के साथ-ही-साथ पहले अध्याय में दिये गये मुण्डा राजाओं के सभी छोटे-बड़े गढ़ों में प्रायः नागवंशी राजा बन बैठे। इन नागवंशी राजाओं का (मुख्य उत्तराधिकारी को छोड़कर) क्रमिक लिखित विवरण नहीं मिलता है। फिर भी मुण्डाओं का राज्य नागवंशी राजाओं के हाथ में हस्तांतरित होने के इसी परिवर्तन के साथ ही झारखण्ड की राजनीति के एक अध्याय का अन्त हुआ या एक युग के अन्त और दूसरे युग में प्रवेश या मध्य काल का आरम्भ माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में झारखण्ड प्रदेश में मध्य काल का आरम्भ नागवंशी राजा फणिमुकुट राय के शासन आरम्भ करने के साथ ही होता है। यह काल 100 ई0 का है, इसे भारतीय इतिहास के पूर्व मध्य काल या राजपूत काल का आरम्भिक काल का एक हिस्सा माना जा सकता है। छोटानागपुर में अंग्रेजों के आने तक के समय को मध्य काल का अन्त माना जाता है।

अध्ययन की सुविधा के लिए भारतीय इतिहास के मध्य काल को दो भागों में बाँटा गया है- **(क). पूर्वमध्य काल** (650 ई0 से 1200 ई0) तथा **(ख). उत्तर मध्य काल** (1200 ई0 से 1750 ई0 तक)। इसी आधार पर छोटानागपुर के मध्यकालीन इतिहास को यथावत रखा जा सकता है। 'छोटानागपुर का इतिहास, कुछ सूत्र, कुद सन्दर्भ' में डॉ0 विसेश्वर प्रसाद केशरी ने छोटानागपुर के मध्यकालीन इतिहास को भी दो भागों में विभक्त किया है- (1). पूर्व मध्य काल 100 ई0 से 1200 ई0 और (2). उत्तर मध्य काल 1200 ई0 से 1765 ई0 तक।[12]

पूर्व मध्य काल के राजनैतिक इतिहास के अध्ययन से निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं -

''**(क) हर्षवर्द्धन के बाद का उत्तर भारत** - इस काल में उत्तर भारत की केन्द्रीय शक्ति की कमी रही और अनेक क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ। इस सभी राज्यों के संस्थापक प्रायः राजपूत थे। इसलिए इस युग को 'राजपूत युग' कहा जाता है। उन दिनों उत्तर भारत के प्रधान क्षेत्रीय राजवंश थे, मिर्जापुर, गढ़वाल, दिल्ली के चौहान, मालवा के परमार, बकुदेलखण्ड के

चन्देल, गुजरात के सोलंकी, बंगाल के पाल और गुर्जर प्रदेश (मध्य प्रदेश) के प्रतिहार।

(ख) हर्ष के बाद दक्षिण भारत - दक्षिण भारत में भी अनेक क्षेत्रीय राजवंशों का उदय हुआ। इसमें राष्ट्रकुट, चालुक्य , चोल, पल्लव, पाण्डय अधिक प्रसिद्ध थे।

(ग) भारत पर तुर्कों का आक्रमण - सर्वप्रथम 637 ई0 में अरबों ने सिन्धु तट पर आक्रमण किया। दूसरा आक्रमण 712 ई0 में हुआ। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने सिन्ध के राजा दाहिर को हरा कर उस पर अपना अधि ाकार कर लिया। मोहम्मद कालिम की मृत्यु के बाद लगभग तीन सौ वर्षों तक भारत पर विदेशी आक्रमण नहीं हुआ। परन्तु दसवीं शताब्दी के अन्त से तुर्कों ने (विदेशी) फिर भारत पर आक्रमण करना शुरू किया। सन् 1001 से लेकर 1026-27 ई0 तक भारत पर महम्मूद गजनवी ने सत्रह बार आक्रमण किया। पर, उसके आक्रमणों का उद्देश्य था- धन लूटना, राज्य की स्थापना करना नहीं। इसके बाद आया मुहम्मद गोरी। उसने पृथ्वीराज चौहान और जयचन्द को पराजित कर भारत पर तुर्क शासन की स्थापना की।'' [13]

झारखण्ड में नागवंशी राजाओं के शासन के बाद जितने भी मुण्डा राजा हुए, वे नागवंशियों के अधीन थे। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं- ''इसु दिन सुतियाम्बे रे तैकेन तयोमते पविरागढ़ रेको तैकेना। मुण्डा राजा को नागवंशी कोवः लतर रेको तइकेना।'' [14] अर्थात्- लम्बी अवधि तक सुतियाम्बे में रहने के बाद मुण्डा राजा पविरागढ़ में थे। तब मुण्डा राजा नागवंशी राजाओं के अधीन थे।

इसी समय से ही मुण्डा तथा नागवंशी, सहोदर भाईयों की तरह रहने लगे। दोनों ही समुदाय में समान रूप से सबका आदर-सम्मान होता रहा। इससे सम्बन्धित मुण्डारी लोक साहित्य में कई प्रमाण प्राप्त होते हैं। एक जदुर लोकगीत देखा जा सकता है -

एला हो कुम्पाट मुण्डा को	अर्थात्- हे कुम्पाट मुण्डा लोग
एला हो दुबन पे	आओ, बैठ लो
एला हो नागवंशी राजा को	हे नागवंशी राजाओं
एला हो जारुवन पे	आओ बैठो

एला हो किता पटि रे	हे भाइयों, आओ खजूर की चटाई पर
एला हो दुबन पे	हे बन्धुओं, आओ बैठो
एला हो पपड़ा गन्डु रे	हे भाईयों पपड़े के पीढ़े पर
एला हो जारुवन पे	हे बन्धुओं, आओ बैठो
एला हो ने चुना तमाकु	हे भाईयों, लो चूना-बम्बाकू
एला हो जोमन पे	हे बन्धुओं, आओ खा लो
एला हो ने इलि सबः	हे भाइयों, लो सीठा-हड़िया
एला हो नुवन पे। [15]	हे बन्धुओं, पी लो।

मध्य काल में आदिवासी और सदान (नागवंशी) मिल-जुलकर रहने लगे। गणराज्य के आधार पर गाँव का संचालन मुण्डा करता था। एक मौजा का मालिक और परगना का संचालन नागवंशी राजा ही करता था। इसी प्रकार बनाया गया खेत अब भुंइहरी या खुंटकटी जमीन कहलाता है। इस प्रकार बने खेतों की बन्दोबस्ती सामाजिक तौर से गाँव के मूल व्यक्तियों का उपहार या सलामी के रूप में खस्सी एवं हड़िया भात देकर खेत बनानेवाला करा सकता था। मालगुजारी एक ही बार चन्दा के रूप में मुण्डा के द्वारा राजा प्राप्त करता था। अतः इस युग तक राजा-प्रजा यहाँ अमन-चैन से रहते थे। इसे सम्बन्धित गीतों में से एक जदुर लोकगीत -

हतुअम बइतरे मुण्डा अर्थात्-	हे मुण्डा, तुम गाँव बनाकर रखोगे (तो)
अमः इलिमंडिया मुण्डा	हे मुण्डा, तुम्हारे लिए हंड़िया भात है।
गमयम बडुइतरे राजा	हे राजा, तुम राज्य को संवार कर रखोगे (तो)
अमः टका-सिका	हे राजा, तम्हारे ही रुपये-पैसे हैं।
कुण्डा कुण्डाया मुण्डा	हे मुण्डा, घड़ा-घड़ा में
बसितनगेयया मुण्डा	हे मुण्डा, बासी हो रहा है।
मचि मचिया राजा	हे राजा, वस्त्र के कोनों में
गदेदतनगे। [16]	हे राजा, जंग लग रहा है।

नागवंशी राजाओं के हाथ लम्बे थे। क्योंकि उत्तर भारत के राजपूत राज्य के संस्थापकों से इनके सम्पर्क था। अतः इन्होंने बड़े राज्य कायम करने की कल्पना की और पड़हा-परगनों को संगठित किया। इन

परगनों में बाहर से राजपूत शासकों या राजाओं को बुलाकर बैठाया गया। प्रत्येक परगना में सिंह (राजपूत) राजा थे। गाँव में जमीन्दार सदान हुए। मुण्डा इनका सहयोगी रहा। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोकगीत का अवलोकन करना समीचीन होगा -

मर हो मरङ गड़ा रिरिसिङ	अर्थात्- हे बड़ी नदी (के पास वाले) दिरिसिंह
गुगुराम सड़िया	तुम घुघुर बजाते हो
मर हो हुड़िगंड़ा मधोसिंह	हे छोटी नदी (के पास वाले) माधो सिंह
खण्डाम हिचिरेया	तुम तलवार चमकाते हो
ओकोए कजिते मरंगड़ा	किसके कहने पर बड़ी नदी
दिरिसिंह गुगुराम सड़िया	दिरिसिंह, तुम घुघुर बजाते हो?
चिमए बकंड़ा ते मधोसिंह	किसके उकसाने पर माधो सिंह
खण्डाम हिचिरेया [17]	तुम तलवार चमकाते हो?

जिस समय भारत में मुगलों का शासन था, उस समय छोटानागपुर या झारखण्ड का महाराजा दुर्जन साल था। जिसकी राजधानी खुखरा थी। मुण्डारी लोककथा के नागवंशावली में इनका शासन काल निम्नांकित था- उस समय ढोंएसा में मुण्डा राजा भूपतिराय का बेटा 'हीरा' राजा हुआ था। तब वह हीरा राजा कहलाया। हीरा राजा कर वसूलकर महाराजा दुर्जन शाल को पहुँचाया करता था। एक बार हीरा राजा ने कई वर्षों का मालगुजारी जमा नहीं किया। तब दुर्जन शाल अपने सिपाहियों के साथ तगादा के लिए ढोंएसागढ़ पहुँचा। हीरा राजा को इसकी सूचना मिलते ही पति-पत्नी दोनों हाथ में ही हीरा लेकर बचने के लिए साँपों के निवास वाले जलाशय (बिङ इकिर) और मगर के निवास वाले मगर जलाशय (तयन थाना) की ओर भाग निकले। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोकगीत प्रस्तुत किया जाता है-

हय राजा हीरा राजा	अर्थात्- हे हीरा राजा
सदोम तेम निरे तना	तुम घोड़े से भाग रहे हो
हय रानी हिरा रानी	हे हीरा रानी
मैले गेलेतेक होजोर तना	तुम तीर सा भाग रही हो
सदोम तेम निरे तना	तुम घोड़े से भाग रहे हो

बिङ्को इकिरते — साँप-निवास जल-गहराई की ओर
मैलेगेले तेम होजोर तना — तुम तीर-सा भाग रही हो
तयन मन्डोवाते — मगर दह की ओर भाग रहे हो

बिंङ्को इकिर दा — साँपों को जलाशय
बियुर तना दो — (का पानी) घूम रहा है।
तयन को मण्डोवा दो — मगरों का दह
सेकोर तना दो [18] — (का पानी) सरक (घूम) रहा है।

बाद में दुर्जन शाल के सिपाहियों ने हीरा राजा का पीछा कर उसे महाराजा के पास लाये। तब हीरा राजा ने महाराजा को एक हीरा का टुकड़ा दिया। पर, महाराजा ने उसे माफ नहीं किया और हीरा राजा को जेल में डाल दिया। तब मुण्डाओं तथा अन्य लोगों के बीच खलबली मच गई तथा नागवंशी राजाओं के प्रति असंतोष पैदा हुआ। इस समय का एक जदुर लोकगीत देखा जा सकता है-

हरे राजा नागवंशी को — अर्थात्- नागवंशी राजाओं
कजि होपे बइ लेदा — तुम लोगों ने बात बनाई थी
दिसुम रेन भुइयरी को — हे देश के भुंइयरों
बकंणापे ठनओ लेदा — तुम लोगों ने यह ठान लिया था

कपि होपे बइ लेदा — तुम लोगों ने बात बनाई थी
दिसुमपे चेचाः केदा — देश को तितर-बितर कर दिया
बंकणापे ठनओ लेदा — तुम लोगों ने ठान लिया था
गमए पे तम्बुर केदा — देश में उथल-पुथल मच गया

निदा ते नुबाःते — रात में अंधकार में
कजिपे बइलेदा — तुम लोगों ने बात बनाई थी
सिंगिते मरेशल ते — दिन में, उजाले में
बकंणा पे ठनओ लेदा [19] — तुम लोगों ने ठान लिया था।

इसके पश्चात महाराजा दुर्जन शाल ने हीरा राजा के दिये हीरे की पहचान के लिए एक लोहार को बुलाया। लोहार ने हीरे को न्यास पर रखकर

जैसे ही हथौड़ी से मारा कि हीरा अंदर घुस गया। यह देखकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। तब उसे निकालने का बड़ा प्रयत्न किया गया पर वह निकल नहीं सका। तब राजा दुर्जन शाल ने हीरा राजा को बुलवाया। हीरा राजा ने मांग की कि जब तक मुझे जेल से छुट्टी नहीं मिलती, तब तक मैं नहीं जाऊँगा। यह बात महाराजा को बतायी गई। इस बात पर महाराजा दुर्जन शाल राजी हो गये और हीरा राजा को वहाँ लाया गया। हीरा राजा ने न्यास में घुसे हीरे के ऊपर जैसे ही दूसरे हीरे के टुकड़े को रखा कि हथौड़ी में घुसा हुआ हीरा बाहर आ निकला। यह देखकर राजा दुर्जन शाल ने हीरा राजा को जेल से मुक्त कर दिया।

बहुत वर्षों तक हीरा राजा, महाराजा दुर्जन शाल को मालगुजारी नहीं देता रहा इसके कारण दुर्जन शाल भी दिल्ली के शासकों को मालगुजारी नहीं दे सका। अन्त में जहाँगीर ने अपनी सेनाओं के द्वारा दुर्जन शाल और हीरा राजा तथा उसकी पत्नी को गिरफतार कर ग्वालियर के किले में डाल दिया। हीरा राजा से मिला एक हीरे का टुकड़ा दुर्जन शाल ने मुगलों को दे दिया। इन लोगों ने भी दुर्जन शाल की तरह ही असली हीरा है या नहीं इसकी पहचान के लिए लोहे में रखकर उसे चूर करने की कोशिश की और जैसे ही उसे बड़े हथौड़े से मारा कि हीरा का टुकड़ा लोहे के अन्दर घुस गया। यह देखकर मुगल राजाओं को बड़ा आश्र्चय हुआ। हीरा राजा की पत्नी को मुगलों ने अपनी रानियों की सेवा में रख दिया था। उन्हें जब ये सारी बातें मालूम हुई तब उसने कहा- ''एला नेया हीरा को लेल उरूम कमि रेअः मरंग सेंड़ादो अलेयाः दुर्जन शाल गोमके ताले पुरःगे इतुवना। ने मेंड़द रे डबुरा कन हीराओ रबलतेः उडुंदड़िया।'' [20] अर्थात्- सुनिये, इस हीरे को पहचानने का अच्छा ज्ञान तो हमारे राजा दुर्जन शाल के पास है। इस लोहे में घुसे हीरे को वे आसानी से निकाल सकते हैं। तब दुर्जन शाल को जेल से दरबार में ले आने का आदेश हुआ। दुर्जन शाल को पता था कि हीरा राजा ही इस काम को कर सकेगा। इसलिए हीरा राजा को भी उसने साथ में ले लिया था। हीरा राजा मोर पंख आदि पहने लम्बा चौड़ा व्यक्ति था। मुगलों ने उसे दरवाजे में झुककर प्रवेश करने को कहा। दुर्जन शाल ने इसपर क्रोध से कहा - ''मुण्डा होड़ो जेतए समं रे कएः तिरूबेया।'' [21] अर्थात्- मुण्डा किसी के सामने अपना सिर नहीं झुकायेगा। उसी समय दरवाजा काट कर ऊँचा किया गया और दुर्जन शाल

ने प्रवेश किया। दुर्जन शाल भी हीरा राजा ही था। उसने मुगल राजा से कहा कि - "अञ नेया रबल तेञ रिका दड़ियाः मेन्दो नेआ नतेन मोसा अञः दिसुम ते रूड़ा लगातिंआ।" [22] अर्थात्- मैं इस काम को सहज ही कर सकता हूँ पर इसके लिए मुझे एक बार अपने देश लौटना होगा।

दुर्जन शाल ने हीरा राजा को अपना घोड़ा देकर मुगल सेना के साथ झारखण्ड आने दिया। रास्ते में उसने देखा कि घोड़ा का लगाम नहीं है। फिर छोटानागपुर आकर जब वह दिल्ली जाने लगा तब राजा दुर्जन शाल के लिए रानी ने एक पत्र भेजा। किन्तु रानी ने उस पत्र में सारा समाचार नहीं लिखा था। इससे सम्बन्धित एक जदुर गीत देखा जा सकता है-

हय राजा हिरा राजा	अर्थात्-	हे राजा, हीरा राजा!
सदोम दोम तोले कुलादिञ		तुम ने घोड़ा बांधकर भेजा
हय रानी हिरा रानी		हे रानी, हीरा रानी,
लिख दोम ओले कुलादिञ		तुम ने पत्र लिखकर भेजा
सदोम दोम तोले कुलादिञ		तुम ने घोड़ा बांधकर भेजा
लगोम दो कमे कुलादिञ		परन्तु लगाम तो नहीं भेजा
लिका दोम ओले कुलादिञ		तुम ने पत्र लिखकर भेजा
सोबेन कजि कब कलदिञ		पर, सारी बातें नहीं लिख भेजी

इस भाँति हीरा राजा एक हीरा का टुकड़ा लेकर दिल्ली चला गया। जहाँ हीरा डूबा हुआ था, वहाँ छोटा सा तालाब खोदकर पानी भर दिया गया। उस तालाब में हीरा घुसे हुए लोहे को डाल दिया गया। तब हीरे के टुकड़े को पानी में सटा दिया गया, तभी वह निकला। यह देखकर मुगल लोग बड़े खुश हुए। तब मुगल राजाओं को झारखण्ड देखने की लालसा हुई। तभी साथ में मुगल यहाँ आये। दुर्जन शाल के मिट्टी का घर देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। झारखण्ड के राजा चाहे वे मदरा मुण्डा हो या फणिमुकुट राय या अन्य मुण्डा या नागवंशी- ये नाममात्र के राजा हुआ करते थे; अन्य राजाओं की शान-शौकत इनमें बिल्कुल नहीं थी। ये मिट्टी के सामान्य कोठा घरों में रहते थे। शासन करना या राज्य संचालित करना इनका ऊपरी काम था। इनकी वेश-भूषा, रहन-सहन बिल्कुल ही सामान्य अन्य लोगों की तरह आडम्बरहीन ही थी। इसी से नवरत्न गढ़ छोड़कर दूसरा कोई भी गढ़ या उसका अवशेष अपनी बुलन्दी बताने में आज भी नाकामयाब रहा है। जहाँ- जहाँ गढ़ बताये

जाते हैं, वहाँ मिट्टी के ढूह मात्र हैं। आज भी मदरा मुण्डा का गढ़ बारी में मात्र मिट्टियाँ हैं, पत्थरों के मेहराब या तराशे पत्थर आदि के अवशेष भी नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्जन शाल ने मुगलों के यहाँ नवरत्न रेखा व सुना जिससे प्रभावित होकर उसने नवरत्नों (नौ क्षेत्रों या विषयों के ज्ञानी-गुणी का समूह) के स्थान पर अपने महल का ही नाम नवरत्न गढ़ रख दिया।*

मुगलों से उक्त सम्पर्क के बाद उन्होंने दुर्जन शाल के लिए डोएसा में 'नवरत्न गढ़' बनवा दिया। जिससे मुगलों का ऋण दुर्जन शाल पर पड़ा। इसे चुकाने में असमर्थ होने पर नागवंशी राजाओं के सहयोग के लिए जमीन्दार, जागीरदार, ठीकेदार आदि मुसलमान बन बैठे। कितने मुगल यहाँ रहकर व्यापार करने लगे। तब यहाँ झारखण्ड के मुण्डा उनका सामान ढोनेवाले बन गये। इससे सम्बन्धित एक गीत का अवलोकन करना समीचीन होगा-

ओकोयः तुड़कु सिपाइया अर्थात्- किसका मुस्लिम सिपाही?
चिमयः कोले भरिया किसका भार ढोनेवाला कोल है?
अयर-अयर तुड़कु सिपइया आगे-आगे तुर्क-सिपाही
तयोम तयोमते कोले भरिया [24] पीछे-पीछे कोल भार ढोनेवाला है।

मुगलों ने खुखरा को 'कोकराह' कहा। इस प्रकार झारखण्ड में राजाओं का पतन होता गया और नये-नये शासक आते गये। इससे सम्बन्धित मुण्डारी में एक कहावत है- "राजा राजि लो तना, बंड़ियाँ पासे बोलो तना।" अर्थात्- राजाओं के राज्य का पतन होता जा रहा है और नये-नये राजतंत्र प्रवेश करते जा रहे हैं। यहीं से छोटानागपुर में गणराज्य का अन्त भी होने लगा।

इस प्रकार सम्पूर्ण छोटानागपुर में नागवंशी राजाओं के साथ-साथ मुसलमान, जमीन्दार एवं जागीरदार भी नियुक्त होते गए। इन्होंने मुण्डा तथा अन्य आदिवासियों के जमीन का सर्वे कराकर लगान या मालगुजारी बांध दिया। जिससे झारखण्ड की जनता में खलबली मच गई। फिर मुगलों के बाद अंग्रेजों की बारी आई। अंग्रेजों ने भी यहाँ शासन व्यवस्था को खत्म कर अपने किस्म की लागू की। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोकगीत का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करना समीचीन होगा -

जव लेका सुकु दो गतिङ अर्थात्- हे मित्र, पहले जैसा सुख

का रेम नमेया गतिङ	हे मित्र, अब नहीं मिलेगा।
जव लेका नपए दो संगाञ	हे मित्र, पहले जैसा आनन्द
का रेम चिनाया संगाङ	हे मित्र, अब नहीं रह गया
हतु हतु रे गतिङ	हे मित्र, गाँव-गाँव में
डिगुवर जनाया गतिङ	हे मित्र, दिगवार बैठे हैं।
दिसुम दिसुम रे संगाञ	हे मित्र, देश-देश (क्षेत्र) में
कोटोवार जनाया संगाञ	हे मित्र, कोटावार नियुक्त है।
अड़ि पिचिदा गतिङ	हे मित्र, प्रति प्लाट में
डिबुवा जनया गतिङ	हे मित्र, पैसा नियत हो गया।
कुंडि पिचिदा संगाञ	हे साथी, प्रति आड़ में
दोकोरो जना 25.	हे मित्र, एक पैसा बांधा गया।

"इस प्रकार मुगल-काल में यहाँ की जमीन तीन प्रकार से बंटी हुई थी- 1. दाज, 2. जागीरदार और 3. जैयती या प्रजाली । रैयती जमीन भी तीन प्रकार की थी- 1. मंझीहस, 2. राजहंस और 3. खुँटकटी या भुंइहरी।" [26]

निष्कर्ष:

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि छोटानागपुर का मध्यकालीन राजनैतिक इतिहास मुण्डाओं से नागवंशियों, नागवंशियों से मुसलमानों अथवा मुगलों से अंग्रेजों के अधीन आया। किन्तु यह भी एक तथ्य है कि मुण्डाओं के राजनीतिक पतन के बावजूद भी, ये अपने पड़हा पंचायत के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परम्परा को पूर्ववत संचालित करते आ रहे हैं, इन राजनैतिक वितण्डों का इसपर कोई असर नहीं पड़ा है।

आर्थिक तथ्य

भारतीय इतिहास के मध्य काल में मुण्डाओं की कृषि उन्नत थी। खेती के अलावे इनका आर्थिक स्रोत शिकार करना, वन्य पदार्थों का संचय करना भी मुख्य था। इस युग में मुण्डा जाति की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि व्यवस्था स्वतंत्र रूप से पल्लवित हुई। इसी तरह इनका आर्थिक स्रोत भी स्वतंत्र रहा। कृषि-कर्म में इनका जीवन आधारित था। अच्छी फसल होने पर मुण्डा लोगों का जीवन उमंग से भर उठता था। उपजाये गये कपास से बने वस्त्रों से बदन का श्रृंगार कर ये शान का अनुभव करते थे। इससे सम्बन्धित कई लोकगीत हैं। एक गेना राग का गीत देखा जा सकता है-

ओकोरे तमःमई रसिका अर्थात्-	हे बेटी, तुम्हारी खुशी कहाँ है?
चिमएरे तमः मइ चैला	हे बेटी, तुम्हारी श्रृंगार कहाँ है?
बाबा बा रेआ मइ रसिका	हे बेटी, खुशी तो धान-फूल में है?
कःसोम बा रेआ मइ चैला	हे बेटी, श्रृंगार तो कपास-फूल में हैं।
हेड़ेद तुसङ लेरे मइ रसिका	हे बेटी, निकावन कर लेने में खुशी है।
रिद तुकुइः लेरे मइ चैला	हे पुत्री, सूत कातने, कपड़ा बना लेने में छैला है।
लाइः पेरेः जोमतरे मइ रसिका	हे पुत्री, भरपेट खा लेने में ही खुशी है
मयाङ पेरेः तोल तरे मइ चैला	हे पुत्री, कमर भर वस्त्र पहन लेने में छैला है।
जलातिङ तना मइ रसिका	हे बेटी, खुशी मंडरा रही है।
बुलातिङ तना मइ चैला	हे पुत्री, छैला मंडरा रहा है।
अकड़ा तला रे मइ रसिका	हे बेटी, खुशी अखाड़े में है।
अकड़ा अतोम रे मइ चैला [27]	हे पुत्री, आनन्द अखाड़े के किनारे है।

छोटानागपुर में मुण्डा लोग मध्य काल तक नई बस्तियों की तलाश में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में वास करते रहे। वन को साफ कर तथा गड्ढों को भरकर कृषि योग्य बनाना और खेती करना इनका मूल पेशा था। कृषि काम कठिन भी है, बसने के आरम्भ में वे पर्याप्त धान उपजा नहीं पाते थे।

चिलचिलाती गर्मी, भयंकर वर्षा और ठिठुरा देने वाले जाड़े में, मिट्टी

से युद्ध कर अच्छी फसल की प्राप्ति पर ऐसा लगता है मानो राक्षसों से युद्ध कर विजयी हुए हों। फिर भी गरीबी इनका पीछा नहीं छोड़ती। इससे सम्बन्धित एक करम गीत का अवलोकन करना समीचीन होगा -

बिर कन्दर उतुणु केते	अर्थात्- जंगल और कन्दराओं को उजाड़कर
गड़ा ढोड़ा सोम केते	गढ़ा-डोढ़ाओं को समतलकर के
ओते अड़िबु बइकेदा	हमने खेत-टाँड़-आड़ बनाया है।
चिका मेनते	(लेकिन) किस कारण से?
रेंगेः तनाबु आदिवासी को	हम आदिवासी गरीब हैं
चिका मेनते	किस कारण से?
बाबा सुरगुजा होड़ेः	धान, सुरगुजा और कुरथी
रम्बड़ा मसुरी खलाड़ी	उरद, मसूर और खेसारी
चिमिन गुना तबु होबा तना	हम कितना-कितना पैदा करते हैं
चिका मेनते	पर, किस कारण से?
रेंगेः तनाबु आदिवासी को	हम आदिवासी गरीब हैं।
चिको मेनते	किस कारण से?
ने दिसुम रे बलदेव सिंह	इस इलाके के बलदेव सिंह
लेकन डोन्डो मुण्डा को	जैसे अज्ञानी मुण्डा है
सीदा सादा मेनः बुआ	हम सीदा-सादे हैं
एना मेनते	इसी कारण से?
रेंगेः तनाबु आदिवासी को	हम आदिवासी गरीब हैं।
चिका मेनते	किस कारण से?
कमि उदम सिउः चलु	कम-उद्यम और जोतने-कोड़ने में
चिमिन कोसोबु नम जदा	हम कितना कष्ट पाते हैं।
केड़ा उरिः तेबु कमि तना	काड़ा और बैलों की मदद से काम करते हैं।
चिको मेनते	पर, किस कारण से?
रेंगेः तनाबु आदिवासी को	हम आदिवासी गरीब हैं।

चिका मेनते[28] किस कारण से?

कृषि के अतिरिक्त मुण्डा लोग वन्य-फल-फूलों को एकत्र कर आर्थिक लाभ कर लेते थे। क्योंकि इनकी कृषि पूर्णतः मौसम पर निर्भर है। अच्छी वर्षा से अच्छी फसल होती है तथा वर्षा की अनियमितता होने पर फसल नष्ट हो जाती है। तब 'रिंगा' अर्थात्- अकाल होता है। ऐसे समय में मुण्डा लोग जंगल और फलदार वृक्षों के फल-फूलों से जीवन निर्वाह करते रहे। इतना ही नहीं मुण्डा जाति के लोग कन्द मूल तथा पेड़-पौधों के फल-फूलों, पत्तों का सदा उपयोग करते रहे। जैसे- कटहल, आम, जामुन, केंद, चार, इमली, बैर, बेल, भेलवा, पीपल, बरगद, डूमर और पिठोर आदि खाद्य के रूप में काफी महत्त्वपूर्ण है। साखू का फल दवा के रूप में भी उपयोगी रहा है। फूल तथा कोपलों में फुटकल की कंछी, कचनार का फूल, कोयनार के कोंपल और फूल, वन का माठा साग, वन साग, कटई साग, हुटार का फूल, डाउ का फल-फूल आदि को सब्जी के रूप में व्यवहार किया जाता रहा है। इससे सम्बन्धित लोकगीत इस प्रकार है-

डड़ि होरा जोजो हेसाः हो अर्थात्- हे मित्र, डाड़ी रास्ते का खट्टा पीपल
हेसाः गतिञ जरोमकना हे मित्र, वह पीपल पका है।
कोलोम लतर हेरोः बरु हो हे मित्र, खलियान-नीचे का कुसुम
बरु संगञ गदराकना हे मित्र, वह कुसुम गदराया है।

दोलं गतिञ उयुगञम हो हे मित्र, चलो मुझे गिरा दो
हेसा गतिञ जरोमाकना हे मित्र, पीपल पका है
दोलं गतिञ नोसोराइङमे हो हे मित्र, चलो मुझे गिरा दो
बरु गतिञ गदराकना हे मित्र, वह कुसुम गदराया है।

उयुः दोरेञ उयुगेया हो हे मित्र, मैं तुम्हें गिरा तो दूँगा
गितिल गेगे उयुगोःआ पर, वह बालू में ही गिरेगा।
नोसोर दोरेञ नोसोरेआ हो हे मित्र, मैं उसे पहुँचा तो दूँगा,
लोसोद रेगे नोसोरोःआ[29] पर, वह कीचड़ में ही गिरेगा।

इस प्रकार पूर्व मध्य काल तक छोटानागपुर की मुण्डा जाति कृषि पर ही निर्भर नहीं थी। स्वतंत्र रूप से जो जितला सके जंगल साफ कर खेती

करते हुए अमन-चैन से रहते थे। पहान, पूजा के नाम पर चन्दा स्वरूप मुर्गी-चेंगना या धान आदि लेता था। मध्य काल में मुगलों के अधीन होकर उनको कृषि योग्य भूमि के प्रत्येक प्लाट की मालगुजारी देनी पड़ी। जिससे मुण्डाओं में उदासी छा गई। इस प्रसंग में एक जदुर गीत लो पहले आया है, उसे देखा जा सकता है - -'जव लेका सुकु दो गतिञ ...'।

इस काल में आर्थिक दृष्टिकोण से गरीब मुण्डा युवक-युवतियाँ धनार्जन करने के लिए देश-प्रदेश या गाँव के धनी व्यक्ति यों, मुण्डाओं और सदानों-दिकुओं के घर में धांगर-धंगरिन का काम भी करते थे। दोनों धांगर-धंगरिन में जब प्रेम हो जाता था, तब एक के बिना दूसरे को चैन नहीं मिलता था, तब दोनों फिर धांगर-धंगरिन का काम एक ही गाँव-टोले में करना चाहते थे। जैसा कि एक लोकगीत से स्पष्ट किया जा सकता है-

अञ रे गतिञ रेञ	अर्थात्- हे प्रिय! मैं तो
तुंगुर-मुंगुर	अकेला ही आगे-पीछे हो रहा हूँ
बपा रे संगाञ रेञ	हे प्रिय! मैं तो
डले कलेया	डगमगा रहा हूँ
तुंगुर-मुंगुर	आगे-पीछे हो रहा हूँ
दसि तलांमे	मुझे भी धांगर खोज दो
डले कलेया	डगमगा रहा हूँ
गुति तलांमे	मुझे भी धंगरिन खोज दो
दसिन दसिन दो	धांगर ही रहना है तो
लेपेल सड़िमा रे	अगल-बगल ही
गुतिन गुतिन दो	धंगरिन ही रहना है तो
चिपिना चन्दाए रे	हर पल हमारा दर्शन हो जैसे घर में।
सेंगेल असि रेञ	मैं आग-मांगने में
असि नमेमा	तुम्हें मांग पाऊँगा
सकम मंगनि रेञ	पत्तियाँ मांगने में
मंगानि खोजरमा	मैं तुम्हें खोज सकूँगी ।

सेंगेल असि रे	आग की माँग में
ती तेञ चुण्डुलम	मैं तुम्हें हाथ से इशारा करूगाँ
सकम मंगानि रे	पत्तियाँ मांगने के समय
मेदतेञ रपिदम[30]	मैं तुमसे आंख से बातें करूँगा।

लोकगीत एवं कथाओं से ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि मध्य काल में अन्य जातियों या मुगलों का ये भार ढोने का काम करते थे। इस सम्बन्ध में एक लोकगाथा का अंश-

"अलोबेन अरेः, अलोबेन अरेः, होंजारिञ किन
अलोबेन अरेः, अलोबेन अरेः, होंजारिञ किन
गतिञदो दिकु कोअः गोः नला ती
संगाइञ दो साधु कोअः बारोम नलाति।"[31]

अर्थात्- हे मेरे सास-ससुर, तुम दोनों मुझे (पानी) मत छींटो
हे मेरे सास-ससुर, तुम दोनों मुझे (पानी) मत छींटो
मेरा प्रिय, दिकुओं का भार ढोने एवं मजदूरी करने गया है
मेरा प्रिय, साधुओं का भार ढोने-मजदूरी करने गया है।

इस काल में खेतों में कृषि मजदूरी करने वालों को मजदूरी के बदले अनाज ही मिलता था। इस कच्चे अनाज को ले जाकर एवं कूट-छाँट कर भोजन तैयार करना, सारे दिन की मजदूरी के बाद इन्हें करना पड़ता था। इससे पता चलता है कि इन गरीबों का जीवन कितना कष्टप्रद था। इससे सम्बन्धित एक करम लोकगीत इस प्रकार है-

निरे सेने जोलाञ रकम केना	अर्थात्- मैंने दौड़ते चलते चढ़ाई चढ़ी
जोजोहातु बबाञ तेला केना	जोजोहातु में मजदूरी ली
अयुब आतेञ रुड़ केना	शाम से मैं कूटने लगी
तला निदाञ मंडिजना[32]	और आधी रात को खाना बनाया।

मुण्डाओं का आर्थिक साधन कृषि तथा वन्य फल-फूलों के संग्रह के साथ ही साथ शिकार का भी प्रचलन सुदृढ़ था। क्योंकि इस काल में छोटानागपुर कें जंगलों में विभिन्न जानवरों की संख्या अधिक थी। यहाँ के लोगों को राहों में डर या भय होता था तो जंगली जानवरों से अथवा भूतों से, मनुष्यों से नहीं। फिर भी वे जानवरों का शिकार कर आर्थिक पूर्ति करते थे। इससे सम्बन्धित अनेकों लोकगीत और लोककथाएँ भरी पड़ी है। एक

लोकगीत-

सेन्देरा कोड़ाको	अर्थात्- शिकारी पुरुषों का
कपि जिलिब लिलिबा, बई	हे सखी, फरसा झिलमिल करता है।
कपि जिलिब लिलिबा	फरसा झिलमिल करता है
करेंगा कोड़ाको	शिकारी पुरुषों का
सार सिंणाए सोड़ोंएया, बई	हे सखी, तीर झनझन करते हैं
सार सिंणाए सोड़ोंएया	तीर झनझन करते हैं

लोकगीतों के अलावा लोककथाओं में भी शिकार से सम्बन्धित प्रसंग भरे पड़े हैं। इससे सम्बधित कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं- *"इसु सिरमा सेनोः जना गंभारिया हतु रे मियद मुण्डाः होनको ए होड़ो को तइकेना। मुसिं एहगेया सोबेन बिरते सेंदरा को सेनोः जना।"* [33] अर्थात्- बहुत वर्ष बीत गए। गमहरिया गाँव में एक मुण्डा को सात बेटे थे। एक दिन वे जंगल में शिकार करने गये। *"तोबो मुसिं सेन्देरा को मोने केदा होरा रे राजा नेकाए कजिय को तना -ओकोए सः आते बनाए निरपोचोना इनिः गेबु गोएःइया।"* [34] अर्थात्- तब वे एक दिन शिकार करने के लिए निकले। जाते समय रास्ते में सबको राजा ने इस प्रकार कहा- भालू जिसकी तरफ से भाग निकलने में सफल होगा, हम सब उसी को मारेंगे।

जानवरों का शिकार करने के अतिरिक्त मुण्डा लोग जल-जन्तु मछली, केकड़ा और चिड़ियों का भी शिकार उस युग में करते थे। जैसा कि लोकगीतों में भी इसका विवरण मिलता है-

बरेम दोना चिरबिड़िः हइ बंड़ंसितिआ ना चिरबिड़आः
बरेम दोना चिरबिड़ः चेणे टोटेतिअना चिरबिड़अः [35]
अर्थात्- हे पत्नी (चिरबिड़ाः) तुम्हारा छोटा भाई मछली फँसाने गया है।
हे पत्नी तुम्हारा छोटा भाई बड़ा चंचल है, वह चिड़ियाँ मारने गया है।

"हइ तुपु साः तेबाः लेना। सोबेन हगेया को टोनड़ा को तुपु केदा। लिटाः टोनड़ा रेदो तुकिदोःगे हइको बोलो आ।" [36] अर्थात्- कुमनी रोपने का समय आया। सभी भाइयों ने कुमनी रोपा। लिटा या सबसे छोटे के डोण्डा

(कुमनी) में तो मछली भरपूर फँसती है...।

मुण्डारी लोकसाहित्य के अन्तर्गत प्रकीर्ण साहित्य में भी आर्थिक तथ्य मिलते हैं, एक खेल गीत इस प्रकार है-

लुड्गु दिरि चुबुइःकेन अर्थात्- लोढ़हा पत्थर छूव-किया
सोः उचलि सेकेः केन छाँटा चावल छक सा किया।

इसी प्रकार बुझौवलों में भी आर्थिक तथ्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। जैसे-

"अपुम दो मइ कोतिःआ? जीद तन होड़ो गोएः ते,
एंगाम दो मइ कोतिःआ? गोएःया कन होड़ो जीद ते।" [37]

अर्थात्- हे बेटी तुम्हारे पिता कहाँ गये? जीते हुए मनुष्य को मारने,
हे बेटी तुम्हारी माता कहाँ गई? मरे आदमी को जिलाने।
... मतलब - बीड़ा।

"ए सिरमा रेन खसी मिद खण्डा गेः जिलुइया।" [38]

अर्थात्- सात वर्षों का खस्सी एक टुकड़ा ही मांस देता है। इसका अर्थ है - घोंघी इत्यादि।

सामाजिक तथ्य

भारतीय इतिहास के मध्य काल में छोटानागपुर की धरती में मुण्डा जाति का सामाजिक संगठन पूर्ण रूप से विकसित था। अतः मुण्डा समाज की परम्परा से, अपनी सामाजिक व्यवस्था है जिसे वह अपने पूर्वजों से ग्रहण करता आया है। 'इनसाइक्लोपिडया मुण्डारिका' के अनुसार मुण्डा जाति की तीन शाखाएँ बनीं :- 1. महली मुण्डा, जो तमाड़ क्षेत्र में बस गये और तमाड़िया मुण्डा कहलाते है। 2. कुम्पाट मुण्डा, जो केवल मुण्डा या श्रेष्ठ कहलाते हैं और 3. होड़ो मुण्डा, जो सिर्फ होड़ो के रूप में जाने जाते हैं।" [39]

किसी भी समाज में कई पहलू होते हैं। परिवार (Family) विवाह (Marraige), नातेदारी (Kingship) अर्थ व्यवस्था (Exonomics), धर्म (Religion) और राजनीतिक (Politics) आदि संस्थाएँ हैं। प्रत्येक पहलू से विशेष उद्देश्य की पूर्ति होती है। सामाजिक संस्था के बिना सामाज की कल्पना नहीं की जा सकती है।" [40]

इसी आधार पर मुण्डा समाज में सामाजिक पद व्यवस्था का इनके लोकसाहित्य में परिपूर्ण विवरण उपलब्ध होता है। खुंटकटी मुण्डा, पहान-मुण्डा, मुण्डा राजा, "भुंइयर मुण्डा, खांगार मुंण्डा , कारेंगा मुण्डा, मानकी मुण्डा, खड़िया मुण्डा, कोल मुण्डा, नागवंशी मुण्डा, उराँव मुण्डा, साद मुण्डा, सावर मुण्डा, माँझी मुण्डा आदि।" [41]

मुण्डाओं ने उपर्युक्त उपजातियाँ चरित्र एवं कर्म के पहलुओं के अनुसार विकसित हुई हैं। आरम्भ में सम्पूर्ण मुण्डा जाति की दो ही शाखा - महली मुण्डा और होड़ो मुण्डा थी, जो एक ही वंशज के थे। महली मुण्डा या खंगार मुण्डा बड़ा भाई था। जनश्रुति ऐसी है कि जब अति प्राचीन काल या इसके भी पूर्व छोटे भाई का एक दल पश्चिम बंगाल से छोटानागपुर की ओर बढ़ा तब उनका दल एक मैदान में एक रात बिताया जहाँ चुल्हे के राख में बहन का पोटा छिपाकर छोड़ दिया गया था। पीछे से बड़े भाई का दल आया, तब वे उसी मैदान में चुल्हा आदि देखकर अनुमान लगाये कि इसी मार्ग से हमारे छोटे भाई आगे बढ़े होंगे और यह वही स्थान था। जहाँ पर वे डेरा डाले थे। अतः हमलोगों को भी एक रात यहीं विश्राम करना चाहिए। तभी वे उस चुल्हे में छिपायी हुई अंतड़ी (पोटा) पाये और उसे पकाकर खा गये। इसी से उन्हें 'महली' मुण्डा या खंगार मुण्डा की संज्ञा मिली। जिसका अर्थ भूखा या बेशर्म भी होता है। इससे सम्बन्धित एक लोकोक्ति देखी जा सकती है -

"खंगार कुड़ि चि हेसअः सकम, मुण्डा कुड़ि चि सरजोम पुड़ुः।" [42]

अर्थात्- खंगार (तमाड़) स्त्री पीपल पत्ता के समान, मुण्डा स्त्री सखुआ पत्ती के दोने के समान। खंगार शब्द के दो अर्थ नागपुरी में होते है। एक अत्यन्त भूखे व्यक्ति के लिए जैसे- तोर पेट एतना खंगइर जाए हे अर्थात्- तुम्हारा पेट इतना खाली हो गया है। दूसरा अर्थ साफ करना - जैसे ई धोवल थारी के खंगराए ले। अर्थात्- इस मांजे गई थाली को फिर से साफ कर लो। अर्थात्- भूखे पेट की स्थिति में पेट बिल्कुल साफ हो गया है या खाली हो गया है- के अर्थ में इसका प्रयोग होता है। अत्यन्त भूखे व्यक्ति के रूप में खंगार मुण्डा को देखा जाता है। अपशब्द बोलने की जगह भी खंगार या महली शब्द का प्रयोग होता हैं।

इसके अतिक्ति कुम्पाट मुण्डा, खुँटकटी मुण्डा, भुंइयर मुण्डा, मानकी मुण्डा एवं पहान मुण्डा इनके पदनाम है। इस विस्तृत मुण्डा सामाजिक

व्यवस्था का नाम 'मुण्डा-समाज' है।

मध्य काल में मुण्डाओं का राजनैतिक हस्तांतरण नागवंशी राजाओं को कर देने के कारण इनकी सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था उसी प्रकार धूमिल हो गई जिस प्रकार सरकारी ग्राम-पंचायत के आने से मुण्डा ग्राम-पंचायत की हालत हुई। फिर भी मुण्डाओं ने अपनी सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखा। मुण्डा सामाज का कोम्पाट या कुम्पाट मुण्डा से सम्बन्धित प्रसंग का उल्लेख पिछले अध्यय के जदुर लोकगीत में देखा जा सकता है।

भुंइयर मुण्डा से सम्बन्धित प्रसंग के एक जदुर लोकगीत की कड़ी का अवलोकन किया जा सकता है :-

हतु रेअः उम्बुल दो	अर्थात्- गाँव की छाया में
हतु मुण्डाए उमबुलेन ते	गाँव का मुण्डा छाया में आया
दिसुम रेअः चोतोर दो	देश (पड़हा) की छत्र-छाया में
भुंइयर चोतोरेन ते [43]	भुंइयरदार है।

इसी प्रकार खुंटकटी मुण्डा से सम्बन्धित प्रसंग जरगा या मागे राग के लोकगीतों में इस प्रकार वर्णित मिलता है :-

मुण्डा कोगा मुण्डाको	अर्थात्- मुण्डा लोग है माँ ! मुण्डा लोग
खुँटकटी मुण्डा को-2	खुँटकटी मुण्डा लोग हैं।
रजा कोगा रजा को	राजा लोग है माँ ! राजा लोग
नागवंशी राजा को -2 [44]	नागवंशी राजा लोग हैं।

पहान से सम्बन्धित लोकगीत भी देखा जा सकता है :-

पाँड़ जा, सिदा सिमको रनाः रे	अर्थात्- पहान प्रथम मुर्गे की बांग के समय
पाँड़ जाम रेड़ा रकब लेना -2 [45]	पहान स्नान कर चढ़ा।

मानकी मुण्डा से सम्बन्ध में एक जदुर गीत उदाहरणार्थ देखा जा सकता है :-

हसा बजिगमा रे सोंदरी	अर्थात्- हे सोन्दारी, हसा-बजीगमा में
बिचा गुड्लु हले सोंदरी	हे सोन्दारी, गोंदली होता है।
मांडंकी पटि रे सोन्दरी	हे सोन्दारी, मानकी पट्टी में
गोड़ा करेंगा [46]	काला गोड़ा-धान होता है।

लोक गीतों के अतिरिक्त लोककथाओं में भी मुण्डा समाज के विभिन्न

वर्गों के पक्ष मिलते हैं। इससे सम्बन्धित एक प्रसंग- *"राजा नियः उल्टा भेदको कएः मुण्डी दड़ियादा। सेकेड़ागे गोटा अयः देयाइती बारी रेन मंड़की, मुण्डा-पाँड़ां को जमन नतिन तेःर केद कोवा। सोबेन होड़ोको सोबेन सःते मण्डी कुटुङ-कुटुङ तेको हिजुः लेना।"* [47] अर्थात्- राजा ने इनके विपरीत भेद (ज्ञान) को नहीं समझा। तुरन्त ही उसने अपने पूरे इलाके के देहातों के मानकी, मुण्डा और पहानों को इकट्ठा होने के लिए आमंत्रित किया। सभी चारों ओर खाना ढो-ढोकर पहुँचे।

इस काल में भी मुण्डा समाज पितृ-प्रधान तथा संयुक्त परिवार प्रधान था। विवाह सगोत्रों में नहीं होते थे। समान गोत्र के लड़के-लड़कियाँ एक खून या भाई-बहन माने जाते थे। मुण्डा समाज में स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान था। इनके लोक गीतों में भी माता शब्द पहले और पिता बाद में आया है। माता-पिता के पहले मुण्डा पुत्र-पुत्रियाँ खूब आनन्दमग्न रहते थे। जैसा कि जरगा लोकगीत की इस कड़ी में प्रसंग आया है :-

एंगञ अपुञ तइकेन रे	अर्थात्- जब मेरे माता-पिता थे
दिरि पिड़िंगि पड़िंगि गो	तब मैं पत्थर की पींड़ पर खेलता था
पिड़िंगि चेतन रे - 2	
हगञ बरेञ तइकेन रे	जब मेरे भाई बहनें थीं
हसा चौरा चौसा गो	तब मैं मिट्टी के चबूतरे पर उठता बैठता था
चउरा लतर रे - 2	
एंगञ अपुञ बंकिन रे	जब मेरे माता-पिता नहीं थे
दिरिपिड़िंगि पिड़िंगि गो	तब पत्थर की पींड़
पिड़िंगि हंदिड़िजन - 2	पींड़ धंस गयी
हगाञ बरेञ बंकोरे	जब मेरे भाई-बहनें नहीं रहीं
हसा चउरा चउरा गो	तब मिट्टी का चबूतरा
चउरा लअंग जन - 2	वह चबूतरा धंस गया।

लेकिन जब किसी कारणवश मुण्डा युवक या युवती के माता-पिता अचानक स्वर्ग सिधार जाते थे, तब उनके हर्ष उल्लास के दिन किस तरह

दुःखद स्थितियों में बदल जाते थे; इससे सम्बन्धित एक जदुर लोकगीत का प्रसंग :-

एंगा टुवर बुगिना चि	अर्थात्- माता से बिछुड़ जाना अच्छा है या
अपु टपर नपंग	पिता से बिछुड़ जाना भला है?
बुरूतेञ सेनोः जना	मैं पहाड़ की ओर गया
लुपुंग जाँग कोटेः	लुपुंग (बहेरा) बीज (अहार के लिए) फोड़ने
एंगा टुवर बुगिना चि	माता से बिछुड़ जाना अच्छा है या
अपु टपर नपंग	पिता से बिछुड़ जाना भला है?
गड़ातेञ बिरि दे जना	मैं नदी गया
दागे दंड़ां	पानी खोजने ।
बुरूतेञ सेनोः जना	मैं पहाड़ की ओर गया
लुपुंग जाँग कोटेः	बहेरा का बीज (खाने के लिए) निकालने
बोः रे	सिर पर
ती केअते	हाथ रख कर के
गड़ातेञ बिरिदे जना	मैं नदी चला गया
दागे दंड़ां	पानी के लिए
तुम्बा	तुम्बा (बूढ़े कद्दू आदि से बना पात्र)
सब केअते	पकड़ कर के
बोःरे ती केअते	सिर पर हाथ रख कर गया
कुला रचाइ	(पर) उसे बाघ खा जाय
कउवा दोरेः	कौवा तो (उसे)
अरकिद केदा	उठाकर ले गया
तुम्बा	तुम्बा
हका केअते	टाँग कर
कुला जोमि	(पर) उसे बाघ खा जाय
चोके दोरेः पोन्डे केदा	मेढ़क (पानी) को गंदा कर दिया।

इस काल में भी सामान्य रूप से मुण्डा परिवार संयुक्त परिवार ही था। एक संयुक्त परिवार में कई पीढ़ियों के सदस्य होते थे। इसके अतिरिक्त मुण्डारी लोक साहित्य में माता-पिता, पिता-पुत्र, पिता-पुत्री, माता-पुत्र, माता-पुत्री, भाई-बहन, देवर-भाभी, प्रेमी-प्रेमिका के यथार्थ जीवन का चित्रण मिलता है। इसके अतिरिक्त मुण्डा युवतियों के वास्तविक वेश-भूषा के चित्र भी उपस्थित हुए हैं। इससे सम्बन्धित लोकगीत भरे हुए हैं। उदाहरणार्थ एक जरगा गीतः-

मयङ तला पड़िय किचिरि	अर्थात्-	कमर के बीच पड़िया वस्त्र
ओरेतना चिना मंदइ जिरे तना-2		हे युवती! घिसट रहा है
		कि लहरा रहा है
लतुरजपः सए सुपुपिद		कान के पीछे एकतरफा खोपा
जोरोतना चिना मंइ लिंगि तना -2 [48]		हे युवती! गिर रहा है
		कि खुल रहा है।

मध्य कालीन छोटानागपुर में आदिवासी कबीलों ने अपनी-अपनी सामाजिक व्यवस्था कायम कर ली थी। यहाँ की जनजातियों, मुण्डाओं में छूआछूत की प्रथा थी। ये (विवाहित सदस्य) अन्य जाति के घर में खाना-पीना नहीं करते थे। मेहमानी, शादी-विवाह जैसे अवसरों में दूसरी जाति के लोगों को विशेषकर आदिवासी लोग सदानों को तथा सदान लोग आदिवासियों को 'सीधा' दे दिया करते थे। अर्थात्- चावल-दाल, तेल-नमक, जलावन इत्यादि पूरी व्यवस्था के साथ दे दिया जाता था। वे उसी परिवेश में खुद बना-पका कर खा लेते थे। इसे विशेष सम्मान समझा जाता था। यह परम्परा सुदूर गाँवों में अभी भी मौजूद है। इससे सम्बन्धित अनेकों लोकगीत है, एक जरगा लोकगीत की एक कड़ी देखी जा सकती है :-

मण्डि कको जोजोमा	अर्थात्-	(पका हुआ) भात नहीं खाते हैं
चउलि तेबु ओमाको - 2		हम उन्हें चावल ही दे देंगे।
इलि कको नूनुआ		(चपा-छना हुआ) हंड़िया नहीं पीते हैं
मया तेबु चेदाको-2 [49]		हम उन्हें मेरा[1] ही दे देंगे।

मुण्डा जाति या आदिवासियों तथा सदानों में यह छुआछूत की प्रथा घृणित अर्थ में नहीं थी। समय के अनुसार इसे अपेक्षित कहा जा सकता था। जातीय, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक सभी दृष्टिकोणों से यह छुआछूत की प्रथा अपनी-अपनी रीति के अनुसार समाज की रक्षा के लिए थी।

उस समय मुण्डा समाज के रीति-रिवाज को अन्य जाति के लोग प्रोत्साहन ही देते थे न कि उसे अपेक्षित समझते थे। इसे छुआछूत न कह कर वर्जित खान-पान की प्रथा माना जा सकता है। इतना होने के बावजूद मुण्डा लोग अन्य जातियों के साथ 'सहिया' का सम्बन्ध जोड़ते रहे हैं। सहिया एक समान गोत्र या जाति से नहीं बल्कि अन्तरजातीय से जोड़ा जाता रहा है। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं:-

" हे सकिङ सपाकिया दो पुरः गेलङ जुड़िया कना-का? अमों सोनारः थाड़ा मेनाः, अञो सोनारः थड़ा मेनाः।" [50] अर्थात्- हाँ सहिया, हम दोनों सहिया की बहुत ही अच्छी जोड़ी है न? आपकी भी सोने की थाली है और मेरी भी सोने की थाली है।

यह 'सहिया' अथवा 'सकिङ' दो जाति के युवक या दो युवतियों के मध्य या लड़के-लड़की के मध्य भी फूल, करम, जामुन आदि की डाली, कपड़ा आदि बदलकर समाज उनका पवित्र मिलन-सम्बन्ध अब भी करवाता है। जिससे दो परिवारों का सम्बन्ध एक सूत्र में हमेशा के लिए बंध जाता है। जब सदानों सें कोई मुण्डा युवक या युवती सहिया जोड़ लेती है, तब उनकी भाषा या बोली सीखने की आवश्यकता मुण्डा में भी पड़ती है। जैसा कि एक जरगा लोकगीत से स्पष्ट होता है :-

एंगाञकिङ अपुञकिङ	अर्थात्- हे मेरे माता-पिता
दिकुकजि कजिअइङ बेन-2	मेरे साथ आप दोनों दिकू से बात कीजिए
हगाइङकिङ बरेङ किङ	हे मेरे भाई बहनों
सदु बंकड़ां बंकाड़इङ बेन-2	मेरे साथ तुम सब साधुओं जैसा बोला करो
दिकुकजि कजिअइङ बेन	मेरे साथ दिकू भाषा से बात कीजिए
मएनो लेका कजिअइङ बेन-2	मैना जैसा बात कीजिए
सदु बंकड़ां बंकाड़इङ बेन-2	मेरे साथ साधुओं की भाषा बोलिए
सालु लेका बंकाड़ाइङ बेन-2 [51]	तोते की भाँति बात कीजिए

मध्य काल में मुण्डा जाति सदानों के समाज के नजदीक में थी। कभी-कभी खाद्य सामग्री के अभाव में मुण्डा लोग सदानों से ऋण लेते थे। इससे सम्बन्धित उदाहरण देखा जा सकता हैं -*"इसु सिरमा सेनोः जना एन मरंङ बुरुहातु रे गेतु सायः सन्तानरे मोयोद गलौ पांड़ां तइकना। इनिः इसु*

रेंगेः तनेः तइकेना। मुसिं मोयोद बंड़ियातः बाबा रिंड़िआगुएः सेनोः जना। बंड़ियां ने पाड़ा के सूदूरः हिसाब ते बाबाएः ओमःइया।" [52]

अर्थात्- बहुत वर्ष पहले गेतु साय के वंश में मारंगबुरू गाँव में गलौपहान नामक आदमी रहता था। वह बहुत गरीब था। एक दिन उसने एक बनिया (साहु) से सूद पर धान ऋण लिया।

मुण्डारी लोकगीतों, कथाओं के बाद मुण्डारी कहावतों, लोकोक्तियों तथा बुझौवलों में भी मध्यकालीन सामाजिक तथ्य मिलते हैं। विशेषकर इस युग में सदानों के समाज से मुण्डा लोग परिचित थे। जैसे -

"दिकु दसि रम्बड़ा रसि, मुण्डा दसि टोंड़ोम बोतोएः।" [53]

अर्थात्- सदानों का घांगर उरद दाल खाता है, मुण्डाओं का धांगर गांठदार करया पहनता है। मध्यकालीन युग की स्थिति का अंदाजा कहावतों में भी दृष्टिगोचर होता है, जैसे- *"तिलि दसि लेका कमि"* [54]

अर्थात्- तेली जाति के नौकर के समान काम करना।

बुझौवलों में भी कई जाति या समाज का वर्णन आया है। उदाहरण के लिए- *"अयर-अयर बड़ाय कुड़ि, तयोम-तयोम कुम्बर कोड़ा।"*

अर्थात्- आगे-आगे लोहरा लड़की और पीछे-पीछे कुम्हार लड़का। इस पहेली का हल है - भेलवा (जंगली फल)। लोहरा लड़की अर्थात्- भेलवा बीज का काला रंग और कुम्हार के पके बर्तन के रंग जैसा कुम्हार लड़के का गोरा रंग भेलवा फल के पके रंग का प्रतीक है।

इस प्रकार मुण्डाओं की मध्यकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक जीवन आदि लगभग आदिकाल के अनुसार ही था। क्योंकि ये परम्परा के अनुयायी थे। इनके जीवन में किंचित युग की आवश्यकता के अनुसार ही परिवर्त्तन हो पाया है। प्राचीन युग की स्थितियों में ही युगानुकुल परिवर्त्तन हुए होंगे। वैसे परम्परावादी होने के कारण इनका मध्यकालीन युग प्राचीन काल के अनुरूप ही माना जा सकता है।

सांस्कृतिक तथ्य

जैसे-जैसे युग आगे की ओर अग्रसर होता गया, मुण्डारी लोकसाहित्य भी अपने पंख पसारता चला गया। मध्य काल के मुण्डारी लोक साहित्य में

विशेषकर लोकगीतों में और मनोरंजन से सम्बन्धित लोककथाओं और बुझौवलों में काफी वृद्धि हुई। लोकगीतों के समृद्ध होने का श्रेय 'अखड़ा' तथा लोककथाओं और बुझौवलों की वृद्धि होने में युवागृह का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। इस युग में मुण्डारी लोकसाहित्य में बढ़ोत्तरी के साथ ही साथ इनकी सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना में भी सुदृढ़ता आई। पारम्परिक रूप से इनके सांस्कृतिक उपकरण, जैसे- ढोल, नगाड़ा, ढाँक, बाँसुरी, बनम[1] (केन्दरा), शहनाई, नरसिंहा, शंख, सारंगी, टुहिला, करताल, और घुंघरू आदि थे जो आज भी यथावत हैं। कृषि से सम्बन्धित हल बैल, कुदाल, खुरपी, रूखना, बसुला, हंसुआ इत्यादि तथा चटाई, चटान, काँड़ी, मुसल, ढेंकी इत्यादि विभिन्न कृषि कर्म धान कूटने और सुखाने के लिए प्रयुक्त होते थे। मिट्टी के घड़े, पीतल तथा कांसा आदि के उनके बर्तन हुआ करते थे। प्राचीन काल की भाँति मुण्डाओं की वेश-भूषा बोतोए (करेया), धोती, लहंगा, पड़िया, पिछुड़ी, केदरा तथा आभूषणों में मुन्दरा, अंगूठी, ताबीज, हार, शंखा, चूड़ी, ठेला, रेला, बाजू, छूछी, अन्दू [2] पोला (नुपूर), मंदुली, चाँदवा, मूंगा माला आदि एवं कासी घासके पत्तों की काड़ेमाला, लकड़ी की कंघी, वर्षा से बचने के लिए बाँस-छाता और गुंगू थे।

इस युग में मुण्डाओं के राजनौतिक जीवन में बदलाव आया। जैसे- नागवंशी राजाओं के बाद राजपूत राजों की स्थापना तथा मुगल काल में मुस्लिम राज्य की स्थापना से मुडाओं के सांस्कृतिक जीवन में तथा धार्मिक पक्ष में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। धार्मिक क्षेत्र में मुण्डाओं के धर्म सरना को बढ़ावा ही मिला। परन्तु इनके द्वारा लाये गये वेश-भूषा का प्रभाव इन पर पड़ा और उसे अपनी संस्कृति से हर सम्भव जोड़ते जाने की प्रवृत्ति आई। मुगल भी मुण्डाओं तथा अन्य आदिवासियों की संस्कृति के अनुसार सांस्कृतिक सामग्रियाँ तैयार कर व्यापार करने लगे। इससे सम्बन्धित लोकगीतों में से एक जदुर गीत का अवलोकन करना उपयुक्त होगा :-

रजा मजी दिकु दुतिया ददा	अर्थात्- हे बड़े भाई, राजा सा दिकू धोती पहनना
कञइतुवनाया ददा	हे बड़े भाई, मुझे नहीं आता है।
भुंइयर टेबबाः तोलेया ददा	हे बड़े भाई, भुंइयरदारो जैसा गाँठ बांधना

कजसरियनाया ददा	हे बड़े भाई, मैं नहीं जानता हूँ
रजा मजी दिकु दुतिया ददा	हे बड़े भाई, राजा जैसा दिकू धोती
मयारेको तोलेया ददा	हे बड़े भाई, कमर में बांधते हैं।
भुंइयर टेबबाः तोलेया ददा	हे बड़े भाई, भुंइयरदारों जैसा गाँठ बांधना
कुड़म रेको टेमबाःया ददा [55]	हे बड़े भाई, छाती पर गाँठ बनाते हैं।

मध्य कालीन मुण्डा संस्कृति के अवलोकन से पता चलता है कि इनमें सालों भर मौसम के आधार पर सांस्कृतिक धारा प्रवाहित होती रहती थी। पर्व-त्योहारों में, विशेष रूप से नृत्य-अखाड़ों में युवक-युवतियाँ, बच्चे-बच्चियाँ, राजा-रंक, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, बूढ़े-बूढ़ियाँ, देवर-भाभी, इष्ट-कुटुम्ब आदि एक साथ बराबर हिस्सा लेते रहे है। कोई नाच-गाकर, कोई देखकर, कोई बजाकर, सभी अपनी-अपनी कला की रुचि के अनुसार व्यस्त रहते रहे है। इससे संबंधित एक जदुर लोकगीत देखना समीचीन होगा :-

दड़ि दड़ि कोबु सुसुना अर्थात्-	हम नाच सकने वाले नाचेंगे
का दड़ि दड़िकोबु लेलेला	नहीं नाच सकने वाले देखेंगे।
दंगड़ा दंगिड़ी कोबु सुसना	हम युवक-युवतियाँ नाचेंगे,
हड़म बुड़िया को बु लेला	हम बूढ़े-बुढ़िया देखेंगे।
सुसुन सुसुनको तेपा तड़ि	नाच नाचने वाले थथक थइया
लेलेल लेलेको पराड़ा पुरूडु [56]	दृश्य देखने वाले आँखे खोलते और बंद करते हैं।

जब किसी गाँव के अखाड़े में नृत्य होता है, तब उसकी आवाज सहज ही दूर-दूर के गाँवों तक पहुँचती है। तब उन गाँवों के युवकगण युवागृह में बातें करते हैं, वही प्रसंग गीत बन जाता है और अखाड़े में जाकर उसी बात को गीत के लय-ताल में बोलते और चलते हैं। ढ़ाल, नगाड़ा, मुरली, करताल आदि वाद्य यंत्रों की चर्चा लोकगीतों में मिलती है। यहाँ एक जदुर लोक गीत उद्धृत करना अपेक्षित होगा :-

ओको कोरे होको सुसुन तना अर्थात्-	मित्रों, कहाँ नृत्य हो रहा है
केड़ा बोः नगेराको दिलकओ जदा	बहुत बड़ा नगाड़ा बजाया जा

	रहा है
चिमए कोरे होको करम तना	मित्रों, कहाँ नाच चल रहा है
सेता मोचा मुरली को ओरोंजदा	जोर से बजने वाली मुरली बजाई जा रही है।

जिस प्रकार किसी प्रमुख व्यक्ति को उनकी बातों की अवाज से भी पहचाना जा सकता है, उसी तरह कोई अपने मित्र को उसके द्वारा बजाए बाजे की अवाज से भी सहज ही पहचान लेता है। लेकिन दो मित्रों की जोड़ी एक के बिना एक अखाड़ा में नहीं जा सकते। फिर भी किसी वजह से कोई बिछुड़ जाता है तब ऐसी अवस्था में अपने मित्र के बजाये बाजे की आवाज दूसरे को सुनाई पड़ती है, वह वहाँ किस प्रकार की तब भावनाएँ उठती है, इसका अनुभव इस करम गीत में सहज ही किया जा सकता है :-

अकड़ा रे डुलकि दो	अर्थात्- अखाड़े में ढोलक की आवाज
गतिञ रूइ लेका दो	मेरे मित्र की जैसी लगती है।
गुडुगुडुइरे अएगे लेकञ अयुमि	गुड़गुड़हट भी उसी के समान सुनाई देती है।
अञदो चितेकएः दोला किञ	पर, उसने मुझे क्यों आने के लिए नहीं कहा?

तयोम जनञ एनाते	मैं इसी से पिछड़ गया हूँ
अएगेञ तंगितनः ते	(कि) मै उसी के इंतजार में हूँ।
गुडुगुडुइरे अएगेलेकञ अयुमि-	(ढोलक) गुड़गुड़ाता है तब उसी के जैसा लगता है
अञदो चितेकएः दोला किञ	पर, उसने मुझे क्यों आने के लिए नहीं कहा?

कोरे नमिन अएःकारे	उसके बिना इतना
ता-लोःअ अकड़ा रे	अखाड़ा जमता भी कैसे?
गुडुगुडुइरे अएगेलेकञ अयुमि	गुड़गुड़हट उसी के समान सुनाई देती है।
अञदो चितेकएः दोला किञ	पर, उसने मुझे क्यों आने के लिए नहीं कहा?
जी रे अलए बलए रे	मेरा दिल घबरा रहा है।
सेनाचिञ तंगि रे	मैं (अकेले) जाऊँ या उसकी प्रतीक्षा कर लूँ!

गुड्गुड्इरे अएगे लेकञ अयुमि-गुड़गुड़हट मित्र के समान ही लगती है।
अञदो चितेकए: दोला किञ पर, उसने मुझे क्यों आने के लिए नहीं कहा?

वाद्य यंत्रों के अलावे आभूषणों का वर्णन भी मुण्डारी लोकगीतों में आया है। इससे सम्बन्धित एक जरगा लोकगीत देखना उचित होगा :-

ओको रेको बइ तना	अर्थात्- कहाँ बनाया जाता है।
हइ जंग सोना सिकिड़िं -2	मछली-हड्डी के समान सोने का हार
चिमए रेको बड्इ: तना	कहाँ बनता है?
जड़ाजंग रूपा मन्दुलि -2	एरंडी के बीज जैसी चाँदी की मंदुली
बुण्डु रेको बइतना	बुण्डु में बनाते हैं
हइ जंग सोना सिंकिड़ि -2	मछली-हड्डी जैसे सोने का हार
तमाड़ रेको बड्इतना	तमाड़ में बनती है
जड़ा जांग रूपा मंदुली -2	एरंडी बीजाकाार चांदी की मंदुली।

इसी प्रकार बुण्डु-तमाड़ का नाम मुण्डारी लोकगीतों तथा गाथाओं में भी सांस्कृतिक एवं औद्योगिक केन्द्र के रूप में आया है। एक जदुर लोकगीत और भी देखा जा सकता है :-

ओको रेको बइ तना	अर्थात्- कहाँ बनता है?
जो सुकु बोंगा टुइला	कद्दू फल का देव टुहिला
चिमए रेको बड्इ तना	कहाँ बनती है?
सेटेमद रंगा रूतु	पती बाँस की रंगीन बाँसी
बुण्डु रेको बइतना	बुण्डु में बनता है,
जो सुकु बोंगा टुइला	कद्दू फल का दुव टुहिला
तमाड़ रेको बड्इतना	तमाड़ में बनती है
सेटेमद रंगा रुतु [58]	पतली बाँस की रंगीन बाँसी।

मध्य काल में भी मुण्डा युवतियाँ पैर की उंगलियों में दो-तीन की संख्या में अंगूठी (झंटिया) पहनती थीं, जो चलते समय आपस में टकराने से आवाज करती थी। पानी भरने के लिए मिट्टी का घड़ा, सिर पर घड़ा रखने के लिए सूत का नेठो, कमर में नीली साड़ी एवं मुख में मुस्कान होती थी। इससे सम्बन्धित एक करम गीत प्रस्तुत है :-

डिण्डा सोमए तइ केना अर्थात्- तुम कुंवारी हो

फुलाइ तेगेम चबन जना	तुम्हें इसका गर्व है
पोला तमदो न मइना	हे लड़की (नतिन) तुम्हारी पोला (चूड़ी)
निराल सड़ी तना	सुन्दर बज रही है
मइनम लन्दा तनेगे	(अतः) हे लड़की, तुम मुस्कुरा रही हो।

बोः चेतन सुतम बिन्डा	सिर पर सूत का नेठो है
बिन्डा चेतन हसा चाटु	नेठो के ऊपर मिट्टी का घड़ा है
सेना कदम ना	हे युवती, तुम ऐसी चलती हो
मइना जिड़िव जिड़िव तन	झिड़िव-झिड़िव करती
मइनम लन्दा तनेगे	हे युवती, तुम मुस्कुरा रही हो।

मयांग रेदो नीले साड़ी	तुम्हारी कमर में नीली साड़ी है।
साड़ी तमदो ओरे तनेगे	तुम्हारी साड़ी खिसक रही है
लेलोः तनम ना	हे लड़की, तुम ऐसी दिख रही हो
मइना कदल दारु लेका	जैसा की केले के वृक्ष है
मइनम लन्दा तनेगे [59]	हे युवती, तुम मुस्कुरा रही हो।

इस काल में छोटानागपुर के आदिवासियों एवं अपने-अपने सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान चिन्ह थे जिसके द्वारा किसी जाति एवं समुदाय को सहज ही पहचाना जाता था। आज भी इसका कुछ रूप मौजूद है, जैसे स्त्रियों में गोदना का चिन्ह। गले, छाती, बाँह, पैर में अलंकृत गोदना करती थीं। मुण्डा जाति की स्त्रियों के कपाल में, आँखों के दोनों बगल में, ठुड्डी में एक छोटी बिन्दु के रूप में तथा नाक में बाँई ओर बड़ा बिन्दु के रूप में रहता था। अतः मुण्डा जाति की स्त्रियों की पहचान नाक के बड़े आकार के गोदना से की जाती थी। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :-

आदिवासी उराँव जाति	अर्थात्- आदिवासी उराँव जाति (की स्त्रियाँ)
मोलोंग रेको खोदन तना	कपाल में गोदना करती है
आदिवासी मुण्डा जाति	आदिवासी मुण्डा जाति (की स्त्रियाँ)
मूँ रेको खोदन तना	नाक में गोदना करती हैं
इसु बुगिन बुगिन तना	यही इसकी परम्परा है
इसु सोत सोत तना [60]	यही इसकी संस्कृति है।

''गोदना' जाति परिचायक चिन्ह के साथ-साथ स्थाई श्रृंगार का एक ऐसा आभूषण है जिसको मरने पर भी कोई छीन नहीं सकता और पाताल लोक में या स्वर्ग में ईश्वर इसी गोदना के माध्यम से उसे पहचान कर लेते हैं। ऐसा इनके बीच में एक लोक विश्वास था। इसके अतिरिक्त शादी-विवाह में दूर से मुण्डा जाति की बारात भी पहचानी जाती थीं। इस जाति की बारात 'चउड़ल' या डोली लेकर जाती थी। इससे सम्बन्धित एक शादी लोकगीत द्रष्टव्य होगा :-

चउड़ल चवेतन रे काउ दुबाकन अर्थात्- पालकी के ऊपर कौआ बैठा है
निरमेया बड़ेम काउ सोदामा हे वर बाबु, तुम भाग जाओ कौआ काटेगा
पटि कुनुड़ारे बिङ उगुरा कन चटाई-मोढ़ में साँप घुसा है।
ओचो मइ टोरेम बिङ सोदामा [61] हटो वधू, तुम्हें साँप डंस लेगा।

लोकगीतों के बाद लोकगाथाओं में भी सांस्कृतिक विवरण भरे पड़े हैं। इस प्रसंग मे निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :-

ए हो सिराबियाँ, ए हो सिरा संगा
कुल दुतम केनालं, कुल दराड़ा केनालं
ककोगे मनातिं, ककोगे बुझातिं
उडुंअञ तलंमे, सेटेराञ तलंमे
सोने केरा डुंटी, रूपे केरा टैंणि
चौरा-बौंरा, बंडि बिसिरि
अञगे सेनोगा, अञगे बिरिदा [62]

अर्थात्- हे धर्मपत्नी
हमने दूत भेजा था, हमने संदेश पहुंचाया था
उन्होंने नहीं माना, उन्होंने नहीं समझा
मेरे लिए निकाल दो, मेरे लिए सौंप दो
सोने की डुण्टी[1], चांदी की घंटी
चौरा-भंवरा, बन्डी-बिसरी
अब मैं जाऊँगा, अब मै ही उठूँगा।

मुण्डारी लोकगाथाओं के अतिरिक्त लोककथाओं में भी सांस्कृतिक तथ्य यथावत प्राचीन काल की तरह ही भरे हुए हैं। इस काल में विज्ञान से नहीं अपितु गुण-ज्ञान के विज्ञान से मनुष्य आकाश में उड़ता था। लोग घड़ों में वस्त्र, रुपये, आभूषणों आदि को रखते थे। अपने दुश्मनों का सामना करने के लिए अस्त्र रखते थे। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं:-

"बोंगा होन अयः मुन्दाम राजा होनेः ओमःइया चि नेया कोतेम मोनेया एनतेगेः इदिमा। राजा होन एनातेः तुर्सि केदा अदेः अपीर जना। गोटा सिंगि अपिर जना एनाते अयुब-अयुब एना दिसुमें: तेबाःलः आद मोयोद बुड़ियाः ओड़ाः रे तइन जना। बुड़िया अयः होन लेकागेः जोगाव तइ तैइना। मुसिंग राजा होन अदींग रे उपुतिया चटुकोएः लेल केदा। एनाते कुलिजःइया चि अते नानी हेन चटुकोरे दो चनाः मेराः ? बुड़िया मेन केदा, का बाबु मोयोद रे सेंगेल मेनाः, मोयोद रे होयोदुदुगर, ओड़ोः मोयोद रे दःमेन। सेंगेल चटुपोवाःलेरे गोटा दिसुम लोःअ। होयो चटु पोवाः लेरे दो दुदुगरोःअ, जेतए कको ले लोगा। एनाते दः चटु पोवाः लेरेदो गोटा दः गिड़िओःअ। राजा होन ओड़ोः गेः कुलिकिःया चि हेन चेतन चटु रेदो चनाः मेनाः? बुड़िया मेन जदा नेया रेदो मोयोद दिसुम रेन राजाः मेद मेनाः। नाः दो राजा होन अयुम केदा आद निदा दो सेबेन को मजा लेका को गितिः दुडुम जना। सोबेन को दुडुंम जन चि राजा होन उपुनियाँ गालेद सबकेदा आद अकोवः दिसुम मुलितेः अपिर जना।" [63]

अर्थात्- देवता ने राजकुमार को अपनी अंगूठी दे दी और कहा कि तुम जहाँ जाना चाहोगे वहीं यह तुम्हें ले जायेगी। राजकुमार ने अंगूठी पहन ली। वह उड़ गया। दिन भर उड़ते-उड़ते शाम को वही एक घर के पास उतरा। उस घर में एक बुढ़िया रहती थी। बुढ़िया को कोई संतान नहीं थी। इसलिए उसने बड़े प्रेम से राजकुमार को रखा और पालने-पोसने लगी। एक दिन राजकुमार ने बुढ़िया के घर में चार घड़ों को देखा। उसने पूछा- हे दादी, इन घड़ों में क्या रखी हो? बुढ़िया ने कहा- बेटा, इनमें से एक में आग है, दूसरे में आंधी (हवा) है और तीसरे में पानी है। पहले घड़े को फोड़ने पर पूरी धरती में आग लग जाएगी, दूसरे को फोड़ने पर सम्पूर्ण संसार में तूफान आ जायेगा और जब तीसरे को फोड़ा जाएगा तब समस्त पृथ्वी पानी से भर जाएगी। राजकुमार ने फिर पूछा- और उस ऊपर वाले घड़े में क्या है? बुढ़िया ने बताया - उसमें एक राजा की आँखें हैं। इसके बाद दोनों सो गये। थोड़ी

देर में राजकुमार चुपके से उठा और चारों घड़ों को उठाकर भाग निकला।''

परम्परा के अनुसार ही मध्यकाल की मुण्डा संस्कृति में बैठने के लिए गण्डु अर्थात्- पीढ़ा, सोने के लिए खजूर के पत्ते की चटाई ही होते थे। आज भी गाँवों में इन्हीं की प्रमुखता है। साधारणतः औरतें हुक्के का सेवन करतीं थीं और पुरुष खैनी का। शादी-विवाह के अवसर पर समधियों को पत्ती से बनाई गई बीड़ी तथा समधिनों को हुक्का दिया जाता था। इससे सम्बन्धित शादी गीत भी है :-

हुक्का चेतन चिलम मेनः	अर्थात्- हुक्का के ऊपर चिलम है
चिलम चेतन गटी मेनः	चिलम के ऊपर गोटी है
गोटी चेतन गुड़ाइ मेनः	गोटी (छोटा पत्थर) के ऊपर गुड़ाखू है
गुड़ाइ चेतन सेंगेल मेनः	गुड़ाखू के ऊपर आग है।।
हुका दोए नू तना नवा सूमदि	उसे नई समधिन पीने लगी हैं
हए लर लर-हए लरेः नू तन	लर-लर आवाज करती पी रही हैं।

''लेलेल नगेन्ते मुण्डा को रः जना। अकिनोकिन रः जना। तेबाः लेद इमताःगे मियद परकोम ओड़ोः मोयोद दरु गण्डु को दो केदा ओड़ोः को मेन केदा मर ओकोए ओकोवाबेन सुकुवाः एन रे दुब बेन। मुकुट राय दारु गण्डु रे दुब जना आद फनीमुकुट परकोमरेः दुब जना, नया लेल जना।'' [64] अर्थात्- एक दिन निश्चित करके सभी लोग बुलाए गए। दोनों लड़के भी बुलाए गये। पहले एक खाट और एक पीढ़े को पसंद करने के लिए दोनों से कहा गया कि जिस पर जिसे अच्छा लगे उस पर बैठें। फणिमुकुट राय ने खाट पसंद किया और मुकुट राय पीढ़े पर जा बैठा ।

मुण्डारी लोकसाहित्य से यह भी प्रमाणित होता है कि इस युग में भी मुण्डा संस्कृति के पदाधिकारियों का चुनाव किया जाता था। यह अवधि तीन या पाँच और सात वर्षों की होती थी। यह चुनाव ढेला पर छड़ी रखकर भी किया जाता था। जिसे मुण्डा लोग अपनी भाषा में 'कोटोः' कहते हैं। यह पद्धति कहीं-कहीं अभी भी मौजूद है। विशेष रूप से अब किसी पूजा को सम्पन्न कराने के लिए पुजारी का चयन इस विधि से किया जाता है। इससे सम्बन्धित कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं:- *''तारा को मेन केदा मुकुट राय तराको तेन केदा मुकट सहय। कजि बरिया जना। एन हुलङ राजा सलारः दिन दो जना।''* [65] अर्थात्- कुछ लोगों ने कहा कि मुकुट राय और कुछ ने

फणिमुकुट राय। बातें दो हुई। तब राजा के चुनाव की तिथि रखी गई थी।

लोककथाओं के बाद मुण्डाओं के मंत्रों में भी सांस्कृतिक तथ्य घुले मिले हैं। एक सम्बन्धित मंत्र की प्रस्तुति अभीष्ट होगीः-

हे सिरमा रे सिङबोंगा	अर्थात्- हे स्वर्ग के परमेश्वर
ओते रे ओते एंगा तिसिंदो	पृथ्वी की धरती माता
तोवा लेकम तुराकना	दूध में उगने वाले
दही लेकम बोर हड़गुना	दही में डूबने वाले
चाइरो कोनो रे - दसो दिसारे	चारों कोण, दसो दिशाएँ
उतरो कोना रे - दखिनो काना रे	उत्तर, दक्षिण
पुरुबो काना रे - पछिमो कोना रे	पूरब और पश्चिम
जिलिमिली धरती, लेयालइरिम्बिल	झिलमिल धरती, झुका हुआ आसमान
पाटि लेका बिला कना	चटाई सी बीछी हुई
डुबा लेका हरुबा कना	कटोरा सा ढंका हुआ
दारु सिङ चेणे चिपरूद	गाछ-वृछ, पशु-पक्षी
बिर बुरु गड़ा पिड़ी	बन-पहाड़, नदी-मैदान
अमगे सिरिजना	तुम्हारी ही सृष्टि है।
अमगे उपरजना	तुम्हारी ही उत्पत्ति है।
अम तेगे होरोवा कना	तुम्हीं से टिका है।
अम तेगे जंगिया कना	तुम्हीं से रक्षित है
तिसिं ने सोहराईरः दिन रे	आज इस पर्व के दिन
तिसिं ने गोड़ां बोंगा रः दिन रे	आज इस नेग के दिन
अले अमः होनको	हम तुम्हारी संतान
अले अमः गांड़ांको	हम तुम्हारी औलाद
अम गेले रः तना	हम तुम्हें बुलाते हैं।
अम गेले गोवरि तना	हम तुम्हें गुहराते हैं।
अले सोंगे रे दूब को:ते	हमारे संग बैठ लो
अले पंति रे जारु को:ते	हमारे संग बतिया लो
मोद पुडुः इलि रसि	एक दोना हंड़िया-रस

मोद पतड़ी लेटे मंडि	एक पत्तल खिचड़ी
अलेलोः नू लेम	हमारे साथ पी लो
अलेलोः जोम लेम	हमारे साथ खा लो
गोड़ां रे गोड़ां बोंगा	गौशाले के गोहार देवता
किरिसि उरिः केड़ देवी	कृषि-पशुधन की देवी
अले अमोले रः तना	हम तुम्हें भी बुलाते हैं।
अले अमोले नेओता तना	हम तुम्हें भी न्योतते हैं
अपे सोबेन बोंगा कोते	तुम सब देवताओं से
अपे सोबेन देवी कोते	तुम सब देवियों से
अले नेअले अरजि तना	हम यही अरजी करते हैं।
अले नेअले विनती तना	हम यही विनती करते हैं
जोअर ! जोअर ! जोअर ! [66]	जोहार ! जोहार ! जोहार ! "

मंत्रों के अलावे खेलगीत में भी सांस्कृतिक तथ्य हैं। मुण्डारी भाषा-भाषी बच्चे सदानी भाषा के खेल गीतों का भी प्रयोग करते हैं। यथाः-

आमको जामको
तितिरिपी जूड़ा पान
चइटले-चुइटले
राम-जानकी पैंनी बजे
झानर-झूनर, छुटो।

इसके अतिक्ति बुझौवलों में भी मध्यकालीन सांस्कृतिक पक्ष का वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए - *"सकम रेअः पोटोम, जिलु रे हका कना-लुतुर तड़ाकि।"* [67] अर्थात्- पत्ती का गड्डा माँस में टंगा हुआ है। इसका अर्थ है - कान में तरकी।

"रूपा रेन चेणें सोना रेअः ठोर मेनदो चःलोम ते दःए नुंइया।" [68] डिबरी। अर्थात्- चाँदी की चिड़िया, सोने की चोंच लेकिन पूंछ से पानी पीती है। अर्थ है - ढिबरी।

"मियद होड़ो सेतः रेअः रेड़ाना अर ढेलका बुरु रेः दुबा - चाटु।" अर्थात्- एक आदमी सबेरे नहा कर ढेलका पहाड़ पर बैठना है। इसका मतलब है घड़ा।

धार्मिक तथ्य

मध्यकालीन छोटानागपुर की जनता में जिस प्रकार राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक एकता थी; उसी तरह से धार्मिक एकजुटता भी थी। यहाँ के समस्त मुण्डा आदिवासी एक पूजा स्थान 'सरना' में सरना धर्म को मानते थे। इसे सम्बन्धित पंक्तिया देखी जा सकती हैं :-

"सरना - सदान बीचे
गजब कर मेल।" [70]

सरना धर्म का पुजारी पहान रहा है। पहान ही धर्म के आधार पर गाँव का शासन करता था। धर्म या सरना पूजा के नाम पर मुर्गी-चेंगना और अन्न का चन्दा ही गाँव की मालगुजारी थी। यह परम्परा मुण्डाओं में अब भी सुरक्षित है। इससे सम्बन्धित पंक्तियों का अवलोकन किया जा सकता है :-

"पड़हा-पंचायत कर
सबसे ऊँचा मान,
पहान कर हांथ में
शासन कर कमान।" [71]

इस काल में मुण्डाओं, अन्य आदिवासियों तथा धर्म पूर्णतः 'कर्मकाण्ड' पर ही आधारित था। ये माँस का उपयोग पूजा के नाम पर करते थे। इसके अलावे शिकार और कृषि कार्य जैसे- 'मदइत' या मदद (कोई काम खस्सी के नाम पर मिल जुलकर करना)।

मुण्डाओं के धर्म सरना को विश्वास एवं धार्मिक दृष्टिकोण से कई शाखाओं में बाँटकर भी देखा जा सकता है। उसी दृष्टि से इनके कई पुजारी और पूजा स्थल भी हैं।

धर्म के दृष्टिकोण से :-

मुण्डाओं के 'सरना' (पूजा स्थान) को देवीगुड़ी कहते हैं। यहाँ सरना के पुरोहित (पहान) द्वारा वर्ष में एक बार देवी- देवताओं की पूजा होती है। जिसका विवरण पहले भी दिया गया है। जैसे-

सिङबोंगा	--	ईश्वर
बुरू	--	पहाड़ देवता
इकिर या "चुमन इकिरया	--	जल देवी
चोन्डोर इकिर" [72]	--	जल देवी
मंड़ाबुरू या मा बुरु या गुमि बुरु	--	पहाड़ देवता
देसाउली	--	ग्राम देवता
नगे एरा	--	जल देवी
विन्दी एरा	--	जल देवी
चण्डी	--	चण्डी
सिमन-चतुर	--	सीमा-चौहद्दी के देवता।

उपर्युक्त शक्तियों की प्रत्यक्ष पूजा में ही अलौकिक-निराकार ईश्वर, पूर्वजों, आत्माओं, बोंगाओं एवं समस्त देवी-देवताओं का निवास है। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं:-

"बन्दाएते बोः कन्दुर सःरे संडकाएते हनसः नसः रे बाबारिआ उलिदारु मेनः। उन उपनियाँ दारुकोरे चुरिन को तइना।" [73] अर्थात्- तालाब के दक्षिण की ओर, सड़क के इस ओर और उस ओर दो-दो आम पेड़ हैं। उन चारों आम के वृक्ष में चुड़ैलों का निवास है।

पूजा पाठ की दृष्टि से :-

बुरुबोंगा (पहाड़ी देवता की पूजा) :- यह पूजा देवीगुड़ी पूजा के बाद इसी दिन, पानी नहीं बरसने पर पहान द्वारा नये चुक्का में पहाड़ पर आग जलाकर, गाय का दूध खौलाकर, उसे देखा जाता है कि किस दिशा में दूध ा पहले गिरा। तब उसको पत्थर से मारकर फोड़ दिया जाता है। इसे मुण्डा लोग अपनी भाषा में 'बरुथेर' (पहाड़ पर पत्थर मारना) कहते हैं। चुक्का से किस दिशा में दूध गिरा या ढरका, इसे देखकर यह अनुमान लगाते हैं कि किस दिशा से इस वर्ष अधिक वर्षा होगी। यह पूजा प्रति वर्ष नहीं की जाती है अपितु अकाल या ठीक से पानी नहीं बरसने पर ही की जाती है। कहीं-कहीं इसमें बैल की बलि भी दी जाती है। सदान इसे बड़ पहाड़ी की पूजा के रूप

में करते आ रहे हैं।

इकिर बोंगा (जलदेवी):- यह पूजा केरः मुण्डारी क्षेत्र में बारह वर्षों में एक बार सभी क्षेत्र के मुण्डा अपने खूंट के लोगों से मिल-जुलकर पानी या नदी के किनारे या झील के पास करते थे। इसके नाम पर काड़ा या भैंसे की बलि दी जाती थी। खूँटी क्षेत्र में बहुत पहले से ही इसे बदल कर भैंसा के बदले में काली भेड़ की बलि दी जाती है। इससे सम्बन्धित कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है- *"लेलदो मिसामिसा मिनडी रूप, सकुरि रूपु, कारे बुड़ि रूपतेए लेलीःअ। चुमन इकिर बनोः जन रःते नाःदो एन टयद चुमन इकिर सोकोड़ा नुतुमअकना।"* [74] अर्थात्- कभी-कभी भेड़ी, सूअर या बुढ़िया के रूप में दिखाई पड़ती है। 'चुमन इकिर' या जलाशय अब नहीं रहने के कारण इसे जलाशय सोकरा का नामकरण दिया गया है।

मंड़ाबुरु या गुमिबुरु (पहाड़ माना गया भू-भाग की पूजा) :- यह पूजा कहीं-कहीं सात या पाँच वर्षों में बैल की बलि देकर सामूहिक रूप से की जाती रही है। पहान इसकी बलि नहीं देता है। इसके लिए किसी दूसरे व्यक्ति का बराबर के लिए चयन कर दिया जाता है।

मुण्डाओं के धार्मिक जीवन में कई पर्व-त्योहार है। पर्व-त्योहार के अनुसार देवीगुड़ी में पूजे जाने वाले देवी-देवताओं या प्राकृतिक शक्तियों की ही पूजा विभिन्न पर्व के अवसर पर विभिन्न नाम से की जाती है। जैसेः-

1. जयर बोंगाः- यह पूजा प्रतिवर्ष सरहुल पर्व में पहान द्वारा की जाती है। पहान उपावास कर उस दिन नये घड़े में पानी भरता है। इस समय जुलूस स्परूप यात्रा की जाती है। जयर में जतरा या मेला या अखाड़ा के रूप में परिणति होती है। पहान को उसके घर पहुँचाकर गाँव के प्रत्येक टोले के अखाड़े में नाच-गान शुरू हो जाता है। सरहुल के दिन पहान तथा सहयोगी पहनाइन उपर्युक्त देवी-देवताओं के नाम से मुर्गी-चेंगना की बलि देकर पूजा करते हैं। पहनाइन प्रसाद बनाती है। इस दिन जयर में गाँव के पहान के सहयोगी भी रहते हैं। इस दिन ग्रामवासी के घर के प्रधान देवी देवताओं की पूजा अपने घर में पूर्वजों के रूप में एक कुरथी या (सुकड़ा) रंग की कटली मुर्गी की बलि देकर करते हैं।

2. कादेलेटा (हरियाली पूजा) :- जयर पूजा स्थल में कृषि पर्व के समय में पहान-पहनाइन एवं उसके सहयोगी भी रहते हैं। मुर्गियों की बलि

उपर्युक्त जयर बोंगा के अनुसार की जाती है। सदानों में भी यह पूजा पहान ही करते हैं।

3. चकोंड़ा करम (चाकोड़ का करम गाड़ना):- इसे बूढ़ी करम भी कहते हैं। आषाढ़-श्रावण में जब पानी नहीं बरसता है तब मौजा की सभी बुढ़िया औरतें एवं युवतियाँ, पुरुषों एवं युवकों की भाँति वस्त्र आदि पहनकर पहान के आँगन में चाकोड़ घास या पौधे का करम गाड़ती हैं। रात भर नृत्य-गान कर सुबह गाँव की सीमा पर ले जाकर फेंक या बहा देती हैं। इसके साथ घर की गंदगी को भी घड़े में भरकर सीमान पर रख देती हैं। नहा-धोकर स्त्रियाँ लोटा में पानी भरकर पहनाइन के साथ देसाउली में पानी ढालती हैं। यह पर्व भी वर्षा नहीं होने पर मनाया जाता है।

4. कोलेमसिङ बोंगा (खलियानी पूजा):- यह पूजा माघ पर्व के पहले पहान अपने खलियान में देवीगुड़ी तथा जयर के देवी-देवताओं अथवा प्राकृतिक शक्तियों के नाम से मुर्गी-चेंगना की बलि देकर करता है। पहान-पहनाइन और इनके अन्य सहयोगी भी उस समय मौजूद रहते हैं। इस दिन पहान गाँव के उपस्थित लोगों को वहीं तपान (हंड़िया) आदि का प्रसाद देता है। इसी रात से जदुरा-नृत्य गान शुरू हो जाता है। किसी-किसी क्षेत्र में पहान, पहाड़ी देवता की भी पूजा करता है। तब उस पहाड़ पर मेला भी लगता है। जैसे- मरंगहादा का 'सुकन मेला'। इसी पूजा के बाद ही मुण्डा लोग पुवाल समेट कर रखते हैं।

5. करम पर्व :- यह पर्व सम्पूर्ण झारखण्ड में शुक्ल पक्ष के भादो एकादशी से लेकर अगहन तक मनाया जाता है। मूल करम भादो एकादशी को ही माना जाता है। इस पर्व में पहान लाल रंग के मुर्गे की बलि देकर पूजा करता है। मुण्डा, आदिवासियों के अलावे सदानों का भी यह प्रमुख पर्व है।

6. मण्डा पर्व (हकन बुरु):- यह पर्व छोटानागपुर के आदिवासियों और सदानों का एक संयुक्त पर्व है। पार्वती धाम में बकरे की बलि भी मुण्डा, आदिवासी एवं सदान व्यक्तिगत रूप से चढ़ाते हैं। इस पर्व को झारखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग चाँद की तिथि के अनुसार चैत्र मास से आषाढ़ तक मनाते हैं। मण्डा पर्व का पुजारी गोसाई होता है। लेकिन ग्राम स्तर पर मात्र जागरण के रूप में मनाने पर उस गाँव का पहान ही इसकी पूजा करता है।

पारिवारिक पूजा-अनुष्ठान एवं पर्व-त्योहार :-

1. मरंगबोंगा (श्रेष्ठ या बड़ा पूजा):- 'मरंबोंगा' एक भाई या घर में बराबर के लिए स्थिर नहीं रहकर कभी बड़ा भाई, कभी छोटा भाई, कभी अन्य भाई के घर में निवास करता है। इसलिए इस पूजा के पूर्व सर्वप्रथम यह देखा जाता है कि किस भाई के पास या घर में देवता मौजूद है। इसका पता लगाने के लिए सभी भाइयों के नाम से ढेले रखे जाते हैं। उसमें अरवा चावल छींटते हुए कहा जाता है कि- देखो हम आज यही पता कर रहे हैं कि तुम किसके घर में मौजूद हो, तुम अपना दर्शन दिखाओ, हम वहीं तुम्हारी पूजा करेंगे! इतना कहकर एक व्यक्ति ढेलों पर छड़ी मारता है। छड़ी का सही निशान जिस ढेले पर तीन बार पड़ता है, समझा जाता है कि यह देव उसी के घर में है। अतः वहीं इस बार उसकी पूजा-अर्चना की जाए।

यह पूजा घर-दरवाजे में साखूडाली गाड़कर सभी भाइयों के साथ मिलकर स्वयं करते हैं। इस पूजा मे किसी जीव की बलि नही दी जाती। हंड़िया रस, भोजन और गोटा उरद दाल चढ़ाया जाता है। प्रति वर्ष यह पूजा नहीं की जाती है।

2. गोंड़ा हंकार (गोहार पूजा) :- यह पूजा परम्परा से मनोनीत सदस्य या पंच के द्वारा तीन या पाँच वर्षों पर की जाती है। इस पूजा में लाल मुर्गे की बलि दी जाती है। प्रति वर्ष इसके लिए परिवार का प्रधान सोहराई पर्व में 'गोरेया' पूजा करता है। जिसमें लाल रंग के मुर्गे की बलि दी जाती है। सदानों के यहाँ भी यह पर्व इसी रूप में सम्पन्न होता है।

3. सोसोबोंगा:- यह पूजा देवंड़ा या भगत अथवा सोसोबोंगा कथा की जानकारी रखने वाले से करम के पूर्व घर में ही की जाती है। इसमें अण्डे की बलि दी जाती है। यह अण्डा 'खसरा युवक' अथवा ईश्वर का अण्डा या खेलने की गोली है। इसी गोली से ईश्वर ने असुरों के लोहे की गोली को चूर-चूर कर उन्हें पराजित किया था।

सिर्फ मुण्डा या आदिवासी परिवार के प्रधान के द्वारा निम्नांकित अवसरों पर पूजा की जाती है :-

(क) सरहुल, (ख) बुना, (ग) नवाखानी
(घ) खलियानी (एनपुना) (ङ) सोहराई का गेरेया,

(च) माघ और (छ) घरेलू करम में।

पहान और घर का प्रधान आदि, घर देवता अथवा पूर्व के रूप में तथा उपर्युक्त देवी-देवताओं की पूजा पर्व से सम्बन्धित कटली मुर्गी तथा मुर्गे की बलि देकर करते हैं। इसके अतिरिक्त :-

गरासी या अचराइल पूजाः- यह पूजा किसी बहू के प्रथम गर्भावस्था में मायके वालों के द्वारा लड़के के घर-आंगन में काली भेंड़, सादा मुर्गा, लाल और सुकड़ा या कत्था रंग की कटली मुर्गी की बलि देकर की जाती है। इसमें सबसे पहले इकिर के नाम से भेंड़, ईश्वर के नाम से सफेद, बुरु (पहाड़ी) के नाम से लाल रंग का और सुकड़ा रंग की कटली मुर्गी की पुरखों के नाम से बलि दी जाती है।

बूढ़ी गरासी :- अचराइल पूजा न करके अन्त में मर मिट जाने के बाद उपर्युक्त दान-दक्षिणा उस बुढ़ी के मायके वालों को बुला कर, पूजा-अनुष्ठान करने के बाद, उक्त रंग की भेड़ तथा मुर्गे को जिन्दा ही देकर भेज दिया जाता है। उस काली भेड़ को सादे कपड़े से बांध कर वे ले जाते हैं। यह पूजा गरासी पूजा नहीं करने वाले परिवार में ही की जाती है। जिस परिवार में अचराइल पूजा की परम्परा है, वहाँ गरासी पूजा की आवश्यकता नहीं है। किंचित भेदों के बावजूद यह कहा जा सकता है गरासी और बूढ़ी गरासी एक ही देवी-देवताओं की पूजा है। अन्तर इतना है कि गरासी पूजा बहू के प्रथम गर्भावस्था में और बूढ़ी गरासी पूजा बूढ़ी बहू के मर मिटने के बाद की जाती है।

मुण्डारी लोकसाहित्य में मध्यकालीन ऐतिहासिक तथ्य भी प्रायः वही हैं जो प्राचीन काल में थे। ऐसा इसलिए कि मुण्डा समाज परम्परानुरागी समाज है। इस समाज में परिवर्तन विशेष परिस्थितियों या आवश्यकताओं को देखते हुए ही होता है। यही कारण है कि मुण्डा समाज में प्राचीनतम संस्कृति आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है। मध्य काल के उपरान्त मुण्डा संस्कृति में परिवर्तन के बिन्दु दिखाई पड़ने लगेंगे।

संदर्भ स्रोत :

1. विरेन्द्र कुमार सिंह, सुगम भारतीय इतिहास, पटना, 1996, पृष्ठ - 2
2. - वही
3. - वही, पृष्ठ - 2, 3
4. वेणी नाथ महथा : नागवंशवाली, संवत् 1782, पृष्ठ - 71
5. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 232
6. - वही, पृष्ठ - 235
7. डॉ. रामदयाल मुण्डा, भूरिया कमिटि रिपोर्ट, दिल्ली, 1995, पृष्ठ - 3
8. प्रकाशचन्द्र प्रसाद, मोगलकालीन झारखण्ड कर राजनैतिक इतिहास, गुमला, 1987, पृष्ठ - 14
9. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 236
10. डॉ. बी. पी. केशरी, छोटानागपुर का इतिहास, कुछ सूत्र-कुछ सन्दर्भ, राँची, 1979, पृष्ठ - 139, 140
11. प्रकाशचन्द्र प्रसाद, मोगलकालीन झारखण्ड कर राजनैतिक इतिहास, गुमला, 1987, पृष्ठ - 38
12. डॉ. बी. पी. केशरी, छोटानागपुर का इतिहास, कुछ सूत्र-कुछ सन्दर्भ, राँची, 1979, विषय सूची से
13. विश्वनाथ तिवारी, विश्व इतिहास प्रवेश, पटना, 1990, पृष्ठ - 102
14. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 229
15. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980
16. - वही, पृष्ठ - 40
17. - वही, पृष्ठ - 377
18. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 223
19. - वही
20. दिलवर हंस, होड़ो जगर रेअः एतेहइसि नंगम, राँची, 1989, पृष्ठ - 259
21. - वही
22. - वही
23. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 139, 140

- लाल रणविजय नाथ शाहदेव से साक्षात्कार के अनुसार.

24. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 156
25. - वही, पृष्ठ - 51
26. डॉ. बी. पी. केशरी, छोटानागपुर का इतिहास, कुछ सूत्र-कुछ सन्दर्भ, राँची, 1979, पृष्ठ - 91
27. जगदीश त्रिगुणायत, बाँसरी बज रही, पटना, 1971, पृष्ठ - 118, 120
28. - वही, पृष्ठ - 418
29. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 169
30. जगदीश त्रिगुणायत, बाँसरी बज रही, पटना, 1971, पृष्ठ - 169
31. राँची विश्वविद्यालय, राँची, सारजोम बा, 1976, पृष्ठ - 19
32. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 299

33. जगदीश त्रिगुणायत, बाँसरी बज रही, पटना, 1971, पृष्ठ - 368
34. - वही, पृष्ठ - 304
35. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 370
36. दुलायचन्द्र मुण्डा, होड़ो जगर इतुपुथी, राँची, 1974, पृष्ठ - 1
37. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 425
38. - वही, पृष्ठ - 427
39. हॉफमैन, इनसाइक्लोपिडिया मुण्डारिका, वोल्यूम-4 एच. 1763, पृष्ठ - 164
40. डॉ. रतीश श्रीवास्तव, समाजिक मानव विज्ञान, पटना, 1978, पृष्ठ - 21
41. सोमा सिंह मुण्डा, राँची, 1993, पृष्ठ - 6
42. पी. पॉनेट, एस. जे., मुण्डा कहावतें और लोकोक्तियां, राँची, पृष्ठ - 427
43. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 136
44. - वही, पृष्ठ - 378
45. - वही, पृष्ठ - 335
46. - वही, पृष्ठ - 141
47. भइयाराम मुण्डा, दंड़ां जमाकन कानिको, पटना, 1960, पृष्ठ - 78
48. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 406
49. - वही, पृष्ठ - 338
- चावल से तैया किये गये हंड़िया की चुलाई के पहले निकला हुआ भात.
50. भइयाराम मुण्डा, दंड़ां जमाकन कानिको, पटना, 1960, पृष्ठ - 243
51. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 94
52. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 287
53. पी. पॉनेट, एस. जे., मुण्डा कहावतें और लोकोक्तियां, राँची, पृष्ठ - 93
54. - वही, पृष्ठ - 86
- बनम : कछुवे की खाल से बनाया गया वाद्य-यंत्र - पैसे
55. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 106
56. - वही, पृष्ठ - 365
57. सिकरादास तिर्की, बा चण्डुःआन तोअउ, पटना, 1987, पृष्ठ - 41
58. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 365
59. जगदीश त्रिगुणायत, बाँसरी बज रही, पटना, 1968, पृष्ठ - 44, 45
60. विशु लकड़ा, सरना संगीत, राँची, 1988, पृष्ठ - 3
61. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 109
62. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 150
63. - वही, पृष्ठ - 281
64. - वही, पृष्ठ - 235, 236
65. - वही, पृष्ठ - 235
66. डॉ. रामदयाल मुण्डा, प्रभात खबर, राँची, 11 मई 1977, पृष्ठ - 4
67. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 440
68. - वही, पृष्ठ - 439

69. - वही, पृष्ठ - 435
70. सी. डी. सिंह, झारखण्ड दर्पण, राँची, 1996, संस्कृति परिचय से
71. - वही
72. मेनस ओड़ेया, मतुराः कानि - 1, राँची, 1982, पृष्ठ - 334
73. - वही, पृष्ठ - 10
74. - वही, पृष्ठ - 13

मुण्डारी लोकसाहित्य में आधुनिक ऐतिहासिक तथ्य

आधुनिक काल का तात्पर्य

मानव के सामूहिक क्रिया-कलापों के कारण सामाजिक अर्थव्यवस्था तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में निंतर परिवर्त्तन होता रहता है। परिवर्त्तन की यह प्रक्रिया जब अधिक गतिशील होती है तब उसके प्रभाव सभी क्षेत्रों में स्पष्ट पड़ने लगते हैं। ऐसी स्थिति में मानव-सभ्यता एक युग से दूसरे युग में प्रवेश करती है। [1]

पहले हम देख चुके हैं कि भारतीय इतिहास में आठवीं से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक के समय को मध्य काल कहा गया है। अतः आधुनिक काल मध्य काल के बाद या उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ की अवधि से अब तक का है।

"भारत का आधुनिक काल का इतिहास का इतिहास, आधुनिक

विश्व इतिहास का ही एक अंग है। आधुनिक भारत पश्चिमी सम्पर्क का परिणाम है।''[2]

अंग्रेजों की राजनीतिक प्रभुता की स्थापना के बाद हम निकट सम्पर्क में आए। अंग्रेजी शिक्षा, पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के प्रसार तथा पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क ने हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। परिवर्त्तन की यह प्रकिया अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से आरम्भ हुई। अतः आधुनिक भारत का आरम्भ बिन्दु सन 1757 ई0 से माना जाता है। आधुनिक शब्द का अर्थ है - वर्त्तमान। प्राचीन तथा मध्य काल के इतिहास की घटनाओं से हमारा निकट का सम्पर्क रहा है। इन कालों के भारत के इतिहास के अध्ययन के लिए हमें पुरातात्विक साधनों, पत्थरों पर अंकित अभिलेखों, भवनों, मंदिरों, मस्जिदों, पुस्तकों तथा दस्तावेजों का सहारा लेना पड़ता है। आधुनिक काल की घटनाओं से हमारा अधिक निकट का सम्बंध है। भारत के आधुनिक काल का इतिहास लिखने के लिए अभिलेखागारों में स्त्रोत-सामग्रियाँ, सरकारी अभिलेख आदि को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखा गया है। इसके अतिरिक्त यूरोपीय और भारतीय इतिहासकारों की रचनाएँ भी आधुनिक भारत के इतिहास के अध्ययन की सामग्रियाँ हैं। पटना स्थित बिहार अभिलेखागार में ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा ब्रिटिश सरकार के अधीन बंगाल सूबा तथा भारत की प्रशासनिक, सामाजिक और आर्थिक नीतियों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। आज भी पूरे भारत में अनेक व्यक्ति हैं जिन्होंने स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए वे जीवित स्रोत हैं। [3]

विश्व के इतिहासकारों के अनुसार ''यह कहना कठिन है कि मानव सभ्यता के इतिहास में मध्य कालीन युग का अन्त कब हुआ और आधुनिक युग का प्रारम्भ कब से हुआ। मध्यकालीन युग तथा आधुनिक युग के बीच कोई रेखा नहीं खींची जा सकती है। कुछ विद्वान सन 1453 ई0 से आधुनिक काल का प्रारम्भ मानते हैं। इस वर्ष जर्जर पूर्वी जर्मन साम्राज्य की राजधानी कुस्तुनतुनिया पर तुर्की ने अधिकार कर लिया था। कुस्तुनतुनिया उस समय यूरोप का ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र था। वहाँ यूरोपीय विद्वानों, विचारों तथा कलाकारों का जमघट था। तुर्की के अत्याचार से उन्होंने कुस्तुनतुनियाँ से भागकर विभिन्न पश्चिमी यूरोपीय देशों में आश्रय लिया। उनके सर्म्पक से

साधारण यूरोपीय जनता में ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन की पिपासा जगी। यूनानी साहित्य का अध्ययन बड़े ही व्यापक ढंग से किया जाने लगा; जिससे लोगों की विचारधारा में क्रांतिकारी परिवर्त्तन हुए। फिर कुस्तुनतुनियाँ के पतन से यूरोपीय व्यापार को धक्का लगा। तुर्की ने व्यापर के स्थल मार्ग पर अपना अधिकार जमा लिया और अन्य जातियों के व्यापारियों को उसके उपयोग की अनुमति नहीं दी। फलतःअब व्यापार के लिए समुद्री मार्गों की खोज होने लगी। इस क्रम में कई देशों का पता लगा। इसी कारण से कुछ विद्वान 1453 ई से आधुनिक युग का आगमन मानते हैं। क्योंकि उसी वर्ष कोलम्बस ने अमेरिका का पता लगाया था। इसे भी एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक घटना की संज्ञा दी जाती है; क्योंकि इस कार्य से यूरोपीय जीवन में अमूल परिवर्त्तन हुए।'' [4]

''यूरोपवासियों की कल्पना में सबसे आकर्षित करनेवाला देश भारत ही था। वे भारत पहुँचकर अकूत सम्पदा बटोरना चाहते थे।'' [5] इसी उद्देश्य से विश्व इतिहास के आधुनिक युग के प्रारम्भ काल में ''पुर्तगाल के राजा ने वास्कोडिगामा के नेतृत्व में एक अभियान भेजा। सन 1498 ई0 में वह बन्दरगाह कालीकट पहुँचा।'' [6]

निस्संदेह उपर्युक्त सभी तिथियाँ युगान्तकारी थीं। फिर भी यह कहना कि उसी समय से आधुनिक युग का आरम्भ हुआ, ठीक नहीं जँचता। वस्तुतः इतिहास के प्रत्येक युग की अपनी विशेषताएँ होती हैं और अपने कुछ लक्षण होते हैं। जब नये-नये लक्षण प्रकट होते हैं, उसका प्रभाव महत्वपूर्ण होता है। तब यह समझा जाता है कि एक युग का अन्त और दूसरे युग का प्रारम्भ होने लगा है। इतिहास के आधुनिक युग के साथ भी यही स्थिति है।'' [7]

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों में सर्वप्रथम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार ''आधुनिक काल (गद्य काल, 1900- 1984)।' [8] डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, ''आधुनिक काल -19 वीं शताब्दी के मध्य भाग से आज तक।''[9] इसी प्रकार डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार, ''आधुनिक काल- 1843 से अब तक माना है।''[10] ''आधुनिक कालः 1765 ई0 से 1975 ई0 ''[11]

उपर्युक्त हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों के काल विभाजन में कुछ मतभेद है, परन्तु सभी ने आधुनिक काल को 'गद्य काल' माना है। क्योंकि, ''उन्नीसवीं शताब्दी में ही भारत की प्रायः प्रत्येक आधुनिक भाषा के साहित्य

का विकास हुआ। इसके पहले साहित्यक रचनाओं में धार्मिक विषयों की प्रधानता रहती थी तथा वे पदों में लिखे जाते थे। अब गद्य को महत्त्व दिया जाने लगा और उपन्यास, नाटक, लघुकथा और निबन्ध जैसी नवीन शैलियों का विकास हुआ। "[12]

अब यहाँ एक प्रश्न उठता है कि छोटानागपुर में आधुनिक काल का समय कब से कब तक का है? आगे हम देख चुके हैं कि संसार में आधुनिक युग की शुरुआत सर्वत्र एक साथ नहीं हुई। यही कारण है कि इस युग के काल निर्धारण के सम्बन्ध में अलग-अलग मत मिलते हैं। उसी तरह छोटानागपुर में आधुनिक काल का प्रारम्भ अंग्रेजों के आगमन के साथ 19 वीं शताब्दी से अब तक के समय को माना गया है। आधुनिक काल को दो भागों बाँटा जा सकता है - 1. छोटानागपुर में अंग्रेजों तथा ईसाई मिशनरियों का आगमन एवं इनके शासन काल को पूर्व आधुनिक काल और 2. आजादी के बाद का आधुनिक काल। इसी अवधि से मुण्डारी लोकसाहित्य के संकलन-प्रकाशन का भी श्रीगणेश हुआ। अतः आधुनिक काल के 19 वीं शताब्दी को मुण्डारी लोकसाहित्य का संकलन किया गया एवं शिष्ट साहित्य लिखा जाने लगा।

मुण्डारी लोकसाहित्य में आधुनिक युग को कलयुग माना जाता है। 'कल' का शाब्दिक अर्थ एक साथ कई अर्थों में लिया जाता है- कल कारखाना या मशीनों का युग, दुर्घटना का युग, अनहोनी या जो सम्भव नहीं था वह संभव होने का युग, नरसंहार का युग, प्रदूषण-बेचैनी का युग और नव या नया कलि युग आदि। इससे सम्बन्धित एक करम गीत देखा जा सकता है :-

कलि जुगु तेबः लेना	अर्थात्- कलियुग आया
कलेतेबु घेरओ जना	हम कल से घिर गए हैं।
ओते सिरमा नुबः चबा जना	धरती और आकाश में अंधेरा छा गया
धोनि चिका जना	प्रिय! यह क्या हो गया?
हसा रेअः मेड़ेद बइओः तना	मिट्टी से लोहा बनने लगा
ने दिसूम मुका जना	यह देश माप लिया गया

मोणे मोणे सिरमा रे	पाँच-पाँच वर्षों में
मुका मुका रे मोणेअ कारखना	एक हाथ की दूरी पर पाँच कारखाने
धोनि चिका जना	प्रिय! यह क्या हो गया?
ओते सिरमा सुकुल जब जना	धरती-आकाश में धुँआ भर गया
बिर कन्दर जोला कोते	जंगल कन्दराओं और पहाड़ों पर
रेलगाड़ी सेसेन तना	रेलगाड़ी चलने लगी
गड़ा गड़ाते बिजिली कारखाना	नदी-नदी में बिजली के कारखाने खुले
धोनि चिका जना	प्रिय! यह क्या हो गया?
सिंगि लेका निदा लेलोः तना	दिन की तरह रात लगने लगी
ओ दिसुम नका जना	हमारा देश परिवर्तित हो गया
टाटा नगर रउरकेला	टाटा राउरकेला बने
हटिया-चुटिया जिलिब जिलिब	हटिया-चुटिया झकमक कर रहे हैं
धोनि चिका जना	प्रिय! यह क्या हो गया?
निदा सिंगि सुकु बनोः जना [13]	दिन-रात अब चैन नहीं रह गया।

आधुनिक काल में "राजनीतिक दृष्टिकोण से छोटानागपुर को दो वर्गों में रखकर देखा जा सकता है- अंग्रेजी शासन काल में छोटानागपुर राज तथा स्वतंत्र भारत में छोटानागपुर कमिश्नरी।"[14] छोटानागपुर राज में तथा भारत की आजादी तक यहाँ के मुख्य उत्तराधिकारी नागवंशी एवं मुसलमान थे।

राजनैतिक तथ्य

पहले लिखा जा चुका है कि मुण्डाओं की राजनीतिक व्यवस्था उर्वर रही है। प्रत्येक मुण्डा गाँव में एक गाँव-पंचायत होता है, जिसका प्रधान 'मुण्डा' होता रहा है। एक गोत्र के कई गाँव को मिलाकर एक पड़हा-पंचायत की पट्टी होती है। जिसका प्रधान 'मुण्डा राजा' या पड़हा राजा अथवा मानकी होता है। जैसे- टुटी गोत्र या किली का पड़हा का विस्तार राँची -चाईबासा

मार्ग से खूँटी के पूरब हेसाहातु ग्राम-पंचायत से लेकर मरंगहदा क्षेत्र का पूर्वी भाग सारजोमा गाँव के इलाके तक फैला हुआ है। इस टुटी-पड़हा पंचायत के क्षेत्र में अन्य गोत्र के लोग भी रह रहे हैं। जैसे- बजराय गोत्र, साँगा गोत्र इत्यादि। इनका अपने गोत्र का पड़हा राजा या मुण्डा या करठा है। इन कई पड़हा पंचायतों को मिलाकर पड़हा मण्डल होता है। जैसे- बाईस पड़हा, बारह पड़हा आदि। पड़हा मण्डल का प्रधान व्यक्ति 'महाराजा' या 'मरङ मुण्डा' होता है। भुंइयहर क्षेत्र में यह महाराजा कहलाता है। एक गाँव के किसी पारिवारिक मामलों के निपटारे के लिए गाँव-पंचायतों में 'मुण्डा' ही सर्वेसर्वा होता है। परन्तु मुण्डा समाज के एक गोत्र का किली क अन्दरुनी मामलों का निपटारा मुण्डा के सहयोग के साथ उक्त गोत्र का करठा (कर उठाने वाला) ही कर सकता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर जिस गाँवों में कई जातियाँ एवं कई गोत्र के लोग हैं। यहाँ दो प्रकार की पंचायत है- पहला ग्राम पंचायत और दूसरा गोत्र पंचायत या पड़हा। ग्राम पंचायत के अन्तर्गत गाँव के समस्त जातियों या गोत्रों के पारिवारिक मामलों को सुलझाया जाता है जिसमें एक मुण्डा ही होता है तथा गोत्र पंचायत के अन्तर्गत अमुक गोत्र वाले ही न्याय करेंगे। यह पंचायत निष्पक्ष होता है। जैसे- यदि कोई समान गोत्र के लड़का-लडकी प्रेम विवाह कर लेते हैं तब सीधे पड़हा पंचायत की ओर से उन्हें नगर बाहर कर दिया जाता है। आधुनिक युग में उन दोनों के नाम पर रास्ते के किनारे पत्थर गाड़ कर उस शिलालेख में उक्त घटना का लिखित विवरण भी दिया जाता है। जैसे- हुटार (खूँटी) चौक पर का शिलालेख देखा जा सकता है।

मुण्डाओं की यह राजनैतिक प्रणाली सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर वर्त्तमान काल में ज्यों की त्यों वर्त्तमान है। परन्तु मुगलों तथा अंग्रेजी शासन काल के छोटानागपुर राज में मुण्डा लोग मुगलों तथा अंग्रेजों के रैयत बने। स्वतंत्र भारत के छोटानागपुर कमिश्नरी में मुण्डा भी भारत के अन्तर्गत बिहार सरकार के रैयत है। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :-

''मुण्डा शब्द का शाब्दिक अर्थ है सरदार। एक समय था जब मुण्डा समूचे गाँव का प्रधान हुआ करता था। न्याय-दण्ड और नेतृत्व का अधिकारी हुआ करता था। अब तो मानकी, मुण्डा, पातर आदि जाति सूचक उपनाम

मात्र रह गये है और ये उपनाम भी वंशानुक्रम से चले आते हैं।" [15]

इतना होते हुए भी मुण्डाओं की खुंटकटी एवं भुंइहर जमीन को ज्यों का त्यों छोड़ दिया गया है। अतः इसे बिहार सरकार ने अपने अधिकार से मुक्त रखा है। कहीं-कहीं खुंटकटी और भुंइहर जमीन का शेष सरकार को मिलता है और कहीं-कहीं लकराजी खुंटकटी भी है, अथवा इस खुंटकटीदार वालों को कोई शेष सरकार को देना नहीं पड़ता है। लेकिन अब खुंटकटी भूमि के मालिक को किसी प्रकार का कर वसूल करने तथा भूमि वितरण करने का किसी प्रकार हक नहीं रह गया है। पर, मुण्डा समाज में यह प्राचीन विधान अभी तक वर्त्तमान है। पहान पूजा के नाम से मुर्गी-चेंगना या इसके बदले धन, रूपये -पैसे आदि आज भी चन्दा के रूप में लेता है।

मुण्डाओं की राजनीतिक व्यवस्था गाँव से आरम्भ होकर पूरे क्षेत्र में कई छोटे-छोटे हिस्सों में विभक्त थी। जहाँ इनका "अबुअः दिसुम अबुअः राइज" था अर्थात्- अपना देश अपना राज कायम था। शरतचन्द्र राय ने इनके बारे में 'मुण्डा एण्ड देअर कन्ट्री' नामक ग्रंथ में लिखा है। मानवशास्त्रियों ने इनकी राजनैतिक प्रणाली को 'राजविहीन ' समाज का उदाहरण बताया है जो नातेदारी और गाँव-परिषद के आधार पर व्यवस्थित है। प्राचीन भारत की राजनैतिक व्यवस्था पर गौर करें तो पता चलता है कि पहले पूरे भारतवर्ष में इसी प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था थी। सबसे पहले अंग्रेजों ने एक राज्य और एक राष्ट्र स्तर की राजनीतिक स्यवस्था कायम की। जिन्होंने पूरे भारत को एक सूत्र में बाँधकर देश को गुलाम बनाया। इस प्रकार अंग्रजों की शोषण नीति-गाँव-गाँव तक व्याप्त थी। मुण्डा समाज भी अंग्रेजों के शोषण से प्रभावित था। इसके विरोध में बिरसा मुण्डा ने अपने क्षेत्र के मुण्डा जाति तथा अन्य जातियों को एकत्रित किया और शोषण के खिलाफ आवाज उठाई। एटकेः गाँव में शुरू कर सरवादाग में बिरसा ने अंग्रेजों पर तीर चलाकर युद्ध के लिए उन्हें ललकारा। परिणामस्वरूप 1898 ई0 को डोम्बारी पहाड़ पर अंग्रेजों और बिरसा के बीच भंयकर युद्ध हुआ। इससे सम्बन्धित एक जदुर गीत देखा जा सकता हैः-

हतु तुका रे मनोव जाति रे	अर्थात्- गाँव में मानव जाति में
बिरसा भगवान एसेकर गे	बिरसा भगवान अकेले
तुरे लेनएः नओव चण्डु लेका	नये चाँद कीतरह उगे

नओवा दिआ होएः जुण्डि केदा उसने नयी ज्योति जलाई।
नओवा दिआ होएः जुण्डि केदा उसने नयी ज्योति जलाई।
बिरे-बुरूअ कोरेः दिया केदा बन-पहाड़ों को प्रकाशित किया
अदाकनको होराएः उदुबदको खोये लोगों को रास्ता दिखाया
तेनाकनकोएः दोन्दो बिरिद केदको गिरे लोगों को ऊपर उठाया

सरवादाः रे सार जना सरवादाग में तीर चला
डोम्बरी बुरु रे गोलि जना डोम्बारी पहाड़ पर गोली चली
मुण्डा जाति कएः रिड़िंमेआं मुण्डा जाति तुम्हें नहीं भूलेगी
बिरसा कजि रनुअन गेआ। [16] बिरसा तुम्हारी बात औषधि-सी थी।

यह युद्ध भारत के स्वतंत्रता संग्राम का ही एक अंग है। अतः मुण्डा समाज का भी भारत को आजादी दिलाने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 15 अगस्त, 1947 ई0 को जब हमारे देश को अंग्रेजों से मुक्ति मिली तब इसकी खुशी भी गाँव-गाँव तक फैली। तिरंगे के नीचे शहीदों, महात्मा गाँधी और बिरसा की जय जयकार होने लगी तथा सर्वत्र स्वच्छ उमंग से मुक्ति पर्व मनाया गया। इससे सम्बंधित एक करम गीत प्रस्तुत है :-

रावण रइज सेनोः जना अर्थात्- रावण राज्य चला गया
सीता सोतीः रुअड़ा लेना सती सीता लौट आई
धरती रे -2 धरती में
निरंगा ओटंग जना सिरमारे तिरंगा लहरा उठा आकाश में

अकड़ा नवाबु बइअ हम नए अखाड़े बनायेंगे
नओअ दुमंगबु दबेअ हम नए मांदर छारेंगे (बनायेंगे)
रसिका रे- 2 इसी खुशी में
तिरंगा ओटं जना सिरमारे तिरंगे लहरा उठा आसमान में

गाँधी बिरसा तकिन गाँधी और बिरसा को
इलिबु तिलाकिना हम हंड़िया अर्पण करेंगे
बोंगा कोचा रे - 2 पूजा स्थल में
तिरंगा ओटं जना सिमारे तिरंगा लहरा उठा आसमान में

मुक्ति पोरोबो तिसिंङ आज मुक्ति का पर्व है।
चिनःम हेयतिं चकतिंङ हम किसकी चिंता करेंगे?
सुकु सोमए रे - 2 खुशी की बेला में
तिरंगा ओटं जना सिरमारे।[17] तिरंगा लहरा उठा आसमान में।

आजादी के बाद कई गाँवों तथा मौजों को मिलाकर एक ग्राम पंचायत का गठन हुआ। मुण्डा क्षेत्र में इस ग्राम पंचायत में मुखिया और ग्राम कचहरी में सरपंच तथा अन्य सदस्य मुण्डा जाति कि लोग भी हैं। इस प्रकार आधुनिक राजनीति में भी मुण्डा सक्रिय रूप से भाग लेने लगे हैं। लोकतांत्रिक राज में मुण्डा लोग भी अपने क्षेत्र के विकास के लिए अननी जाति के सदस्यों को नोता या मुण्डा, अप्रत्यक्ष मतदान के द्वारा हर पाँच वर्षों में चुनकर विधानसभा या राज्यसभा तथा लोकसभा में भेजने लगे हैं। इससे सम्बन्धित एक जदुर गीत देखा जा सकता है :-

भोटकजि बोले छोटो जना अर्थात्- वोट की बात जोरों से उठी
हतु हतु बोले हिलहिलओ जना गाँव-गाँव इसी की चर्चा चली है।
छांटे कजि बोले आंटे जना चुनाव की बात जोरों से उठी
कोना कोना बोले धूमधाक जना कोने-कोने में इसी की धाक जमी है।

निदा सिंगि सभार परचार केते दिन-रात सभा-प्रचारों से
सोबेन कोअः जीउ दोको चकरओ जदा सबके सिर चकरा रहे हैं
जाति पति पाटा पाटि बुपुजओ कजिते जात-पात की उल्टी बातों से
अपन अधिकारबु डुबओ जदा हम अपना अधिकार खो रहे हैं।

डोण्डो लोभ हगा होनको हम मूर्ख और लोभी लोग
भोट बकसाबु जोअर तना वोट के बक्से को प्रणाम करते हैं।
बहकओ जांएअः डरुवओ कोते किसी की धमकी और बहकावे में आकर
अपन भोट जाँए गेबु ओमको तना अपना वोट किसी को दे देते हैं।

कुमुतेओ जेता नेता कएः तेबए टयद स्वप्न में भी नेता नहीं आए
तेबः केते हगा जाति को कजिन तना वहाँ आकर (वे) भाई गिना रहे हैं।

एटाः पाटी कोअः होको उकुकता तना दूसरी पार्टी की शिकायत करते हैं
अबु बुगिनाः होको करार तना [18] (वे) हमारी भलाई का ही करार करते हैं।

मुण्डारी लोकगीतों तथा शिष्ट गीतों के अलावे कथाओं में भी आधुनिक राजनीतिक तथ्य उपलब्ध है। सरकारी ग्राम पंचयात और प्रशासन के होते हुए भी अपनी जाति के अन्दरूनी मामलों का मुण्डा लोग अपनी जातीय पंचायत के द्वारा निपटारा करते हैं। इससे सम्बन्धित कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं - *"अब हतु रेन होड़ोअः कजि कमि अबु बेगर चिलकाते परोमोःअ। अबुदओ जेतए कबु इतुअना। नेअदो क कमिअः कमि होबा। जु सयोब कजिमे का रेदो संगि गेबु कजिअइआ चि रोटेअः हसागड़ा दो बुसुड़ी रेगे होबओः लगतिंअ।"* [19] अर्थात्- हमारे गाँव के मृतक का क्रिया-कर्म हमारे बिना कैसे होगा? हममें से तो कोई नहीं था। यह तो जो नहीं होना चाहिए था, वह हुआ है। जाओ साहब को कह दो, नहीं तो हम सब मिलकर कहेंगे कि रोटे का अंतिम संस्कार हमारे गाँव में ही होना चाहिए।

इस प्रकार आधुनिक काल में भी मुण्डाओं की राजनीति परम्परागत तथा आधुनिक- दोनों इनके समाज में चली आ रही है। गाँव का मुण्डा अपने परिवार के साथ ही साथ गाँव को चलाने का भी काम करता है। मुण्डाओं की परम्परा रही है कि गाँव में सभी का समान अधिकार है। सभी की समान आर्थिक स्थिति है। इनमें एक जैसी संस्कृति, एक समान धर्म, एक समान जीवन-निर्वाह देखे जा सकते हैं। वर्त्तमान समय में पढ़े-लिखे मुण्डा लोग सरकारी तथा गैर सरकारी सेवा में हैं। इसके अलावे ये व्यापार इत्यादि धंधों में भी लगे हुए हैं। मुण्डाओं की इस परम्परागत जीवन-पद्धति से किंचित भिन्न एवं परिवर्तन भी अब दृष्टि गोचर होने लगा है।

झारखण्ड का यह प्रदेश सदियों से शोषित रहा है। इस क्षेत्रों को शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए मुण्डा लोग राजनीति में आगे आ रहे हैं तथा अपने विकास के लिए, प्रदेश के उत्थान के लिए अलग झारखण्ड राज्य की माँग आजादी के पूर्व से ही करने लगे हैं । इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती है -*"हे अपे अलेअः राज रे हुड़िंग लेका दोपे बलए तन गेअ मेन्दो नेअओ मेनाः चि आपे राज चलओ कमि रे जेता इमतंग कपे टोगा कन लेका ते बिर ओमापेरेओ राज दो कपे चलओ दड़ि लेकञ अटाकारेअ एना मेनते बिनगए सिदा अपे दिसुम चिलका चलओ लगतिं मेनअः इतुन तेअः दरकार*

मेनाः ।" [20] अर्थात्- हाँ, आप लोग हमारे राज में कुछ कठिनाई में तो हैं। किन्तु यह भी है कि आप लोग राज्य चलाने के काम में पड़े नहीं हैं। इसलिए आपको अलग से जंगल (राज्य) मिलने के पहले देश चलाने का काम सीखने की जरूरत है।

उपर्युक्त तथ्य आजादी के कुछ वर्ष बाद तक उचित ठहराया जा सकता था। परन्तु अब कोई ऐसी बात नहीं रह गई है। जैसे - अपने घर में धन-दौलत, ज्ञान विज्ञान आदि से भरा पूरा हो तो उस परिवार को चलाना कठिन या असम्भव क्या है? उसी भाँति झारखण्ड का यह भू-भाग तो न जाने कब से प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण है। अतः अलग राज्य मिल जाने से ईमानदार व्यक्तियों को झारखण्ड राज्य चलाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। क्योंकि यहाँ की जनता सदा से भोली-भोली रही है। ये सभी मिल-जुलकर चलने का मंत्र जानते है। इनकी परम्परा में ढाई अक्षर का 'प्रेम' व्याप्त है। इससे सम्बन्धित एक खेल गीत प्रस्तुत है :-

हुड़िंबिर - मरंबिर — अर्थात्- छोटे वन - बड़े वन की
सानसकम तोलोःका-तोलोका — लड़की - पत्ती बाँधी जाए- 2

हुड़िंबिर - मरंबिर — अर्थात्- छोटे वन-बड़े वन की
सानसकम रड़ाओका-रड़ाओका — लकड़ी पत्ती खुल जाए -2

इसके अतिरिक्त और एक खेल गीत देखा जा सकता है :-

मोयोद गेया केवराबा — अर्थात्- केवरा का एक ही फूल है,
सजाएअलङ-एजाएअलङ — इसे हम दोनो साझा करेंगे।

जहाँ तक झारखण्ड की राजनीति की बात है। झारखण्ड का यह आन्दोलन लगभग 100 वर्षों का पुराना जनान्दोलन है। 1997 ई0 में इस प्रदेश के लिए 'झारखण्ड स्वशासी परिषद' का गठन किया गया है। झारखण्ड प्रदेश की परम्परागत शासन व्यवस्था मुण्डा-मानकी, पड़हा राजा तथा माँझी परगना को भूरिया कमिटि के तहत फिर से कायम या बरकरार करने की सिफारिश कर दी गई है। जिसके आलोक में नगुरी मुण्डारी क्षेत्र के पड़हा या गाँव आदिवासी गणराज्य को पुर्नजीवित किया गया है। रास्ते के किनारे प्रत्येक मूल गाँव या पड़हा में पत्थरगाड़ी किया गया है। जिसमें यहाँ के आदिवासियों के गणपराज्य शासन प्रणाली के अधिकार एवं कर्त्तव्य का विवरण लिखा हुआ है।

यह कार्यक्रम धीरे-धीरे झारखण्ड के सभी क्षेत्रों में लागू हो जाएगा। पुनः एक बार इनकी राजनैतिक एकता यहाँ कायम होगी।

"सन 1999 ई0 में वर्त्तमान सरकार ने झारखण्ड, उत्तराखण्ड एवं छत्तीसगढ़ को अलग राज्य का बिल पेशकर दिया है। बिल पास होने के पहले ही सरकार गिर गई। परिणामतः चार करोड़ झारखण्डियों की आशाओं में पानी फिर गया। बार-बार झारखण्डी अलग राज्य के मामले में छले जा रहे हैं। यह प्रक्रिया मरङ गोमके जयपाल सिंह के समय से यथावत चली आ रही है। झारखण्डी नेताओं की खरीद-बिक्री आज भी जारी है और झारखण्डियों के अलग राज्य का सपना, सपना ही रह जाता है। वस्तुतः झारखण्ड आन्दोलन एक राजनैतिक आन्दोलन रहा है। जिसमें मुण्डाओं का योगदान सर्वोपरी रहा है। झारखण्ड पार्टी के मरङ गोमके जयपाल सिंह हो या दूसरे मरङ गोमके एन0 ई0 होरो-दोनों मुण्डा हैं और इनके नेतृत्व में ही झारखण्ड अलग राज्य का आन्दोलन अपने चरम पर है। अब देखना इस सदी के अन्तर्गत मुण्डाओं की यह चिर-लम्बित आकांक्षा पूरी हो पाती है या नहीं।" [21]

आर्थिक तथ्य

आधुनिक युग के प्रथम चरण तक मुण्डा जाति का आर्थिक जीवन पूर्णतः कृषि, मजदूरी, शिकार एवं वन्य पदार्थो के संचयन पर आधारित था। गाँव का मुण्डा अर्थात्- मुख्य व्यक्ति तथा मानकी (मांड़ाकी) के पास पहले से ही काफी जमीन हुआ करती थी तथा वे सम्पन्न थे। इनके घर में कई धांगर-धांगरिन हुआ करते थे और हैं भी। इसके साथ ही गरीब मुण्डा परिवार के मुण्डा लोग उन अमीर मुण्डाओं तथा मानकियों के खेतों में मजदूरी करते हैं। उन्हें काम के बदले अनाज दिया जाता है। जैसा कि एक करम लोकगीत पहले भी दिया गया है, देखा जा सकता है :-

सेतागतेञ रोवा केना,	अर्थात्- मैंने सुबह से रोपनी की
तिकिन सिंगिञ होका केना	दोपहर को छुट्टी मिली।
निरे सेने जोलाञ रकब केना,	दौड़ते चलते मैंने चढ़ाई चढ़ी
जोजोहातु बबाञ तेला केना	मैंने जोजोहातु गाँव में मजदूरी ली

रुडुङ सेटेः अयुब जना	कूटते-छाँटते शाम हुई
मंडी उतुञ हेड़ा जना	भात-तियन करते देर हुई
अकड़ा रे डुलकी सड़ी तना	अखड़ा में ढोलक बज रहा है।
गतिङ्केको तिंगु तंगि तना	मेरी सहेलियाँ मेरे इंतजार में हैं।

वर्तमान में काम के बदले अनाज की जगह नगद रुपया लेना ही मजदूर लोग अधिक पसंद करते हैं। इस काल में मुण्डाओं की कृषि उन्नत है, फिर भी बढ़ती आबादी और जोत की भूमि की कमी के साथ ही साथ उत्पादन में वृद्धि होने के बावजूद भी पर्याप्त अन्न नहीं हो पा रहा है। इनकी खेती के उपकरण हल-बैल, भैंसा, खेत बनाने तथा तैयार करने के लिए कुदाल, साबल, गैंता, निकौनी के लिए खुरपी, कुदाल और फावड़ा तथा फसल काटने के लिए हँसुवा है। इसके अलावे लकड़ी का हल बनाने के लिए बसुला, बगली, दौली आदि औजार हैं। इन उपकरणों से सम्बन्धित एक जतरा गीत का अवलोकन समीचीन होगा :-

चलुतनाए पिड़ि बदी, कुदलमते चलुतनाए पिड़िबदी
खरातनाए गड़ा लोयोदग हड़ा केड़ाते लगा जनाए गड़ा लोयोंग

लगा जनाए चलुतनिः, चलु चलुते लगा जनाए, चतुतनिः
कुबा जनाए करातनिः, कराकराते कुबा जनाए, करातनिः

इदि अइपे तनिः, बसिदःको इदिअइपे, चलुतनिः
सेटेराइपे करातनिाः, चना तमाकु सेटेराइपे, करातनिः [22]

अर्थात्- वह टाँड़ चँवरा कोड़ रहा है, कुदाल से कोड़ रहा है। टाँड़ खेत में वह पाटा मार रहा है तथा गढ़ा खेत में बैल-काड़ा से पाटा मार रहा है। गढ़ा खेत कोड़नेवाला थक गया। वह कोड़-कोड़ कर थक गया। झुक गया पाटा मारने वाला। टेढ़ा हो गया, पाटा मारने वाला। गढ़ा खेत में उसे बासी भात पहुँचा दो, कोड़ने वाले को। उसे पहुँचा दो! पाटा मारने वाले को, चुना-तम्बाखू पाटा मारने वाले को।

इस लोकगीत से भी प्रमाणित होता है कि मुण्डाओं की कृषि भूमि दो प्रकार की होती है जिन्हें टाँड़ और दोन कहा जाता है। टाँड़ ऊपरी या मैदानी भूमि होती है और निचली भूमि है, जहाँ वर्षा का पानी स्वतः जमा हो

जाता है। टाँड़ की तुलना में दोन अधिक उपजाऊ होता है। उर्वरा शक्ति के अनुसार खेत भी कई प्रकार के होते हैं। जैसे दोन एक, दोन दो, दोन तीन। जिन्हें मुण्डा लोग क्रमशः गहरा दोन या सोकरा दोन, चौंरा दोन और दरिया दोन कहते हैं। प्रत्येक मुण्डा परिवार के पास इस प्रकार की भूमि होती है। टाँड़ में गोड़ा धान, गोंदली, मड़वा, उरद, कुरथी अरहर, सुरगुजा, बोदी, गंगई आदि की खेती की जाती है तथा दोन में धान की खेती होती है। इससे सम्बन्धित अनेक लोकगीत तथा शिष्ट गीत हैं। इन गीतों की कुछ कड़ियाँ इस प्रकार हैं :-

मरे हो रिंड़ि दोले नमेयां	अर्थात्- हे प्रभु, हम ऋण लेंगे
मरे हो गोड़ा करेंगा	हे प्रभु, काला गोड़ा धान
मरे हो काड़ि दोल चेदेया	हे प्रभु, हम उधार लेंगे
मरे हो बिचा गुड्डलु [23]	हे प्रभु, बीज गोंदली

यह लोकगीत जरगा राग में में है जिसमें उरद, कुरथी, गंगइ आदि फसल की चर्चा है :-

बिरदिसुम रे पिड़िदिसुमरे	अर्थात्- वन देश में-टाँड़ देश में
बरइ रम्बड़ा सोंसोरोदेः दिरिंअकना-2	बरई उरद फतिंगा का सिंह है
बिरदिसुम रे पिड़िदिसुमरे	वन देश में - टाँड़ देश में
जुगि होड़ेः जुगिएः होलादाकना-2	कुरथी जोगी (फतिंगा) का छूरा है
बिरदिसुम रे पिड़िदिसुमरे	वन देश में - टाँड़ देश में
बुरु गंगए सराएः चःलोमाकना-2	पहाड़ी गंगई-बंदर की पूँछ है
पिड़िदिसुमरे बेड़ा ओते रे	मैदानी इलाके में, ढलान खेत में
बेड़ा इरबा चंउरिया ए चःलोमाकना-2	ढलान इरवा चूहे (छोटा) की पूंछ है।

एक अन्य लोकगीत जरगा या मागे राग में है। यह दोन धान और मड्डवा टाँड़ के लिए आया है :-

बबा एंगा-कोदे एंगा	अर्थात्- हे धान माता, हे मंड्डवा माँ
एला बोलो बेन बेगा -2	आओ तुम दोनो जल्दी प्रवेश करो
बबा एंगा-कोदे एंगा	हे धान माता, हे मंड्डवा माँ

एला दूब बेन बेगा - 2	आओ तुम दोनों शीघ्र बैठ जाओ

अदिङ दुबर निगा कना	अन्दर - कोठरी का द्वार खुला है।
एला बोलो बेन बेगा -2	आओ तुम दोनों शीघ्र प्रवेश करो
दिरि गण्डु अटेदा कना	पत्थर का पीढ़ा बिछा हुआ है।
एला दूबा बेन बेगा -2 [24]	आओ तुम दोनों शीघ्र बैठ जाओ

गरीब वर्ग के मुण्डा लोग आर्थिक उन्नति के लिए गाँव की कृषि भूमि में अस्थायी रूप से कृषक मजदूरी करते हैं। फिर भी इस युग में जंगल की ओर न जाकर आर्थिक संसाधन जुटाने के लिए ये शहर की ओर धड़ल्ले से जाने लगे हैं। ये राँची, कलकत्ता, दिल्ली, पंजाब, मुम्बई आदि बड़े-बड़े शहरों में मजदूरी करते तथा रिक्शा आदि चलाकर जीवन निर्वाह करने लगे हैं। किन्तु ये इन बड़े शहरों में, अपने सुन्दर स्वंग जैसे गाँव या प्रदेश को छोड़कर सदा के लिए बसने की इच्छा और छमता नहीं रखते हैं। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :-

''जेता लेका रेओ अपन हातु-दिसुम चि बगेओःअ ? नेताःगे जाँलेकाते सब दड़िन बारि। केटेः नोः कोः कलिं मेनेलेका तेलिङ हिजुःआ कना।'' [25] अर्थात्- कुछ भी हो अपना गाँव-देश कभी छूटता है? यहाँ तो हम अपना पेट टिकाने (पालने) के लिए आए हैं। हमारी हालत जरा सुधर ले, इसी उद्देश्य से हम यहाँ आये हुए हैं।

इस काल में मुण्डा लोग कृषि और मजदूरी, नौकरी के अतिक्ति व्यापार भी करने लगे हैं। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं:- *''मुसिं दो नेका जना रिंगा रःते बंकिपीटि रे केड़ा-उरिः को ससता जना, आद तपकरा सःरेन नगुरी होड़ोको उरिः बूपारि रे सूबको हेलावेन जना।''* [26] अर्थात्- एक दिन ऐसा हुआ कि अकाल या गरीबी के कारण बंकी बाजार में काड़ा और गाय- बैलों का दाम गिरा तब तपकरा क्षेत्र के नगुरी मुण्डा लोगों ने गाय-बैलों का व्यापार करना आरम्भ कर दिया।

अब पढ़े-लिखे, शिक्षित वर्ग सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं में निम्न से उच्च पदों में नौकरी में हैं। इस सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं:- *''बुदु -क, संत जेतिवयर रे। अमदो चनम कमि तना? पड़ेया-नुकुरितनञ, ए0जी0 आफिस रे।''* [27] अर्थात्- बुदु- नहीं, संत जेवियर

में। आप क्या काम करते हैं? पाण्डेया बोला- नौकरी करता हूँ, ए0 जी0 ऑफिस में। विशेषकर जो शिक्षित हैं और दफ्तरों में काम करते हैं, उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी है। क्योंकि वे कुछ पैसे को गाँव की खेती के काम में लगाते हैं। अतः सिर्फ कृषि करने वाले किसानों से नौकरी करने वालों के घर-परिवार की कहीं स्थिति अच्छी है। आधुनिक तड़क-भड़क ने इन गरीब मुण्डाओं की स्थिति को और नाजुक बना दिया है। दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद भी वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते हैं। इससे सम्बन्धित पंक्तियों का अवलोकन किया जा सकता है।

सिउः चलु बुगिना चि,	अर्थात्- जोतने कोड़ने का काम अच्छा है
नौकरी चकरी नपए	या नौकरी-चाकरी करना ?
सियुः चलु कोदो होको	जोत-कोड़ करने वाले तो
सिगिदउ सिगिद	हमेशा परेशान हैं।
सिउः चलु कोदो	जोत-कोड़ वाले तो
होको सिगिद -सिगिद	हमेशा परेशान हैं।
निदा सिंगि	रात और दिन
तेको कमि तना	वे काम करते हैं।
नोकरी चकरी कोदो	नौकरी-चाकरी में हैं
होको चाली-बाली	वे सभी चहल-पहल में हैं
दुबे दुबे तेको	वे आराम से (बैठ -बैठ कर)
जोमे तना [28]	खाते हैं।

इस युग में कई वर्ष पहले से मण्डा लोग अन्य जातियों की तरही लाह की खेती के द्वारा अच्छा आर्थिक लाभ प्राप्त करने लगे हैं। मुण्डा क्षेत्र या खूँटी सब-डिवीजन लाह के लिए मशहूर है। वे लाह की खेती एवं व्यापार भी करने लगे हैं। इसकी खेती मुख्यतः बैर, कुसुम, पीपल, पलास आदि वृक्षों में की जाती है। कुसुम के लाह से अच्छी आमदनी होती है। फिर भी लाह ही खेती के लिए अधिक उपर्युक्त बैर का पेड़ होता है। इसके अतिरिक्त महुआ, साल, केंद, बेल, भेलवा, बैर, डुमर, जामुन, इमली, कुसुम, चार और करंज आदि के फलों एवं कोएनार, कचनार फूल, पुटकल, वन-साग, माठा,

कटई आदि साग-सब्जियों आदि का पहले सिर्फ घरेलू उपयोग या जीवन -निर्वाह के लिए प्रयोग किया जाता था। इस तथ्य के समर्थन में निम्न पंक्तियों का अवलोकन प्रासंगिक है :-

"अपेना, गपाकोतेदो बउगिको अउइपे; निमिरदो मदुकम बारअकना; हलंजोमअबु; जरगि दिन कोबु जोमेअ। ओड़ोः दउड़िंदिन रेदो सरजोम तेअरोःअ; एनाओबु हलंजोमा; जरगि दिनकोबु लटाएअ।" [29] अर्थात्- हे अजियों (लड़कियों) कल तुमलोग बड़ा टुकी (टोकरी) लेकर आओ। इन दिनों महुवा बरकरार हो गया है। उसे हम इकट्ठा करके रखेंगे और उसे हमलोग बरसात में खायेंगे। फिर कुछ दिनों में सखुआ तैयार हो जाएगा; उसको भी हम चुनकर रखेंगे, बरसात में उसका हमलोग लाठा या लड्डू बनाकर खायेंगे। .. .. अब इन सभी फल-फूलों और पत्तों (साग) का संग्रहण कर, उसका अधिकांश भाग ये लोग बेच देते हैं और रुपये प्राप्त करते हैं।

उपर्युक्त विकास के परिदृश्य के बावजूद यह एक सच है कि मुण्डा क्षेत्रों के कृषि कार्य में गिरावट आई है। शहरी चहल-पहल एवं वेश-भूषा ने इन्हें प्रभावित किया है। वहीं कठिन कृषि कार्य और कठिन होता जा रहा है। लोग कृषि कार्य से चुराने लगे हैं। इसे देखकर कवि का मन व्याकुल हो उठता है। वह अपनी रचनाओं के माध्यम से खती के महत्त्व को समाज में पहुँचाने को बाध्य होता है। इस प्रसंग का एक जदुर गीत :-

सिउः - चलु तबु पुरना कमि
मुण्डा जगर तबु जोनोम जगर
कबु अतुइया तबु पुरना पोटोम
जोतोन केअतेबु जोगावे नेया अञः जगर

इसु गोनोंअन पूंजी तबु
टका पोएसा ते किरिंक नमोगा
नेकन पूंजी कबु अदेया तबु
जोतोन केअतेबु जोगावेक नमोगा [30]
अर्थात्- कृषि कार्य हमारा आदिम पेशा है
मुण्डारी भाषा हमारी मातृभाषा है।
हम पुरानी पूंजियों को नहीं बहायेंगे

मेरा कहना है, यत्न से उसे रखेंगे।

ये बड़े मूल्यवान चीज है।
रुपये-पैसे से मोल सम्भव नहीं ।
ऐसी पूंजी को हम कभी खो नहीं देंगे।
यत्न से रखेंगे, नहीं मिलेगी।

मुण्डाओं की कृषि वर्षा पर ही निर्भर रहती है। आधुनिक युग में उत्पादन को बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक रासायनिक खादों का भी प्रयोग ये अपने खेतों में करने लगे हैं। इससे सम्बन्धित एक चिटिद गीत प्रस्तुत है :-

अयु:द:दो तेबा: लेन	अर्थात्- वर्षा की ऋतु आई
जमे-जमे: गमा लेद	झम-झम पानी बरसा
ओरे ! ददाया	हे भाई !
ओटे-अड़ी लुमे जना दो	खेत-आँड़ भींग गया है।
सीयालं चलुइया	हम खेती जोत-कोड़ करेंगे
हिता जंलं हेरेया	उसमें बीज बोयेंगे
ओरे ! ददाया	हे भाई !
खेती बतिरे कलं तयोमे	हम खेती लगाने में देर नहीं करेंगे
हिता रे निंदिर गोयो: रनु	बीज में एल्ड्रीन
सरा सुफला-यूरिया सल्फेट चुना	खाद, यूरिया, सुफला-साल्फेट-चूना
ओरे ! ददाया	हे भाई !
मेसालेरे पुरा: होबा तन [31]	प्रयोग में लाने से अधिक उपजने लगा है।

मुण्डा लोग मांसाहारी हैं। इसलिए कृषि के अलावे शिकार भी करते हैं। आधुनिक युग में शिकार एक रिवाज या धर्म बन गया है न कि आर्थिक पूर्ति का साधन। अब इस काल में खास कर वे सुअर, खरगोश, चिड़ियाँ, साही तथा मछली आदि का शिकार करते हैं। इससे सम्बन्धित लोकगीत एवं लोक कथाएँ व्याप्त हैं। एक जपी लोकगीत देखा जा सकता है :-

होनमे दो सेंदराए सेनकेना	अर्थात्- तुम्हारा पुत्र शिकार करने गया था

होनमे दोएःरुअड़ा लेन	तुम्हारा लड़का लौट गया।
गगमेदो करेंगाएःबिरिद केना	तुम्हारा बेटा शिकार करने गया था
गगमे दोनएः अचुर लेन	तुम्हारा लड़का वापस आ गया।

होनमे दोन सुकुरि बोरोते	तुम्हारा लड़का सूअर के डर से
होनमे दोनए रुअड़ा लेन	तुम्हारा लड़का लौट आया।
गगमे दोनए जिकिको चिरिते	तुम्हारा बेटा साही के डर से
गगमे दोनए अचुरे लेन	तुम्हारा बेटा वापस आ गया।

होनमे दोना तुञिअञ मेन्दो बनोंः	तुम्हारा बेटा तीर मारेंगे सो नहीं
होनमे दोनए रुअड़ा लेन	तुम्हारा लड़का लौट आया।
गगमे दोनतेरिअञ मेन्दो लेन	तुम्हारा पुत्र पत्थर मारेंगे सो नहीं
गममे दोनए अचुरे लेन [32]	तुम्हारा बेटा वापस आ गया।

जिस तरह चलना ही नृत्य है और बोलना ही गीत है। उसी प्रकार मुण्डाओं का कर्म ही धर्म है। क्योंकि 'आदिवासी लोग कर्मभिमुखी हैं, वे अपनी भावनाओं को कर्म द्वारा व्याक्त करते हैं, शब्द द्वारा नहीं।' [33] ऐसे ही मुण्डा जन अपने बीच में कर्म के द्वारा अपनी भावनाएँ व्यक्त करते हुए भी कम से कम शब्दों का उच्चारण करते हैं। इसमें भी आर्थिक तथ्य उपलब्ध है। जैसे- मृतक की छाया अन्दर करने के समय निम्न जवाब देने के बाद ही गृह-प्रवेश का आदेश मिलता है - *"का हले कुम्बुडु-जुम्बुड़ि दो का, अले पुराःगे संगिन, सुतियाम्बे-कुडुमबाए तेले हिजु तना। तिरिल गुटु रेले डेरालः। निदा जनाले, डेराले दड़ां तना। दुकु इदि तुकाले सेन केना, सुकु बारिले अउ जदा। बबा एंगा-गोदेएंगा, लखी-लक्ष्मी, उरिःमेरोम, सिम-सुकुरि, सोना-चँदी, हीरा-मुति सोबेन ले अउ जदा।"* 34. अर्थात्- हे बन्धुओं ! हम चोर-लुटेरे नहीं हैं, बहुत ही दूर, सुतियाम्बे -कुड़म्बाया से आ रहे हैं। हमने केन्द वृक्ष के वन में डेरा डाला था। अब रात हो गई है, इसलिए रोशनी देखकर इस ओर डेरा खोज रहे हैं। हमलोग दुःख पहुँचाने गए थे और सिर्फ सुख को लेकर आ रहे हैं। हमारे पास धान माता, मंडुवा माँ, लखी-लक्ष्मी है, गाय-बैल है, मुर्गे-सूअर हैं, सोना-चाँदी हैं और हीरे-मोती सब कुछ हैं।

कहानियों के अलावा मुण्डारी मंत्रों में भी आर्थिक पक्ष की चर्चा

मिलती है। जैसे -'सोसोबोंगा' मुण्डारी लोकगाथा का पाठ करने के बीच में और अंत में मंत्र का उच्चारण किया जाता है। जिसमें आर्थिक तथ्य स्पष्ट परिलक्षित होता है। सम्बन्धित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :- *"बुगि कजि मेनेलेदः तिसिङ बिदाजदमेआ सोएया सिमजरोम, सोसोबरकद तिलइ ओतोररोङ्त, सेःलेका बन्दुलेका ने बबा एंगा रे, ने कोदे एंगा ते तोल लेना, ने सोसोकरकद, सोएया सिमजरोमते, तिलइ ओतोरोङ्ते जिरगिड़ि, टपागिड़ि जदमङ।"* अर्थात् - तुम से सुख की कामना की गई थी, जिसके लिए आज मैं तुम्हें मुर्गी अण्डा, भेलवा-टहनी और तिलई लतर से विदा कर रहा हूँ। तुम बीच के समान, गुंगु लतर के सामान इस धान माता में, मडुवा माता में मौजूद था या बंधा हुआ था। आज इस भेलवा टहनी से मुर्गी के अण्डे से तिलई लतर से झाड़ कर, झटका देकर मैं तुम्हें अलग कर रहा हूँ।

मुण्डारी खेलगीत एवं बुझौवलों में भी आर्थिक तथ्य व्याप्त हैं। बच्चों का खेल 'सान-सकम' (लड़की और पत्ता) में लड़के-लड़कियाँ एक कतार में एक दूसरे का हाथ पकड़कर खड़े होते हैं। बीच में बनने वाले रिक्त स्थानों में खेलगीत गाते हुए शुरू से अन्त तक प्रवेश करते जाते हैं। एक गीत इस प्रकार हैः-

लुड़गु दिरि चुबुइः केन, अर्थात् - लाड़हा पत्थर छुब-सा किया,
सोः चउलि सेकेः केन छंटा हुआ चावल छप-सा किया।

इस तरह अनेकों खेलगीत हैं जो अर्थ से सम्बन्धित है।

खेल गीतों के साथ-साथ बुझौवलों में भी आर्थिक तथ्य भरे हुए हैं। इससे सम्बन्धित कुछ बुझौवलों को देखा जा सकता है :-

"मःतई मिंडि तिंगुअकन गेः तइना" - बबा नंडा। [36]
अर्थात्- काटा हुआ भेड़ा खड़ा ही रहता है - धान का नारा (धड़)।
"मियद होड़ो हटा रे गुचुवा कना" - जोन्डा। [37]
अर्थात् - एक व्यक्ति की मूँछ दाँत में है - मकई।
"मियद जो जरोम रे जोजो, सोएया रे हेड़ेमा" - चटनी। [38]
अर्थात् - एक पका फल खट्टा है, सड़ता तब मीठा होता है
- चटनी इत्यादि।

सामाजिक तथ्य

छोटानागपुर के मुण्डाओं की सामाजिक प्रणाली कितनी पुरानी है, यह बताना बड़ा कठिन है। लेकिन इतना सच है कि वे अपने आदिम सामाजिक परम्परा को यथावत बचाए हुए हैं। अतः आदिवासी समुदायों में मुण्डा एक महत्त्वपूर्ण समुदाय है। ऐसे तो इस देश में अनेकों जातियां एवं समुदाय आदिम युग से रह रही हैं। परन्तु सभी जातियाँ आदिवासी या अनुसुचित जनजाति श्रेणी में नहीं हैं। चूँकि आदिवासी का अर्थ है आदिम काल से चली आ रही सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं अन्य प्रसंगो में रहती आई जाति। इसकी परिभाषा सामाजिक मानव वैज्ञानिकों ने इस प्रकार दी है -"आदिम (primitive) का अर्थ होता है 'प्राचीनतम रूप' किसी भी चीज (वस्तु, घटना, व्यक्ति) को आदिम कहा जा सकता है अगर वह वर्तमान रूप से भिन्न हो। इस सम्बंध में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि वह कितनी पुरानी है। शारीरिक मानव विज्ञान में आदिम मानव (प्रीमिटिव मेन) का अर्थ पाषण युग या उससे भी पहले के मानव से लगाया जाता है।"[39]

मुण्डा समाज में अभी भी विवाह के सभी प्रकार मौजूद हैं। उसमें से एक सामाजिक विवाह पद्धति 'अगुवा' विवाह है। इसे 'दुतम' विवाह भी कहा जाता है। इस विवाह में अगुवा के द्वारा लड़के के लिए कन्या ढूँढ़ी जाती है तथा कन्या पक्ष को कन्या के लिए मूल्य (गोनोङ) दिया जाता है। यह विवाह भी हरण विवाह का ही संस्कारित रूप है। महाभारत और रामायण या रामचरितमानस जैसे ग्रंथों में हरण विवाह की चर्चा है। यह प्रथा झारखण्ड के अन्य आदिवासियों में भी यथावत् है। कन्या तय होने पर कन्या-मूल्य (डाली दाम) दिया जाता है। 'महाभारत' में भीष्म द्वारा माद्री के कन्या-मूल्य दिये जाने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।" [40] कन्या मूल्य के सम्बन्ध में एक गीत देखा जा सकता है :-

कोनेअ गए दुतमोःअ कोड़ा होन मेनतेदो
अगुवा बोः डुंडिए नमेअ दुतम नला दो
दुअः अड़गु मरं पेड़ा एरे सला हिजुः सेनोः
टुण्डु रेदो अड़न्दी कोडन्दी बला सका को

कुड़िहोनः असुल गोनोङ अरंड़ां उरिःगे
एंगाबगि जिआ लेदेरा रे सराधुति गे
मरङ कुड़िहोन डिण्डा गेरेदो मुट्टु तड़ोम गे
मुण्डा कोअ नेग गोनोङ कोदो नेअ कोगे। [41]

अर्थात्- अगुवा लड़के के लिए कन्या ढूँढ़ता है।
अगुवा को उपहार में 'डुंडि' (खस्सी का छोटा हिस्सा) मिलता है।
बड़े कुटमइत में पानी उतारने और सगुन के लिए आना-जाना होता है।
अन्त में विवाह हो जाता है।

कन्या के दाम में माता-पिता को जोड़ा बैल दिया जाता है।
माता बिछुड़न, आजी लेदरा, सारा धोती दी जाती है।
यदि बड़ी बहन कुंवारी हो तो मुठलंघना होता है।
मुण्डाओं के नेग और दाम यही सब हैं।

मुण्डा समाज में वर की ओर से बारात जाने का प्रचलन है। इस समय मुण्डा लोग कई प्रकार से बारात जाते हैं - चउड़ल या पालकी, मोटर गाड़ी एवं पैदल चलकर। बारात से सम्बन्धित एक गीत द्रष्टव्य है :-

ओकोहातु बरातिया दो — अर्थात्- किस गाँव की बारात है?
ओकोहातु सरातिया दो — किस टोले का सरात है?
डुगुमुगु चाउडल दो — पालकी डगमग करता है।
गाजा-बाजा बजानिअदो — गाजे-बाजे बज रहे हैं।

कोदे मुनु इलि दो — मंडुवा का मुनू हंड़िया है।
सरजोम रेअः पुड्डुदो — साखू पत्ता का दोना है।
सोमदि कोड़ा दोए दुरङ तना दो — समधी गा रहे हैं।
सोमदि कुड़ि दोए सुसुन तना दो — समधीन नाच रही हैं।

बिर होराते हिजुःलेना — वन रास्ते से आई थी

गड़ा होराते रकब लेना	नदी रास्ते से आई थी
कुड़ा सुड़ा सुबा डेरा दो	जामुन के नीचे डेरा मिला
बारु झुम्बड़ा उमबुलबसा दो	कुसुम की छाया में वास मिला

कंड़ा-पिरि तेको दरोम सुसुनदो	पैका (ढाल-तलवार) का स्वागत नाच
लङ चेणेइल-अपरोब पड़कीदो	लंग पक्षी के पंखों का पैका
कुडुम हन्दिड़ी रु दो सड़ी तनादो	दिल दहलने सा बाजा बजता है
बुरु हंदिड़ि रूमबुल अयुम तना दो	पहाड़ धंसने जैसा सुनाई पड़ता है।

कोड़ाहोन अड़न्दि दुब जना दो	वर शादी में बैठा
कुड़िहोन कोड़ान्दि दुब जनरा दो	कन्या शादी में बैठी
मोद टिका सिंदुरि ते टिका जना दो	उसे सिन्दुर का टीका दिया
बरे किया ससंगतेः हिरचि जना दो[42]	उसे हल्दी पानी छिटका दिया।

इस प्रकार विवाह के पश्चात लड़का अपनी पत्नी को अपने पैतृक गाँव में रखकर पारिवारिक जीवन की शुरुआत करता है। लड़के की पत्नी को सभी उसके मायके के गाँव के नाम से ही पुकारते हैं अथवा वधू को उसकी जन्मभूमि के नाम से सम्बोधित किया जाता है। वधू जब पहली बार ससुराल से मायके या मायके से ससुराल जाती है तब प्रसाद में हड़िया लेकर जाती है। हंड़िया-घड़ा का मुंह पत्तल से बन्द करते समय थोड़ी मात्रा में मेरा (हंड़िया) को एक सखुआ पत्ता में मोड़कर बांध या चिपका दिया जाता है। इस सखुआ पत्ता में बंधे हंड़िया को जाते समय वह गाँव की सीमा पर ग्राम देवताओं के लिए रख कर जाती है। यह प्रथा प्राचीन है। रामायण तथा महाभारत में भी इसके प्रमाण भरे पड़े हैं- मद्र देश की माद्री, कैकेयी देश की कैकयी, सुमित्रा, कोशल देश की कौशल्या आदि के नाम उनकी ससुराल में मायके के देश के नाम पर ही लिए गए है। छोटानागपुर में यह परम्परा अन्य आदिवासी जातियों में भी प्रचलित है। जैसे- *'कुड़ि दो मेदसोबो गाँव ओतेए अउलेन रःते, मदसोबोः मेनतेको रअः जःइ तइकेना।''* [43] अर्थात्- पत्नी मेदसोबो गाँव लाई गई थी। इसलिए उसे मेदसोबो कह कर पुकारते थे।... . पति-पत्नी से जन्म लेने वाली संतान के गोत्र-वंश पिता के अनुसार ही चलते हैं। पति, पत्नी की दीदी का नाम नहीं लेता और न उससे मजाक आदि कर

सकता है। उसी प्रकार पत्नी भी अपने पति के बड़े भाई का नाम एवं उस तरह का बर्ताव नहीं कर सकती है। मुण्डा समाज में नातेदारी का महत्त्व विशेष है। इससे सम्बन्धित एक गीत की पंक्तियाँ देखी जा सकती है :-

मुण्डा कोरे नतारेअः मइन दो अर्थात्-	मुण्डाओं में नाता का महत्त्व है
सोबेन को मनतिङ जदगेअदो	इसका पालन सभी करते है।
अंवगे लंदा रसिका जेताएलोः	यों ही हंसी-मजाक किसी से
कागे दङको सुकुअ तना मुण्डा को !	मुण्डाओं को पसन्द नहीं आता है।
अजिहनर बउहोंजर कोलोः	दीदी सास-भाई ससुर के साथ
लपंदा कागे दङ बइउःअ दो	मजाक नहीं बनता है
मिदपटि मियद गंडुरे दुबदो	एक चटाई और एक पीढ़ा या चौकी में बैठना
कजिअको बेमइनोः तना दो। [44]	कहा जाता है, यह मान्य नहीं है।

मुण्डा समाज कृषि पर आधारित है एवं अभी भी संयुक्त परिवार के रूप में रहता आ रहा है। मुण्डा समाज में प्रेम-विवाह प्रचलित है। वर्त्तमान में अन्य संस्कृति के प्रचार-प्रसार या सम्पर्क से इसे बढ़ावा मिलता जा रहा है। परन्तु सगोत्र प्रेम विवाह करनेवालों को अभी भी कठोर दण्ड दिया जाता है। क्योंकि यह समाज या मानवता के खिलाफ है। एक गोत्र में भाई-बहन या एक खून का सम्बन्ध होता है। गाँव, एक समाजिक इकाई है। जिसमें एक खास गोत्र के ही लोग अधिकांशतः बसते हैं। उस गाँव में सभी सामाजिक-धार्मिक कार्य उस गाँव के प्रधान मुण्डा की देख-रेख में सम्पन्न होता है। उदाहरण के लिए मृतक के नाम से चढ़ाया श्मशान घाट का पत्थर धोने से सम्बन्धित कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती है- *''एनरेन टोला मुण्डा मियद लोटा रे दाः उडुंकेद चि, पाटमुण्डा तःए इतिकेदा। इनिःदो टोलो मुण्डालो जोपोअर जन चि, लोटा रअः दःए तेला केदा, अदेः ओमरूड़ाइः चि ओड़ो मिसा किं जोपोवर जना। एनते मियद मेराम मःजना। एन तयोम ते ओड़ोःगे टोला मुण्डा लोटा रे दःए अउकेदते, एटः हतुरेन मुण्डातःए इदि केदा। इनिःलो सिदा लेका किं जोपोअर जना; एनते टोला मुण्डा सोबेन कोएः जोअर केः कोव।''* [45] अर्थात्- उस टोला का मुण्डा, लोटा में पानी लेकर पाठ-मुण्डा या सभा के मुख्य व्यक्ति के पास गया। उसने उसे प्रणाम करके लोटे का पानी दिया। लोटा-पानी

ग्रहण कर उसने प्रणाम किया और वापस किया। फिर दोनों ओर से प्रणाम हुआ। तब एक खस्सी काटा गया। (लोटा-पानी देने-लेने की प्रक्रिया को आज्ञा लेना या देना कहा जाता है। पहले लिखा गया है कि मुण्डा लोग कर्माभिमुखी होते हैं। दिरिचपि या पत्थर धोना या लाना कार्यक्रम में प्रति गाँव पर या पत्थर पर, एक खस्सी देने की परम्परा है) इसके बाद फिर गाँव का मुण्डा लोटा-पानी लाकर दूसरे गाँव के मुण्डा (सभा में आये) के पास गया। तब पहले की भाँति दोनों में पुनः आपसी प्रणाम-पाती हुआ। इस तरह गाँव का मुण्डा लोटा वापस लेकर अन्त में सभा के सभी उपस्थित छोटे बड़े लोगों को एक-एक कर प्रणाम किया।

एक गोत्र वाले मुण्डा समाज तीन खूट में बँटे हुए है- पहान खूट, मुण्डा खूट और रैयत- प्रजा खूट। इसी आधार पर टोले भी बाँटे हुए हैं। पहान टोला, मण्डा टोला, ऊपरी टोला रैयत टोला नीचे टोला और मध्य या तला टोला आदि।

मुण्डा समाज में संतानों का होना शुभ माना जाता है। पुत्र-पुत्रियाँ उनकी सम्पत्ति होती है। पुत्रों के अभाव से सम्बन्धित एक जरगा लोकगीत का अवलोकन करना अपेक्षित होगा -

बुलेतन रेदो नजि तुलेतन रेदो
ओकोए अदेर लंआ नजि चिमए बितर लंआ,
अर्थात्- हे आजी, जब हम नशे में रहेंगे, तब
हे आजी (दादी), हमें कौन अन्दर करेगा?

आधुनिक मुडा समाज में स्त्रियों का महत्त्व पूर्व की भाँति यथावत है। इनके समाज में भी लड़की का जन्म लेना अभिशाप नहीं है। पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं है। क्योंकि एक लड़का और एक लड़की के द्वारा ही मानव की सृष्टि हुई है। अन्तर इतना है कि प्रत्येक मुण्डा परिवार में पुत्र का होना अनिवार्य है क्योंकि पिता का उत्तराधिकारी पुत्र ही होता है। पुत्री शादी के बाद पति के घर की अधिकारिणी होती है। इसके सम्बन्ध में एक लोक गीत देखा जा सकता है।

होरा हेसाःसालु	अर्थात् -हे पत्नी ! रास्ते का पीपल
ओकोए रोवा लेदा	किसने रोपा था ?
डरे बड़े दो सालु	किसने लगाया था?

होरो हेसाः दो सालु	हे पत्नी ! रास्ते का पीपल
गतिम रोवा लेदा	तुम्हारे पति ने रोपा था।
डरे बड़े दो सालु	हे ! पति रास्ते के बरगद को
संगम पोवाः लेद	तुम्हारी पत्नी ने रोपा था।
तारा कोतो दो सालु	हाँ पत्नी, आधा डाल
हातु तला रेआ	गाँव के बीच में हैं।
तरादड़ाए दो सालु	हाँ पति ! आधा तना
दिसुम तला रेआ	देश के बीच में।

मुण्डा समाज अब तक 'कर्मकाण्डी' है। अतः मुण्डा जाति मांसाहारी है। इनकी अधिकांश आबादी कृषि पर ही आधारित है। अब इनके समाज में भी आधुनिक शिक्षा-दीक्षा की आवश्यकता है। जहाँ पहले अधिक जमीन, हल-बैल तथा आनन्दपूर्ण जीवन के लिए अखाड़े थे, जंगल थे, खेत-खलिहान थे, नृत्य-संगीत और ढोल-नगाड़े-बाँसुरी आदि थे वहीं अब रेडियो, टेलिविजन, टेप-रिकार्डर, सिनेमा आदि है।

आधुनिक काल में मुण्डा समाज कई सामाजिक एवं सांस्कृतिक ईकाइयों में बाँटा गया है। इनकी बहुत बड़ी जनसंख्या ईसाई धर्म को स्वीकार कर चुकी है जो मुण्डाओं से बिल्कुल भिन्न है, ये विदेशी ईसाई सभ्यता एवं संस्कृति के अधिक नजदीक प्रतीत होते हैं। मुण्डा-ईसाई पढ़े-लिखे अधिक हैं और उनकी आर्थिक स्थिति भी संसार मुण्डाओं से कहीं अच्छी है। वे (ईसाई) अपने को मुण्डा होने का दावा भी करते हैं। *"मिद जाति रेन होड़ो कोअः मिदलनेकान तइनोः चि जिदन गे ससंकिर दो तनअः?"* [46] अर्थात् - क्या एक जाति की जनता का एक समान रहना या जीना ही संस्कृति है? उत्तर है- *"ससंकिर दो मिद जति रेन होड़ो कोअः मिद लेकान तइनोः गे तनअः।"* [47] अर्थात्- एक जाति के लोगों का एक समान रहना ही उसकी संस्कृति है।

मुण्डा सरना में सिङबोंगा की पूजा करते हैं और ईसाई गिरजा में यीशु की प्रर्थना करते हैं। जहाँ धर्म दो है, वहाँ संस्कृति भी दो होगी। इतना ही नहीं सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन भी पृथक होंगे। इस भिन्नता को हम यहाँ केवल झारखण्ड की मुण्डा जाति को लेकर ही नहीं, बल्कि भारतीय जातीय स्तर के आधार पर भी कर सकते हैं। इसलिए उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर

भारतवर्ष की जाति व्यवस्था के आलोक में देना समुचित होगा। भारत में ''हिन्दू-मुसलमान, सिख-ईसाई' नामक जातीय वर्गीकरण है। इसी जाति विभेद के आधार पर उनके धर्म, समाज और उनक संस्कृति का भी नामकरण किया गया है।

अतः भारतीय जाति व्यवस्था के अवलोकन में छोटानागपुर की मुण्डा जाति की संस्कृति (ससंकिर) से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर में कहा जा सकता है कि एक प्रकार या जाति की संस्कृति में कई जातियाँ, कई भाषाएँ एवं अनेक रस्म-रिवाज हो सकते हैं। परन्तु एक संस्कृति में कई धर्म नहीं हो सकते और एक धर्म में कई जाति की संस्कृति हो सकती है; जो उसी धर्म के अन्तर्गत हों। क्योंकि संस्कृति और धर्म एक सिक्के के दो पहलू हैं। उदाहरण के लिए - मुण्डा क्षेत्र में रहने वाले उराँव तथा अन्य जातियों पर मुण्डा संस्कृति का प्रभाव और उराँव क्षेत्र में रहने वाले मुण्डाओं पर कुड़ुख भाषा-संस्कृति का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसी तरह मुण्डा, उराँव में धार्मिक एकता मिलती है। जैसे - मण्डा का पर्व। इसे संसार मुण्डा, उराँव, खड़िया तथा सदान सभी एक साथ मनाते हैं। परन्तु राष्ट्रीय या प्रांतीय एकता के दृष्टिकोण से हिन्दु-मुस्लिम, सिख-ईसाई हम एक हैं। हम झारखण्डी हैं, भारतीय हैं। भारत की संस्कृति हमारी है। इसमें किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं है। लेकिन 'हिन्दू-मुस्लिम, सिख-ईसाई' भारत की जातीय सूत्र के धागे में छोटानागपुर के गैरईसाई मुण्डा, हो संताल, खड़िया और उराँव- ये मुख्य आदिवासी कबीले कहाँ गुंथे हुए हैं या इसके कोई सूत्र ही नहीं हैं? इसे निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है ''यहाँ के आदिवासी भी अब दो गुटों में विभक्त हो गए हैं - 1. हिन्दू आदिवासी, 2. ईसाई आदिवासी।'' [48]

परन्तु आदिवासी 'हिन्दु' नहीं हैं। क्योंकि इनकी धार्मिकता समान होते हुए भी असमान है। अतः छोटानागपुर के सारे संसार आदिवासी वहीं हिन्दु-आदिवासी में वहीं गुंथे हुए बताए जाते हैं (ईसाई इनसे जुदा हैं ही)।

पहले लिखा गया है कि मुण्डा समाज मांसाहारी हैं तथा उनके धर्म में कर्मकाण्ड की प्रधानता रही है। लेकिन इनके समाज में पशु-वधशाला नामक जगह का कहीं वर्णन नहीं आया है। जैसा कि मध्यकालीन भारत के इतिहास में समाज सुधारक अकबर के शासन काल में ''पशुओं के वध को भी उसने नियंत्रण किया। सप्ताह में कुछ रोज पशु वधशाला उसकी आज्ञा से

बन्द रहते थे।" [49] वहीं मुण्डा लोगों को शिकार तथा सामूहिक पूजा के नाम से पच्चीस ग्राम से दो सौ ग्राम की मात्रा में प्रत्येक परिवार को मिलता है। कृषि कार्य या मदइत और पर्व-त्योहार के अवसर पर अधिक से अधिक पाँच सौ ग्राम प्रति व्यक्ति से एक-दो किलो ग्राम प्रति परिवार में पड़ता है।

इसके अतिरिक्त खेल गीतों एवं बुझौवलों में भी सामाजिक तथ्य मिलते हैं। इससे सम्बन्धित एक खेल गीत :-

मुण्डा कोअः तुकुदो	अर्थात्- मुण्डाओं का मूसल
तरः नगे तोरोनगे	थर-थोर और
चुबि चि दुर - 2	छुब या धूर की आवाज करता है।

उसी प्रकार एक बुझौवल द्रष्टव्य है- *"खूँटी पिड़ि लो तना, कदमा रे चमरा मुण्डाए हकवा तना सेलदः रे सुकुल उड़ुंतना।"* [50] अर्थात्- खूँटी मैदान में जल रहा है और कदमा (गाँव) में चमरा मुण्डा हल्ला कर रहा है तथा सेल्दा गाँव में धुँआ निकल रहा है - हुक्का।

सांस्कृतिक तथ्य

आधुनिक युग में अंग्रेजी शासन की स्थापना के बाद और आजादी के पूर्व से ही अंग्रेजों ने मुण्डारी लोक साहित्य का संकलन प्रारभ किया था। वैसे, सदियों से अब तक गाय चराते, कृषि कार्य करते, मेलों में, भ्रमणों में, शादी में, सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों में, पर्व-त्योहारों में, युवा-गृहों में तथा अखाड़ों में मुण्डारी लोकगीतों के साथ-साथ सांस्कृतिक उपकरण ढोल, ढाँक, नगाड़े, शहनाई, भेइर, नरसिंहा, शंख, मान्दर, घंटा, बनम (केन्दरा), टुहिला आदि गूंजते रहे हैं। इसके अन्तर्गत आधुनिक सांस्कृतिक उपकरणों का भी समावेश है। परन्तु अभी भी मण्डाओं की संस्कृति में सांस्कृतिक कार्यक्रम परम्परानुसार आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं मौसम के आधार पर शुरू होकर अन्त होता है। जैसा कि पहले भी लिखा गया है कि जदुर गीत-नृत्य का शुभारंभ खरीफ खेती की समाप्ति का पर्व, खलियान पूजा (कोलोमसिंग) से शुरू होता है। इसके भेद गीत-गेना गीत माघ पर्व की रात से तथा जदुर गीत होलिका दहन की रात से गाने की परम्परा है। जपि गीत सरहुल पर्व के उपवास के दिन तथा होली शिकार से वापसी के समय भी गाया बजाया जाता

है। चिटिद गीत सरहुल के दूसरे दिन जदुर अखड़ा से ही शुरू हो जाता है। इसका समय चैत से आषढ़ माह रथ मेला तक रहता है। इसी आषाढ़-सावन से करम गीत का मौसम आ जाता है। करम गीत का भेद गीत 'खेमटा' करम पर्व के उत्तर भाग में गाया जाता है और करम पर्व की समाप्ति के साथ ही इसका समय भी समाप्त हो जाता है। इसके पश्चात जरगा गीत का मौसम आता है। दीपावली की रात से इस गीत को गाने-बजाने का श्रीगणेश किया जाता तथा खलियान पूजा को अन्त हो जाता है और इस पूजा के बाद माघ पर्व में जरगा गीत-नृत्य का काल पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है। इस गीत का भेद गीत और जराग, जरगा गीत के साथ-साथ चलता है। इसके अतिरिक्त अन्य मुण्डारी लोकगीत जैसे - शादी गीत आदि शादी-विवाह के अवसर पर गाये जाते हैं। लेकिन वर्त्तमान समय में मूल सांस्कृतिक केन्द्र 'अखड़ा' से हटकर आधुनिक सांस्कृतिक केन्द्र आकाशवाणी, दूरदर्शन, टेपरेकार्डरर्स आदि केन्द्रों में भिन्न मौसम के गीत-नृत्य दूसरे मौसाम में भी देखे-सुने जा रहे रहे हैं।

अतः यह स्पष्ट है कि मुण्डारी लोकसाहित्य मुण्डा समाज की जनता के कण्ठों में संग्रहित होता आया है। अब तक इनके समाज में मौखिक लोकगीतों, लोककथाओं तथा मंत्र एवं बुझौवलों का महत्त्व है। मुण्डारी लोकगीत इनके वेद मंत्र हैं। लोककथाएँ इनके पुराण-कथाएँ हैं। इस युग में मुण्डारी लोक साहित्य का विशाल लिखित रूप मिलता है। फिर भी अब तक इसका महत्त्वपूर्ण तथ्य अप्रकाशित ही है।

काल के साथ ही साथ मुण्डारी लोक साहित्य भी वृद्धि की ओर अग्रसर है। विशेषकर लोकगीतों तथा शिष्ट गीतों में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। "इतिहास मानव जाति की उपलब्धियों का एक दस्तावेज है।" [51] अतः मुण्डारी लोकगीतों, शिष्ट गीतों एवं शिष्ट कथाओं में आधुनिक सांस्कृतिक तथ्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। वाद्य यंत्रों एवं सांस्कृतिक उपकराणों में विशेष बदलाव नहीं आया है। परन्तु मुण्डा संस्कृति में भी आधुनिक उपकरणों का समावेश होना स्वाभाविक ही है। पहले मुण्डा जाति के लोग वर्षा ऋतु में पानी से बचने के लिए बाँस छाता और गुंगु का उपयोग करते थे, अब यहाँ पर एक आधुनिक उपकरणों का विस्तार हुआ है। जैसे - कपड़े का छाता तथा बरसाती कपड़ों से बने वस्त्र। इससे सम्बन्धित एक करम गीत प्रस्तुत है :-

उरी: चिरेम गुपि तना अर्थात् -क्यों तुम गाय चरा रहे हो,
हेन्दे चतोम दंगड़ा हे काला छाताधारी युवक ?
गड़ा परोम गाई परोम जना गाय नदी के पार चली गई,
हनि: जोम तना गाइ बबा [52] देखो, गाय धान खा रही है।

दुलाय चन्द्र मुण्डा का ही और एक जरगा गीत देखा जा सकता है जिसमें 'बिगुल' और तीर-धनुष आदि के बदले गोली बारूद का वर्णन आया है:-

डोम्बरी बुरू चेतन रे अर्थात् - डोम्बारी पहाड़ पर
ओकोए दुमङ रुतनाको सुसुन तना कौन मांदर बजा रहा है,
लोग नाच रहे हैं।
डोम्बरी बुरू लतर रे डोम्बारी पहाड़ के नीचे
चिमए बिंगुल सड़ी तना को कौन बिगुल बजा रहा है
लोग ऊपर
संगिला कदा। [53] ताक रहे हैं।

वर्तमान मुण्डा समाज के वेश-भूषा अर्थात् पहनावे-ओढ़ावे में पूर्णरूप से आधुनिकता का समावेश हो गया है। पढ़े लिखे मुण्डा लोग फुलपैंट अर्थात पतलून पहनते हैं तथा नारियाँ आधुनिक मशीन द्वारा निर्मित साड़ियाँ ही पहनती हैं। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :-

सुपिद चेतन अटलबा अर्थात्- जूड़े में चमेली का फूल है
बा सड़ी ओरे तन फूलदार साड़ी लहरा रही है
जेतन उङु:पिकिर बनो: कोई चिंता फिक्र नहीं है
लन्दा बेड़ा तनगेम लेलोगा [54] तुम हंसती फिरती दिखती हो।

मुण्डारी लोकगीतों एवं शिष्ट गीतों की विशेषता है प्रकृति के साथ उनका अटूट सम्बन्ध। जिसमें प्राकृतिक एवं उनकी सांस्कृतिक या धार्मिक गतिविधियों का क्रमानुसार प्रत्यक्ष चित्रण मिलता है। उसी प्रकार आधुनिक युग की वैज्ञानिक उपलब्धियों का वर्णन इसमें छुपा नहीं है। जैसे :-

रेलगाड़ी गिदि गिदि अर्थात्- छुक-छुक रेलगाड़ी
मेड़ेद तेगे सेसेन तना - 2 पटरी में चलती है।
उरंग जहाज रड़ा रड़ा हड़-हड़ हवाई जहाज
दिदि लेका अपिर तना - 2 गिद्ध की भाँति उड़ता है।

मेड़ेद तेगे सेसेन तना	पटरी में चलती है
दगे लेका सेनेन तना - 2	पानी जैसा चलता है
दिदि लेका अपिर तना	गिद्ध की भाँति उड़ता है।
होयोरेगे अपिर तना - 2	हवा में उड़ता है।

मुण्डारी लोकगीतों में मानवीय आत्माओं का चित्रण भी मिलता है। शिष्ट मुण्डारी गीतों में भी गीतकारों के निजी अनुभवों की अभिव्यक्तियाँ हुई हैं। गीत अथवा "कविता कवि विशेष की सभावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना सटीक है कि उससे वैसी ही भावनाएँ किसी दूसरे के हृदय में अर्विभूत होती हैं।" [55] अतः इसी सत्य की अपने पूर्ण सौन्दर्य के साथ अभिव्यक्ति गीत या कविता है। इस प्रसंग में एक जदुर गीत का अवलोकन समीचीन होगा :-

हए जहाज चलओ जना	अर्थात्-	हाय ! जहाज चला
नेः देरङ ओटंजना		अब तो उड़ा
कलकत्ता शहर चेतन		कलकत्ता शहर के ऊपर
जी तञदो एकेला तन		मेरा जी उड़ गया
इपिल को सिरमारेन		आकश के तारे
अदगेको अदा कना		सभी खो गए
अञदोञ दन्दा जना		मुझे आश्चर्य है
ओतेओ चःए इपिलना		धरती भी तारा बन गयी।
होरा अतोम बिजली		रास्ते के किनारे बिजली
ओकोयः सोना मन्दुली		मानो किसी की मंदोली (गले का आभूषण)
हिसिर गे गुतुआ कन		हार-सा गुथा हुआ है,
हेन्दे सुपु अंजलि		काली बाँह अंजलि है।
एला नःदो दनं जना		देखो, अब छिप गया।
सुकुलेते केसेद जना		धुँआ से ओझल हो गया।
चेतन ते चेतन		ऊपर से और ऊपर

इदो कोतःञ हिजुःअकना[56] पता नहीं मैं कहाँ आ गया।

आधुनिक काल में बअनहोनी या जो सम्भव नहीं था वह भी संभव होता जा रहा है। मुण्डारी लोकसाहित्य में ऐसी भावनाओं से सम्बन्धित गीतों की कमी नहीं है। इस प्रसंग का एक करम गीत इस प्रकार है :-

ने सोमए दो कले जुग अर्थात्- यह समय कलयुग है
चण्डुः जोपेरे जनए भारत हे भारत, चाँद अब समीप का है
सिदा अलंगेलं अयर लेदा सबसे पहले हम चले थे
सिदा अलंगेलं अपनलिया सबसे पहले हम अपनाये थे
सेनोगलं दोलं चण्डः परोम अब, चलो हम चाँद से ऊपर चलें।

रिम्बिल जपः इपिलकोलोः आकाश के नजदीक तारों के साथ
जारु जगराउलं भारत हे भारत, मिल-जुल बातें कर आयेंगे
सिदा अलंगेलं दोला दुतमा सर्वप्रथम अगुवाई हम करेंगे
सिदा अलंगेल दोला दखला सर्वप्रथम दखल हम देंगे
सेनोगलं दोलं चण्डुःपरोम अब, चलो हम चाँद से ऊपर चलें।

निदा सिंगिरे बनोःमुण्डि दिन-रात में भेद नहीं है
निदा-सिंगि मिदेम भारत हे भारत, रात-दिन एक करो
दड़ां दुतम गे ने जुगुरःमोन खोज-कर्म ही इस युग की चाह है
सोबेन को ते अयरेनरः सनं सब (देशों) से आगे रहने की चाह है।
सेनोगलं दोलं चण्डुः परोम अब, चलो हम चाँद से ऊपर चलें।

इतुअनाबु सोबेत को सभी को यह ज्ञान है।
जतएकबु तइना भारत हे भारत एक दिन सबको मरना है।
नेआ होड़ो कको उडुःजेतए इसकी चिंता कोई नहीं करता है।
उडुंःतनाको सोबेनकोतेञ अयरोः सोच है कि हम (सब देशों से) आगे रहें।
सेनोगलं दोलं चण्डः परोम[57] अब, चलो हम चाँद से ऊपर चलें।

आकाशवाणी तथा दूरदर्शन केन्द्र, राँची से मुण्डारी साहित्य का

प्रसारण आरम्भ हो गया है। स्कूल-कॉलेजों में मुण्डारी भाषा की पढ़ाई की व्यवस्था भी हो रही है। आज भी मुण्डारी लोकगीत, अन्य गीत एवं लोककथाएँ आदि का मूल उद्देश्य 'स्वांतः सुखाय' रहा है। ये समाज के श्रृंगार थे। ये गीत जीवन रूपी फूल की खुशबू की तरह थे। परन्तु अब इसके साथ-साथ इन केन्द्रों से सरकारी विकास के गीत, नाटक, नृत्य, कथा आदि प्रस्तुत कर तथा बोलकर लोग आर्थिक लाभ अर्जित कर रहे हैं। अतः मुण्डा समाज भी रेडियो एवं टेलिविजन के द्वारा मनोरंजन करने लगा है। इससे सम्बन्धित एक जदुर लोकगीत का अवलोकन समीचीन होगा :-

बकसा रेमा चिरे हड़का रेमा	अर्थात्- हे मित्र, तुम बक्सा में हो या हरका में
बकसा बितारे रेम दुरंतना	तुम बक्सा के अन्दर गाते हो
बकसा रेमा चिरे हड़का रेमा	हे मित्र, तुम बक्सा में हो या हरका में
फोटो रेम लेलोगरे दिकुको लेका	तुम्हारा चित्र दिकुओं के समान लगता है।

इतना होते हुए भी आधुनिक युग में आजादी के बाद भी कहीं-कहीं मुण्डा जाति के लोग पुरानी शिक्षा लोक विद्या, नीति, लोक साहित्य के द्वारा ही विद्या ग्रहण करते आ रहे हैं। आधुनिक शिक्षाविदों में परानी भारतीय विद्या के प्रति प्रेम बना हुआ है। इन पुराने शिक्षा केन्द्रों में सांस्कृतिक केन्द्र, मंत्र, जादू टोना तथा रहस्यात्मक सांस्कृतिक विज्ञान के केंद्र आदि प्रमुख हैं।

सांस्कृतिक केन्द्र :-

इसके अन्तर्गत युवागृह तथा अखड़ा थे। ये केन्द्र सभी के लिए समान रूप से खुले थे। आज भी यहाँ सांस्कृतिक भाव धारा में तैर कर युवा वर्ग, अपने से बड़ों का अनुसरण कर रहे हैं। ये बुजुर्गो के कण्ठ से अपने समाज के समस्त लोक साहित्य को सुनते तथा उनको स्मरण करते हैं। युवागृह युवक-युवतियों का अलग-अलग होता था। नृत्य अखड़ा इन दोनों के कला की प्रयोगशाला होती है। इतना ही नहीं यह इनके मिलन का केन्द्र भी होता है।

अखाड़े के इस नृत्य का महत्त्व सिर्फ सांस्कृतिक, धार्मिक, मनोरंजन, भक्ति, कला आदि प्रदर्शन करना ही नहीं है बल्कि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। विभिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न प्रकार के गीत नृत्य युवक-युवतियों के शरीर को स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट अथवा स्फूर्तिवान बनाते हैं। आज विकास की दौड़ में यह प्रवृत्ति पहले की अपेक्षा शान्त होती जा रही है। आधुनिक सांस्कृतिक उपकरणों की उपलब्धि एक ओर जीवन रक्षक सिद्ध हो रही है तो दूसरी ओर मनुष्य को प्रकृति से काटती भी जा रही है। ऐसे वातावरण में विभिन्न प्रकार के रोगों का विकास हो गया है, विशेषकर बच्चों का जन्म अब कृत्रिम तौर से अथवा ऑपरेशन के द्वारा ही हो पाता है। इस विकसित वैज्ञानिक एवं मंहगी व्यवस्था में गाँव अथवा शहर की गीब जनता किस हद तक सक्षम हो पाएगी, कहा नहीं जा सकता। लेकिन यह भी सच है कि आदिम काल से अब तक मानव समय की परिस्थिति के अनुसार अपने को ढालता अथवा जोड़ता आया है।

मंत्र विद्या या जादू-टोना एवं रहस्यात्मक सांस्कृतिक विज्ञान का केन्द्र :-

इस संस्था को भी हम कई भागों में बाँट कर देख सकते हैं - भरत-मति प्रशिक्षण या देंवड़ा इतुन केन्द्र, अस्त्र विद्या प्रशिक्षण केन्द्र या डण्डाः इनुंग इतुन पिड़ी और डाईन प्रशिक्षण केन्द्र।

भगत-मति ओझा प्रशिक्षण केन्द्र :- यह प्रशिक्षण केन्द्र एक गुरु आश्रम की तरह होता था और अब भी सुदूर गाँवों में वर्तमान है। जहाँ समाज के इच्छुक व्यक्ति और युवक काम से लौटकर शाम में गुरु आश्रम में भगत विद्या तथा अन्य सदगुणों को सीखते थे। इसके गुरु मुण्डा तथा सदान भी होते थे। सर्वप्रथम यहाँ महादेव-पार्वती की सृष्टि कथा सिखाई जाती थी। इसके बाद ये मंत्र-तंत्र, झाड़-फूंक तथा सोहराई या दीपावली पर्व में जड़ी-बुटी के नाम एवं वन से उन्हें एकत्रित करना, रोगों में इनका प्रयोग करना आदि सीखते थे। उपर्युक्त विद्या महादेव-पार्वती की सृष्टि मानी गयी है। इस भगत विद्या सीखने का समय (कोर्स) तीन साल का होता था। योग्य शिष्यों या चेलों को वे सिद्धि देते जाते थे।

युद्ध विद्या अथवा अस्त्र विद्या प्रशिक्षण या डण्डाः इनुंग इतुन

केन्द्र :- यह केन्द्र गाँव के बाहर किसी मैदान में निर्धारित अखाड़े पर होता था। जैसे आज रामनवमी के लिए हिन्दू लोग इस क्रीड़ा-स्थल की स्थापना करते हैं। मुण्डा लोग इसका अभ्यास रात में करते थे। इसे बताने वाला गुरु होता था। इसके गुरु छोटानागपुर के कोई भी जानकार व्यक्ति हो सकते थे। अस्त्र-क्रीड़ा प्रशिक्षण के बावजूद वह अपने शिष्यों को मंत्र या मायावी विद्या भी सिखाते थे। क्योंकि अस्त्र के साथ-साथ मंत्र का भी प्रयोग प्रहार करते समय किया जाता था। इस प्रशिक्षण की अवधि तीन या दो माह के लिए प्रतिवर्ष आयोजित होती थी। शिष्य, गुरु-दक्षिणा के रूप में धान देते थे। जिस प्रकार आज के खेलों में होता है।

डाइन :- इस कुविद्या को गुप्त रूप से स्त्रियाँ ही सीखतीं और सिखलातीं थीं, जो डाइन विद्या में निपुण होती थी। इस विद्या को बिरले ही स्त्रियाँ सिखती थी, जिससे सभी मुण्डा स्त्रियाँ डाइन नहीं होती थी। यह विद्या अधूरी होती है। इसका प्रयोग वे किसी से बदला लेने के लिए करती थी, न कि किसी को सताने के लिए। एक बार इसके प्रयोग किसी पर कर देने के बाद उसे वापस नहीं ले सकती थी। वह महादेव के मंत्र से ही कट सकता था।

वर्तमान समय में आधुनिक शिक्षा, चिकित्सा पद्धत्ति इत्यादि की सुविधा हो जाने के साथ-साथ उपर्युक्त विद्याएँ - खासकर जादू-मंत्र, अस्त्र-विद्याएँ तथा डाइन सीखने की परम्परा समाप्त होती जा रही हैं। परन्तु गाँवों में अभी भी साँप, कुत्ता आदि के काटने पर मंत्रों का महत्त्व देखा जाता है। दाँत दर्द, गाय-बैल जैसे पशुओं के घावों आदि का जड़ी बुटियों के द्वारा सहज ही इलाज होता है।

अब मुण्डा लोग आधुनिक शिक्षा-दीक्षा से अपना जीवन जोड़ने लगे हैं। इनकी भाषा, इनका लोकसाहित्य एक सीमित समाज के दायरे से ऊपर उठकर स्कूल, कॉलेजों जैसे उच्च संस्थानों में तथा राज्य स्तर पर प्रश्रय पाता जा रहा है। इतना ही नहीं, देश-विदेश की परिधि में भी मुण्डारी भाषा साहित्य का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। भाषा वैज्ञानिकों तथा मानवशास्त्रियों के लिए मुण्डारी भाषा तथा जाति विशेष का अध्ययन, आकर्षण का विषय बन रहा है।

इसके अतिरिक्त बुझौवलों में भी आधुनिक तथ्य व्याप्त हैं। जैसे -

"मियद होड़ो रःकनगेः तइना" [58] अर्थात् - एक आदमी रोता ही रहता है। उत्तर - घड़ी ।

"मियद होड़ो कुड़ुम रे दो जीरेगेःरःया" [59] अर्थात्- एक व्यक्ति को छाती में रखते ही रोता है। - 'टुहिला'। इसी प्रकार *"मियद होड़ो लुतुर उड़ियद लिरे मजएः जगरा'* अर्थात्- एक आदमी का कान अँइठ लेने या घुमा देने से मधुर बातें करता है। इसका अर्थ हुआ - रेडियो। इत्यादि।

अन्य तथ्य

मुण्डारी लोकसाहित्य में मुण्डाओं के धार्मिक पक्ष का विस्तृत प्रकाशन अब तक उपलब्ध नहीं है। परम्परानुसार इनके समाज में सरना धर्म पर आस्था है। सामूहिक उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य इनके जीवन का धर्म है।

अतः छोटानागपुर की धरती में अंग्रेजों के प्रवेश करने तक अर्थात्- ईसाई धर्म के पूर्व मुण्डा तथा अन्य आदिवासी सरना पूजा या सरना धर्मावलम्बी थे। इस भूखण्ड में अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ ही विदेशी ईसाई धर्म की भी स्थापना हुई।

तब से झारखण्ड की जनता मुख्य रूप से आदिवासियों में तथा धार्मिक दृष्टिकोण से संसार और ईसाई दो धार्मिक धाराओं में बंट गये। ये ईसाई धर्मावलम्बी रोमन, जर्मन, अमेरिकन एंग्लिकन, फ्रांसिसिकन ईसाई आदिवासी वर्गों में विभक्त हैं।

समय बहुत कुछ बदल देता है। किन्तु मुण्डाओं की अपनी सभ्यता-संस्कृति, अपना धर्म एवं मान-मर्यादा है। भारत एवं छोटानागपुर में आदिम निवासी आदि धर्म सरना को संसार मुण्डाओं ने ही बचाकर या सुरक्षित रखा है। ये अधिकांशतः अब तक वन-पर्वतों के गाँव में तथा शहरों में भी गरीब अशिक्षित, असाय और पिछड़े हुए हैं।

मुण्डा परम्परावादी है। फिर भी काल परिवर्तन और उजड़ते वनों के साथ ये किंचित् वर्तमान राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बदलाव की धारा में बहने लगे हैं। उसी प्रकार धार्मिक जीवन में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। मुण्डाओं का धर्म अर्थात् सरना धर्म की आस्था अन्य जनजातियों की भाँति 'प्रकृति-पूजा' में है। इसके अन्तर्गत ईश्वर या सृष्टिकर्त्ता,

देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों, पूर्वजों अथवा पुरखों एवं माता-पिता की पूजा व स्मरण है। इस पूजा में वे अपने आर्थिक क्रिया- कलापों की सफलता की कामना तथा जीवन में सुख-समृद्धि की आकांक्षा करते हैं। पहले भी लिखा गया है, इसी आधार मानव शास्त्रियों ने लिखा है कि मुण्डाओं का धार्मिक जीवन ईश्वरवाद, बोंगावाद या देवतावाद, आत्मावाद, पूर्वजवाद और टोटेमवाद पर आधारित है। इससे सम्बन्धित निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :- "भक्ति के भव्य दर्शन में तीन सिद्धांत बताये गये हैं (1) अमर आत्मा सर्वत्र व्याप्त है, (2). देह नाशवान है और (3) स्व-धर्म का त्याग कभी नहीं करना चाहिए।" [62]

"परमेश्वर की बिल्कुल पहली मूर्ति जो हमारे पास है, वह है स्वयं हमारी माँ। श्रुति कहती है - मातृदेवो भव! पैदा होते ही बच्चे को माँ के सिवा और कौन दिखाई देता है ? वत्सलता के रूप में वह परमेश्वर की मूर्ति ही वहाँ खड़ी है। उस माता की ही व्याप्ति को हम बढ़ा लें और वन्दे मातरम् कहकर राष्ट्रभाषा की ओर, फिर धरती माता पृथ्वी की पूजा करें। परन्तु प्रारम्भ में सबसे ऊँची परमेश्वर की प्रतिमा जो बच्चे के सामने आती है, वह है माता के रूप में।"[63] इससे सम्बन्धित गीतों में से एक जरगा गीत की प्रस्तुति यथेष्ट होगी :--

ओको रेअम लेलानचि बाबु	अर्थात्- हे पुत्र! क्या तुमने कहीं देखा है?
ओतेअते हम्बल अरंअः-2	(कि) धरती से भी भारी हो।
चिमए रेअम चिनानचि बाबु	हे पुत्र ! क्या तुमने कहीं पहचाना है?
सिरमा ते सलंगि गरंअः-2	(कि) आकाश से भी ऊँचा हो !
ओतेअते हम्बल दोगा नेअं	हे माँ ! धरती से भी भारी तो
एंगागेः हम्बल गरंअं-2	माता ही भारी है।
सिरमा ते सलंगि दोगा नपं	हे पिता! आकाश से ऊँचा तो
अपुगेः सलंगि गरंअं-2	पिता ही की ऊँचाई है।
ओको रेअम लेलानचि बाबु	हे पुत्र ! क्या तुमने कहीं देखा है?
जओ जोअरे दारु सुबा दो-2	पारम्परिक पूजा-स्थल को।
चिमए रेअम चिनानचि बाबु	हे पुत्र ! क्या तुमने कहीं पहचाना है?

जओ दोड़ोमे सिङ सुबा दो-2 पारम्परिक अर्पणास्थल को !

ओड़ः रे बोंगाकोचा नेअं हे माँ! घर का पूजा-स्थल ही
जओ जोवरे दारु सुबा दो-2 पारम्परिक पूजा-स्थल है।
सरना रे बोंगा-बुरु नपां हे पिता! सरना में पूजा-पाठ ही
जओ दोड़ोमे सिङ सुबा दो-2 [64]पारम्परिक अर्पण का मूल है।

मुण्डाओं के धर्म में प्रायः सभी पूजा में सर्वप्रथम खड़े होकर सर्वश्रेष्ठ देव तथा मुख्य देवताओं के नाम उच्चारित किए जाते हैं तथा पूजा में तीन सिन्दूर के लम्बे टीके लगाते हैं। सर्वप्रथम बीच का टीका, द्वितीयतः मध्य टीके के दाहिनी ओर तथा तृतीयतः बांयी ओर टीके लगाते हैं। इस सिन्दूर टीकाकरण के कई अभिप्राय हो सकते हैं जैसे - मध्य के टीके का मतलब कपाल का टीका, दाहिनी ओर के टीके का अर्थ बांयी कनपट्टी का टीका तथा बांई ओर के टीका का अभिप्राय दाहिने कनपट्टी के टीके से है। क्योंकि शादी-संस्कार और मृत्यु होने पर माटी-काठी संस्कर के पूर्व मुण्डा लोग मृतक को नहलाकर पहले कपाल में तब बायीं ओर की कनपट्टी में फिर दाहिने ओर की कनपट्टी में सिन्दूर के टीके देते है। अरवा चावल की तीन ढेरी (चुडुः), साखू-पत्तों के दोनों में दूध, हंड़िया, पानी तथा पत्तों में पसाद, भोजन इत्यादि का अर्पण दाँई से बांइ ओर रखते जाते हैं। यह क्रम पृथ्वी की गति के अनुसार है। सबसे नजदीक माता-पिता से श्रेष्ठतम देवों अथवा पूर्वजों की ओर अंत किया जाता है। ऐसे ही कई उदाहरण छोटानागपुर के सन्दर्भ में भी मिलते हैं। जैसे- मण्डा पर्व की शुरुआत यहाँ विशेष पर चैत से शुरू होकर आषाढ़ माह के रंथ मेला या जगन्नाथ मेला के साथ अंत होता है। मण्डा पर्व यहाँ के मुण्डा, उराँव सदान और अब तो अन्य सभी लोग मनाते हैं। जिसमें आग मे प्रवेश करने अथवा चलने का धार्मिक विधान है। वस्तुतः सोसोबेंगा कथा में वर्णित असुरों के स्वर्णिम बनने के लिए ईश्वर का ऐसा आदेश था। यहीं पर समस्त असुर सुवर्णमय बनने के लिए आग के भट्ठे में प्रवेश कर गये थे। सम्भवतः इसी की स्मृति में या प्रतीक रूप मे आज भी झारखण्डी मूल के लोग मण्डा-पर्व में दहकते हुए अंगारों के ढेर पर ऐसे चलते हैं जैसे वह फूलों की सेज हो। इस क्रिया को हिंदी में 'फूलखुन्दी' कहते हैं। आज भी यह मण्डा पर्व स्थान-स्थान पर बड़े हर्षोल्लास के साथ आस्था पूर्वक मनाया जाता है

जिसमें मुण्डा, उराँव, सादान आदि पूरी श्रद्धा-भक्ति के साथ सम्मिलित होते रहते हैं। मण्डा, करम, सरहुल आदि त्योहारों तथा व्रतों में इनकी एकता देखते ही बनती है।[65]

मुगल काल में मुगलों की मदद से नागवंशी राजाओं ने झारखण्ड के आदिवासियों के धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थलों को भव्य मंदिर और राजाओं के मिट्टी के घरों को आकर्षक महलों के रूप में परिवर्तित-निर्मित कराया था। जहाँ केवल आदिवासी ही पूजा-पाठ करते थे, वहाँ अब इन धार्मिक स्थलों में गैर-झारखण्डी लोगों की आस्था भी कायम होती जा रही है। वहीं आदिवासी अपनी तरह पूजा-अर्चना करते हैं तो गैर झारखण्डी लोग अपनी पद्धति से पूजा करने लगे हैं। इससे सम्बंधित उदाहरण पहले दिए जा चुके हैं। ऐसे उपासना स्थलों एवं निर्मितियों में कुछ इस प्रकार है - राँची का जगन्नाथपुर का मंदिर, ढोएसा का नवरत्नगढ़, रामरेखा धाम, दिउड़ी का मंदिर, टांगीनाथ मंदिर आदि।

जब झारखण्ड में अंग्रेज और ईसाई मिशनरी आये, तब उनकी शिक्षा और धार्मिक विश्वास ने यहाँ का कायाकल्प कर दिया। ईसाई धर्म का भव्य रूप तैयार कर यहाँ की आबादी को इन्होंने अपनी शिक्षा तथा धार्मिक भावना के माध्यम से उन्नतिशील बनाया। गैरईसाई धर्मावलम्बी आदिवासी अपनी ही पद्धति के अनुसार विकास करते रहे। परन्तु झारखण्ड के मूल धर्म सरना से सदा के लिए इन्होंने मुण्डाओं के कुछ समूहों के अलग कर दिया। वे तब तक अलग ही रहेंगे, जब तक की सरना धर्म की शरण में वे नहीं आ जाते। यह तय है जो मुण्डा ईसाई धर्म में धर्मान्तरित हुए, वे आज के विकासशील जीवन में बहुत आगे आ गए और ठेठ मुण्डा आज भी प्रायः अपने प्राचीन युग से बाहर नहीं निकल पाए हैं। आज ईसाई मुण्डाओं में मंत्री, सांसद, विधायक, डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, प्रशासनिक अधिकारी (भा0 प्र0 से0 तथा बि0 लो0 से0), पुलिस पदाधिकारी, व्यवसायी, ठेकेदार आदि बन गए हैं और बनते जा रहे हैं। संसार मुण्डा इनकी तुलना में, आरक्षण के बावजूद बहुत पिछड़ गए हैं।

संदर्भ स्रोत :

1. डॉ. जयदेव, आधुनिक भारत, पटना, 1994, पृष्ठ - 01
2. - वही
3. - वही, पृष्ठ - 02, 03
4. विश्वनाथ तिवारी, विश्व इतिहास प्रवेश, पटना, 1990, पृष्ठ - 114
5. डॉ. रामानन्द कुमार, विश्व इतिहास, पटना, 1994, पृष्ठ - 191
6. - वही, पृष्ठ - 192
7. विश्वनाथ तिवारी, विश्व इतिहास प्रवेश, पटना, 1990, पृष्ठ - 115
8. डॉ. पारसनाथ तिवारी, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लखनऊ, 1984, पृष्ठ - 10
9. - वही, पृष्ठ - 11
10. - वही
11. डॉ. बी. पी. केशरी, छोटानागपुर का इतिहास, कुछ सूत्र-कुछ सन्दर्भ, राँची, 1979, विषय सूची से
12. डॉ. जयदेव, आधुनिक भारत, पटना, 1994, पृष्ठ - 132
13. कुंजलसाय टुटी 'मीरु', हिसिर, राँची, 1967, पृष्ठ - 59
14. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू, पीटर शान्ति नवरंगी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राँची, 1980, पृष्ठ - 10
15. अशोक पागल, छोटानागपुर का इतिहास (अर्द्ध प्रकाशित), राँची, 1999, पृष्ठ 7
16. दुलायचन्द्र मुण्डा, हिसिर, राँची, 1967, पृष्ठ - 22, 23
17. डॉ. रामदयाल मुण्डा, हिसिर, राँची, 1967, पृष्ठ - 79
18. दुलायचन्द्र मुण्डा, हिसिर, राँची, 1967, पृष्ठ - 5, 6
19. डॉ. रामदयाल मुण्डा, एअ नवा कानिको, राँची, 1980, पृष्ठ - 46
20. - वही
21. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू का साक्षात्कार
22. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 327
23. - वही, पृष्ठ - 339
24. दुलायचन्द्र मुण्डा, सुड़ासंगेन, पटना, 1966, पृष्ठ - 99
25. डॉ. रामदयाल मुण्डा, एअ नवा कानिको, राँची, 1980, पृष्ठ - 07
26. मेनस ओड़ेया, मतुराः कानि, भाग-1, राँची, 1984, पृष्ठ - 11
27. डॉ. रामदयाल मुण्डा, मुण्डारी पाठ, राँची, 1980, पृष्ठ - 36
28. दुलायचन्द्र मुण्डा, सुड़ासंगेन, पटना, 1966, पृष्ठ - 09
29. मेनस ओड़ेया, मतुराः कानि, भाग-3, राँची, 1984, पृष्ठ - 308
30. दुलायचन्द्र मुण्डा, बम्बरू, राँची, 1960, पृष्ठ - 03
31. सिकरादास तिर्की, बा चण्डुःआन तोअउ, पटना, 1987, पृष्ठ - 24
32. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 201
33. पौलुस कुल्लू, एकेडमिक स्टाफ कॉलेज, राँची, 1997, पृष्ठ - 01

34. सिकरादास तिर्की, मेरी रचनाएँ-जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, 1984, पृष्ठ - 102 (अप्रकाशित)
35. राँची विश्वविद्यालय, राँची, सारजोम बा, 1976, पृष्ठ - 04
36. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 432
37. - वही, पृष्ठ - 337
38. - वही, पृष्ठ - 433
39. डॉ. रतीश श्रीवास्तव, समाजिक मानव विज्ञान, पटना, 1978, पृष्ठ - 21
40. डॉ. ब्रज बिहारी कुमार, भारतीय आदिवासी, 1999, पृष्ठ - 11
41. निकोदीम केरकेट्टा, कुदुम, राँची, 1995, पृष्ठ - 31
42. विशु लकड़ा, सरना दुरङ, राँची, 1988, पृष्ठ - 64, 65
43. मेनस ओड़ेया, मतुराः कानि, भाग-1, राँची, 1984, पृष्ठ - 23
44. निकोदीम केरकेट्टा, कुदुम, राँची, 1995, पृष्ठ - 48
45. मेनस ओड़ेया, मतुराः कानि, भाग-1, राँची, 1984, पृष्ठ - 05
46. राँची विश्वविद्यालय, ए-एस-एल (मुण्ड)-।। (अनिवार्य) ए-डब्ल्यू, 1989, पृष्ठ - 02
47. - वही
48. डॉ. श्रवणकुमार गोस्वामी, नागपुरी शिष्ट साहित्य, दिल्ली, 1972, पृष्ठ - 10
49. राजीव नयन प्रसाद, मध्यकालीन भारत, पटना, 1995, पृष्ठ - 98
50. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 427
51. डॉ. रामनन्दन कुमार, विश्व इतिहास, पटना, 1994, पृष्ठ - 01
52. दुलायचन्द्र मुण्डा, सुड़ासंगेन, पटना, 1966, पृष्ठ - 36
53. दुलायचन्द्र मुण्डा, बम्बरू, राँची, 1960, पृष्ठ - 07
54. सिकरादास तिर्की, बा चण्डुःआन तोअउ, पटना, 1987, पृष्ठ - 35
55. डॉ. भगीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, वाराणसी, 1980, पृष्ठ - 16
56. डॉ. रामदयाल मुण्डा, सेलेद, राँची, 1987
57. सिकरादास तिर्की, बा चण्डुःआन तोअउ, पटना, 1987, पृष्ठ - 33
58. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 436
59. - वही
60. विनोबा, गीता-प्रवचन, वाराणसी, 1951, पृष्ठ - 88
61. - वही, पृष्ठ - 137
62. सिकरादास तिर्की, गोअरिसकम, पांडुलिपि से
63. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू का साक्षात्कार

निष्कर्ष और मूल्यांकन

प्रागैतिहासिक काल और मुण्डारी लोक साहित्य

मुण्डारी लोक साहित्य का अध्ययन करने के बाद स्पष्ट हो जाता है कि मुण्डारी आग्नेय भाषा परिवार की प्रमुख भाषा है। आग्नेय का शाब्दिक अर्थ 'अग्नि के समान' या 'अग्नि से निकला हुआ' होता है। मुण्डारी भाषा या मुण्डारी लोकसाहित्य प्रकृति तथा मानव के उद्भव के साथ-साथ जन्मी भाषा है। "ऐतिहासिक सूत्रों से पता चलता है कि यह भारत की सबसे पुरानी भाषा है।"[1] जिसके विश्लेषण से हम पाते हैं कि इसका वृहत रूप लोकगीतों का है। इन लोकगीतों की शुरुआत प्राचीनतम है। यह मानव के जन्म का प्रतिफल है। मानव जब पैदा लिया तब मुण्डाओं ने अपनी भाषा में दो लिंग भेदों को देखा। उसे 'बाबु' और 'मइ' कहा। लड़का का लिंग 'बाबु' तथा लड़की का लिंग को 'मइ' की संज्ञा देकर चिह्नित किया गया।

आदमी जब शिशु अवस्था में रहता है, तब वह अबोध होता है। उसे

भूख लगती है परन्तु वह बोल नहीं पाता है, जोर से रो पड़ता है। माता समझ जाती है। उसे लेते हुए तरह-तरह की लोरियाँ गाकर शांत करती है। इससे सम्बन्धित एक लोरी देखी जा सकती है :-

'दिदिगि दिंहि दिंहि	अर्थात्- दिदगी दिहीं-दिहिं (मांदर की ताल)
कुलए दुमङ रुतन	खरगोश मांदर बजा रहा है।
'दिदिगि दिंहि दिंहि	दिदगी दिहीं-दिहिं (मांदर की ताल)
मरअः सुसुन तन [2]	मोर नाच रहा है।

शिशु जब सरक कर दीप से खेलने के क्रम में अपनी उंगली जला लेता है तब वह रो उठता है। माता उसे लोरियाँ गाकर या झाड़-फूँक का मंत्र कहकर जले स्थान या अंग पर अपना दूध लगा देती है। इसी प्रकार मुण्डारी लोकगीतों का जन्म सतत् मनुष्य की प्राकृतिक प्रक्रियाओं के संघर्ष से उत्पन्न जीवन की भाव-धाराएँ हैं। ऐसे ही अल्हड़ जवानों के मुख या 'अलं' से निकला एक जदुर गीत प्रस्तुत करना यहाँ युक्तियुक्त होगा :-

नङ नङ जुगु जुगु रे	अर्थात्- जन्म के समय से ही
सोसो जां रेबेदा कना	भेलवा का बीज चिपका हुआ है
बिर बंकी दोन्दो जन रे	वन-बंकी जब खड़ा हो जाता है।
मुलि तेगे गोजा बोलोवा	तब सीधा घुसता है।

इस प्रकार के कितने ही मौखिक लोकगीत थे और हैं जिनमें मानवाकृति एवं जीवन-दर्शन का चित्रण मिलता है। इसीलिए मुण्डारी भाषा में एक कहावत है, *"सेनगे सुसुन, कजिगे दुरङ तीगेथबिड़ी दुमांग सड़ी।"* अर्थात्- छोटानागपुर के रोम-रोम में संगीत है। यहाँ चलना ही नृत्य है, बोलना ही गीत है। यह न केवल आदिवासियों के बीच लोकप्रिय रही है। बल्कि सदान भी गीतों में उतने ही लवलीन रहे हैं।" [3]

आदमी जब चलता फिरता है तो स्वाभविक है कि उसके शारीर के अंग हिलते डुलते हैं। इसे देखकर युवक गा उठते हैं। इस प्रसंग का एक जदुर लोकगीत प्रस्तुत करना उचित होगा :-

चेतनटोला रेदो टुइला सुकु	अर्थात्-	ऊपर टोली का कद्दू टुहिलाकार
बेगर होयोतेगे एकेला तना		बिना हवा का हिल रहा है।
लतरटोला रेदो केन्देरा बनम		नीचे टोली का केन्दरा या बनम
बेगर बनम तेगे तयुर तना		बिना बजाए लहर रहा है।

हेयातिङ मोनिञ रे चकातिङ सनञ मुझे सोचने को विवश कर रहा है
बेबर होयोतेगे एकेला तना बिना हवा के हिल रहा है।
हेयातिङ मोनिञ रे चकातिङ सनञ मुझे सोचने को विवश कर रहा है
बेगर बनमतेगे तयुर तना बिना बजाए बज रहा है।

ऐसे ही लोकगीतों के आधार पर कितने गीत बनते मिटते रहे हैं। परन्तु, प्रागैतिहासिक युग में भी मुण्डा परिवार में अपने माता-पिता, भाई-बहनों के समीप सब प्रकार के हास्य-व्यंग्य गीत एवं बातें नहीं चलती थी। लेकिन मुण्डा पर्व तथा अन्य जतरा गीत, होजोर गीतों में भाई-बहन, माता-पिता, बूढ़ा-बूढ़ी आदि सभी की मौजूदगी में लिंग से भरपूर चिटिद गीतों को गाकर जागरण करने की परम्परा थी। ऐसे ही एक करम राग का लोकगीत देखा जा सकता है :-

एंगामिंड़ीः डुकी तना अर्थात्- भेंड़ी पेशाब कर रही है
संडीमिंड़ीः जीं तना भेंड़ा उसे सूंघ रहा है
लण्डेरे सइते जो भी हो, देखो पर
एंगामिन्डी कुलाएः लोम्बोर किःरे भेंड़ी को बाघ ने झपट लिया।

दोलातिबु लेलेलि चलो, हम देख लें
मरेतिबु चिनालि चलो, हम पहचान कर लें
लण्डेरे सइते जैसा भी हो, देखो पर
एंगामिन्डी कुलाएः लोम्बोर किःरे भेंड़ी को बाघ ने झपट लिया।

अले दोले लेलेलि हम लोगों ने देख लिया
अले दोले चिनालि हम लोगों ने पहचान कर लिया
लण्डेरे सइते जो भी हुआ, देखो पर
एंगामिन्डी कुलाएः लोम्बोर किःरे भेंड़ी को बाघ ने झपट लिया।

अतः प्रागैतिहासिक मुण्डारी लोकगीतों में मानव तथा प्रकृति के यथार्थ घटनाओं, दर्शनों, क्रिया-कलापों, जीवन की झाँकियों आदि का चित्रण प्रधान हुआ करता था। उसी तरह कहानियों में भी प्रकृति और मानव के जीवन वृतांत सामंजस्य मिलता है। प्रत्येक गाँव में सरना, अखड़ा और सासङ हैं। इसके अन्तर्गत गाँव में दिविगुड़ी, बुरू, इकिर, देसाउली, मांणाबुरू, सीमन-

चतुर इत्यादि धार्मिक स्थलों के नाम हैं। इसके अतिरिक्त गाँवों की चौहद्दी में विभिन्न जानवरों, जीव-जन्तुओं एवं भूत-प्रेतों के नाम से सम्बन्धित स्मारक-स्थल मौजूद हैं। उदाहरण के लिए - गाँव भण्डरा में कुलाटुटु (बाघ टिकरा), बुड़ीलता (भालू का गुफा), रूण्डालोर (जंगली बिलारगढ़ा), सुकुरीगढ़ा (सुअरगढ़ा), बिंगपुटाः (साँप का बिल) एवं बिंगइकिर (साँप जलाशय), तयनइकिर (मगर जलाशय), चण्डीलोर या चण्डीपिड़ी (चण्डी टाँड़) आदि है। अब इन स्थलों में जंगल और जानवरों एवं जीव-जन्तुओं की उपस्थिति नगन्य है। परन्तु उपर्युक्त जगहों के नाम करम पर्व के जावा जगाने की लोकगाथा एवं उस गाँव की पूजा मंत्रों के साथ उच्चारित होते हैं। बुझौवलों के आदान-प्रदान के समय भी इन स्थानों के नाम व्यवहार में लाये जाते हैं। अतः मुण्डाओं का इतिहास उनके लोक साहित्य, उनकी संस्कृति एवं सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था में है।

मूल्यांकन

उपर्युक्त दो गीतों में श्लेष अलंकार तथा तीसरे गीत में स्वाभाविक अलंकार का अच्छा एवं सटीक उदाहरण देखने को मिलता है। प्रागैतिहासिक मुण्डारी लोकगीतों में शिष्ट गीत ही नहीं, अन्य गीत भी हैं। सभी गीत काव्यांगों या साहित्यिक गुणों से परिपूर्ण हैं। मुण्डारी लोकगीतों में भक्ति की नौ विधाएँ भी व्याप्त हैं। ये नौ विधाएँ हैं - "श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पद सेवा, अर्चना, वन्दना, दास्य भाव, साख्य भाव और आत्म-निवेदन।" [4]

मुण्डारी लोकगीतों में भक्ति के इन नौ भेदों के अधिकांश रूप हम एक ही गीत में पाते हैं। ऐसे अनेकों लोकगीत, विभिन्न रागों, विभिन्न मौसमों एवं पर्व-त्योहारों के हैं जिनमें भक्ति भावना व्याप्त है। इससे सम्बन्धित गीत पहले दिऐ गये हैं, फिर भी उदाहरण स्वरूप एक जदुर लोकगीत का अवलोकन करना समीचीन होगा :-

एला रे जुड़िरेन मिरु किन अर्थात्-	हे (प्रथम) पंक्ति के ईश्वर
एला रे हड़ागुने बिन	तुम दोनों उतर आओ
एला रे जोता रेन कारेकिन	हे पंक्ति के ईश्वर या सखा
एला रे नोसोरेन बिन	तुम दोनों नीचे आओ

एला रे निलेमा सुतामेते	आओ, नीले फूल के सूत से
एला रे हड़ागुने बिन	तुम दोनों उतर आओ
एला रे बदिबा बयारेते	आओ, बदिफूल की रस्सी से
एला रे नोसोरेने बिन	तुम दोनों नीचे आओ
एला रे निलेमा सुतामेदो	परन्तु, नीले फूल के सूत तो
एला रे सिदो जन	सुनो, टूट गया है
एला रे बदिबा बयरेदो	परन्तु बदिफूल की रस्सी तो
एला रे रोचोदे जन	सुनो, कमजोर हो गई है
एला रे टोड़ोंम टोड़ोमेते	आओ, उसे जोड़ते-जोड़ते
एला रे हड़गुने बिन	तुम दोनों उतर आओ
एला रे कुताम कुतामेते	आओ, उसे बांधते-बांधते
एला रे नोसोरेन बिन	तुम दोनों नीचे आओ
एला रे बोंगा कोचा रे	आओ इस पूजा-स्थल में
एला रे हड़ागुने बिन	तुम दोनों उतर आओ
एला रे ने सुसुन अकड़ा रे	आओ इस नृत्य अखाड़े में
एला रे नोसोरेने बिन	तुम दोनों नीचे आओ।

मुण्डारी भाषा क्षेत्र में आधुनिक शिक्षा का या पढ़ने-लिखने का प्रचार-प्रसार अन्य भारतीय समाजों की तुलना में बाद में आया। किन्तु, इनके लोक साहित्य में काव्य प्रयोजन, काव्य के तत्त्व आदि गुण स्वतः विभूषित हैं। अलंकार, रस और छन्द की जितनी अच्छी योजना मुण्डारी लोकगीतों में हुई है, वह अद्धितीय है। यह स्पष्ट है कि गीत-कविता की रचना करने में काव्यगंगा स्वतः प्रवाहित हो गई है, जिससे समस्त मुण्डा समाज उसकी पवित्रता और आनन्द में सराबोर रहा है। कविता अथवा गीत तो हृदय की धड़कन है। जिस रूप में ढलती है, उसी रूप मे बन जाती है। रचना करते समय रचनाकार को उसका आभास मात्र मिलता है। लोककवि की रचनाओं में काव्य के सारे गुण-तत्त्व स्वतः अपने आप गुंथते जाते हैं। काव्य शास्त्र के नियम तो इन्हीं लोकगीतों से ही निकले हैं। कहने की कला, वाणी की कुशलता अर्थात्- अलंकार तो लोकगीतों में स्वतः स्थान पा गए हैं। वे छन्द

रागों में बंधे हुए हैं।

"कविता के जन्म काल से ही छन्द उसका एक अपरिहार्य उपकरण है। छन्द का कार्य कविता की रमणीयता और सत्ता का संवर्द्धित करना ही नहीं, उसकी सहज सम्प्रेषणीयता को बढ़ाना भी है।" [5]

मुण्डारी लोकसाहित्य में गीतों की संख्या अधिक है। क्योंकि "किसी भी भाषा-साहित्य में लेखन का श्रीगणेश काव्य- रचनाओं से होता है।" [6]

"हिन्दी साहित्य के एक हजार वर्षों के इतिहास में लगभग नौ सौ वर्षों तक केवल कविता ही लिखी गई।" [7]

मुण्डारी भाषा-साहित्य के साथ भी ऐसी ही बात है। यहाँ काव्य के रूप में गीत ही लिखने की परिपाटी अभी तक बनी हुई है। अतः मुण्डारी लोकसाहित्य सागर की तरह अथाह है। जिसके मन्थन एवं मनन से स्पष्ट होगा कि निर्गुण-सगुण भक्ति साहित्य, रामचरितमानस तथा प्रेम सागर जैसे हिन्दी के महान ग्रंथों की भाँति मुण्डारी गीतों की रचना पहाड़ी झरने की तरह प्रस्फुटित हुई है।

प्राचीन काल और मुण्डारी लोक साहित्य

प्राचीन कालीन मुण्डारी लोक साहित्य के विवेचन के पश्चात यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके लोकगीतों, कथाओं, एवं बुझौवलों में सांस्कृतिक और साहित्यिक पक्ष अत्यन्त समृद्ध रहे हैं। भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से जो भिन्नता जदुर, चिटिद, करम और जरगा इत्यादि रागों या छन्दों में दिखाई पड़ती है, उसका मूल कारण है प्रकृति और मानव का सम्बन्ध या प्रेम। यह प्रेम ईश्वर-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, देवी-देवता प्रेम, पूर्वज-प्रेम, पति-पत्नी का प्रेम, प्रेमी-प्रेमिका का प्रेम, भाई-भाई का प्रेम, मानव-मानव का प्रेम, भाई-बहन का प्रेम, देवर-भाभी का प्रेम और देश-प्रेम। इसमें कोई संदेह नहीं कि मुण्डाओं का ऐतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक सभी पक्षों का वर्णन इस काल के लोकगीतों में सुदृढ़ व सुन्दर रूप से चित्रण हुआ है। इस काल के लोकगीतों में स्वाभाविकता, सरलता, मधुरता, लघुता एवं स्वांतः सुखाय की प्रधानता है। जिसमें विभिन्न विषयों का परिचात्मक, वर्णानात्मक, वार्त्तात्मक एवं प्रश्नोत्तरात्मक शैली मिलती है। पहली

कड़ी या मूल कड़ी को जान लेने के बाद अगली कड़ी सुगमता से जानी जा सकती है। एक समान रूप से अथवा गीत-काव्य की रूढ़ि पर आधारित प्रत्येक गीत के विषयानुसार ये लोकगीत प्रवाहित होते है। उदाहरण के लिए किसी भी गीत की अगली कड़ी देखी जा सकती है :-

दोलातिबु लेल लिआ	चलो हम उसे देख लें
मरेतिबु चिना लिया	चलो हम उसे पहचान लें,
	(इसी की फिर अगली कड़ी)
अलो दोले लेले लिःअ	हमलोगों ने देख लिया है।
अले दोले चिना लिःअ	हमलोगों ने पहचान कर लिया है।

तथा *"हेयातिं मोनिञरे चकतिं सनाञ"* अर्थात्- मुझे चिंता हो रही है, फिक्र हो रही है - जैसे सिलसिलेवार यह अंतिम कड़ी के रूप में आता है। ऐसे ही गीत-काव्य की रूढ़ियाँ लोकगीतों के बाद लोककथाओं की है। प्रायः कहानियों की शुरुआत एक था, राजा और एक थी रानी, एक गाँव में दो बूढ़े-बुढ़ियाँ थी। एक राजा के चार बेटे थे, सात भाई और एक बहन, लीटा युवक, बाघ और सियार आदि शीर्षकों से इसकी पुष्टि होती है।

"स्वांतः सुखाय रचना ही वास्तविक साहित्य है और जो कला जीवन के लिए उपयोगी है, वही पूर्ण है।" [8]

अतः प्राचीन काल के मुण्डारी लोकगीतों या साहित्य का मूल्यांकन करने के पूर्व कुछ लोकगीतों को दर्शाना आवश्यक होगा :-

*हेला लिपि डोएंसा को होरा रे*अर्थात्	-हे स्वामी, ढोंएसा की राह में,
हेला लिपि कोंमडोम जोजो	हे स्वामी, अर्द्धगोलाकार इमली है।
हेला लिपि कुकुरा को डरे रे	हे स्वामी, खुखरा की राह में
हेला लिपि डी बकरकुड़िद	हे स्वामी, गाँव का बैर (फल) है।
हेला लिपि ओकोए गे रोवा लेदा	हे स्वामी, किसने रोपा था?
हेला लिपि कोंमडोम जोजो	हे स्वामी, अर्द्धगोलाकार इमली?
हेला लिपि ओकोए गे पोवः लेदा	हे स्वामी, किसने लगाया था?
हेला लिपि डीबकरकुड़िद	हे स्वामी, गाँव का बैर ?
हेला लिपि दसिकोड़ाए रोवा लेदा	हे देवि, धांगर ने रोपा था

हेला लिपि कोंमडोम जोजो	हे देवि, अर्द्धगोलाकार इमली
हेला लिपि गुतिकुड़ि पोव लेदा	हे देवि, इसे धंगरिन लगाई थी
हेला लिपि डीबकरकुड़िद [9]	हे देवि, गाँव का बैर।

दूसरा लोकगीत :-

अम सिरि भोगोमन अर्थात्-	हे भगवान
अमः तेञ उम्बुलाकना	मैं तुम से छाया हुआ हूँ।
अमगे हो एंगा - अपु	तुम ही माता-पिता हो
अमः तेञ चोतोरा कना	मैं तुम्हारी छत्रछाया में हूँ।
ने ओते दिसुम दो	इस देश-धरती को
अमगे हो बइतदा	तुम ने ही बनाया है
ने सिरमा रिम्बिल दो	इस आकाश की
अमगे हो बड़ुइ तदा	तुमने ही उत्पत्ति की है।
ने ओते दिसुम दो	इस धरती (देश) को
पटि लेकम बिला कदा	तुमने चटाई के समान बिछाया है।
ने सिरमा रिम्बिल दो	इस आकाश-नक्षत्र को
डुबा लेकम हरूबा कदा [10]	तुमने कटोरे के समान ढंका है।

ऐसे ही व्याप्त गीत संस्कृति के श्लोकों, जैसे -

1. भद्रं नो अपि वातसय मनो दक्षयुत क्रतुम --- 10/25/1 -- ऋग्वेद
   .... हे परमेश्वर आप सबको कल्याण मन कल्याणकारक बल और कल्याणकारक कर्म प्रदान करें।
2. विश्रं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्नता तुरम। -- -- 16/48 -- -- यजुर्वेद।
   ..... इस ग्राम में सभी प्राणी रोग रहित और हृष्ट-पुष्ट हों।
3. स्योना पृथिवि नः। -- -- 35/21 -- -- यजुर्वेद।
   ..... हे पृथ्वी ! तुम हमारे लिए सुख देने वाली हो।
4. विश्वे देवा मम श्रृण्वन्तु यज्ञम् । -- -- 610 -- -- सामवेद
   .... सम्पूर्ण देवगण मेरे मान करने योग्य पूजन को स्वीकार करें।

5. शिवा नः सन्तु वार्षिमी। -- -- 11 (1/6/41) -- -- अथर्ववेद

.... वर्षा द्वारा जलन हमारे लिए कल्याणकारी हो।

6. मा नो द्विक्षत कश्चन ।। -- -- (12/1/24) -- -- अथर्ववेद

..... हमसे कोई भी कभी शत्रुता करनेवाला न हो।

मुण्डारी मंत्रों/गीतों में व्यक्त भावनाएँ वेदों के मंत्रों की भावनाएँ समतुल्य प्रतीत होती हैं। सरहुल के एक मंत्र से इनकी तुलना कर देखा जा सकता है कि इनमें कितनी समानता है :-

बा संगेन मंइं सुड़ा संगेन अर्थात्- हे बेटी ! सरहुल के फूल और कोपलें
ओकोएको रचा रे बा संगेन किसके आँगन में फूल और कोंमलें
बा संगेन मंइं सुड़ा संगेन हे बेटी ! फूल और कोंपलें
चिमए को बाअे रे सुड़ा संगेन किसकी बारी में कोपलें?

लोकगीतों के अलावा लोककथाओं में भी कथा के तीन भेद और स्वरूप मौजूद हैं - "धर्मगाथा (मिथ), अवदान (लीजेण्ड) और कथा (स्टोरी)" ।[11]

मुण्डारी लोककथाएँ शिक्षात्मक, उपदेशात्मक, मनोरंजनात्मक, उत्साहवर्द्धक आदि से सम्बन्धित कौतुहल उत्पन्न करने वाली है, जिसमें कहानी के अंगों का भी अभाव नहीं है। अतः मुण्डारी लोककथाएँ घटना प्रधान, चरित्र प्रधान, आदर्श व नैतिकता प्रधान एवं मैत्री प्रधान है।

आदिवासियों में मानव के प्रति मैत्री का एक साधन है 'सहिया' जोड़ना। यह सहिया प्रायः अन्तरजातीय दो समुदाय का पवित्र बन्धन होता है। दो भिन्न जातीय परिवार को एक पारिवारिक सूत्र में यह बाँधता है। इससे सम्बन्धित लोककथाएँ भरी पड़ी हैं। जैसे - *"एते सकिङ सोनारः तड़ा दो कोरेम नम लः?"* [12] अर्थात्- हे सहिया, आप को सोने की थाली कहाँ से मिली थी? इसी प्रकार नागपुरी में भी पंक्तियाँ देखने को मिलती है- "सहिया बइन करेक मदइत, एहे हेके हामर हीत" । [13]

लोकगीतों, लोककथाओं के अतिरिक्त मुण्डारी बुझौवलों में भी काव्य के तत्त्व झलकते हैं। इसमें से एक बुझौवल देखा जा सकता है- *"चेतन रे झन-झन, बितर रे भंग-भंग।"* अर्थात्- ऊपर से झन-झन, भीतर से खोखला या भंग-भंग। इसका समाधान है - मांदर।

अतः प्राचीन काल के मुण्डारी लोकसाहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि मुण्डाओं का लोकसाहित्य अत्यन्त समृद्ध है। उपर्युक्त लोकगीतों

में भारतीय आचार्यों की दृष्टि से काव्य के तत्त्व "शब्दार्थ, रीति, गुण, रस, अलंकार और छंद" [14] मिलते हैं। इसके अतिरिक्त शब्दलंकार, अर्थालंकार और उभयालंकर के तीनों भेद उपभेद एवं शब्दालंकार के अन्तर्गत "अनुप्रास के पाँचो भेद - श्रुत्यानुप्रास, छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, लाटानुप्रास और अन्त्यानुप्रास" [15] स्पष्ट मिलते हैं।

मध्य काल और मुण्डारी लोकसाहित्य

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के काल विभाजन की तरह मुण्डारी लोकसाहित्य को पूर्व मध्य काल (भक्ति काल) और उत्तर मध्य काल (रीतिकाल) - दो भागों में वर्गीकृत कर देखा जा सकता है।

छोटानागपुर में मध्यकाल का आरंभ नागवंशी राजाओं के उदय के साथ ही साथ होता है। उस समय राजाओं का धर्म अथवा राजनीति जनता की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक सभी क्षेत्र में प्रत्यक्ष सेवा करना था। चाहे वह मुण्डा राजा हो या नागवंशी ही क्यों न हो। इस काल में राजा-प्रजा, आदिवासी और सदान, अमीर-गरीब सभी एक साथ एक नृत्य अखाड़े में नाच गान करते थे। यह नृत्य अखाड़ा मनोरंजन का ही नहीं ईश्वर भक्ति का भजन-कीर्तन स्थल भी रहा है। अतः इस काल में मुण्डारी लोकसाहित्य एवं संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास हुआ था। भक्ति गीतों का सृजन होना भी ऐसे समय स्वाभाविक था। मुण्डारी लोकसाहित्य में "एला रे जुड़ि रेन मीरू किन (हे जोड़ी के मीरू), सरजोम बा रे कुइलि (साखू फूल में कोयल), मरङ बुरू बुरू केअते (बड़े पहाड़ के मेला के बाद से), बरु रे बुरु रे मनिदो (पहाड़ के मेले में सरसों), लिपिगो ढोंएसा होरा रे (हे लिपी ढोंएसा की राह में) और बुरुवातेञ लेल मेरे गतिञ (हे प्रिय! पहाड़ पर तेरे इंतजार में आदि जदुर लोक भक्ति गीत तथा जरगा गीतों में- ओते रेमा लिपि सिरमा रेमा (हे लिपी धरती में हो या आकाश में), एंगाञकिन अपुञकिन (हे माता-पिता), एंगञ-अपुञ तइकेन रे (जब मेरे माता-पिता थे), लखी अर लछमि किन (लखी और लक्ष्मी), चिटिद गीतों में- तिसिं दोको छो कोव (जागरण है) आदि विभिन्न रागों तथा पर्व-त्योहोरों के अवसर पर गाये जाने

वाले मुण्डारी भक्ति लोक गीतों की वृद्धि काल में हुई।

इसके साथ-साथ नागपुरी या सदानी भाषा में विशेषकर करम गीतो में बहुत से भक्ति एवं प्रेम-गीत हैं। जिसमें से एक करम लोकगीत प्रस्तुत करना यहाँ अपेक्षित होगा :-

हाय रे कोरोमो विधि
हाय रे कोरोमो विधि
भाई बहिन कोरोमे उपास रे
हाय रे कोरोमो विधि

कचा बाँसक डलिया
सारु पतइ डबना
सेयो डाला फूलालोरे जाएगो
हाय रे कोरोमो विधि

नाना धानक चिउरा
सोरोग गइया केरा दुधवा
सेव दुधा ढरलोरे जाएगो
हाय रे कोरोमो विधि

इस प्रकार पूर्व मध्य काल में सदानों द्वारा भी मुण्डारी तथा सदानी में अखाड़े के लिए अच्छे-अच्छे भक्ति, वंदना और प्रेम गीत आदि गाये जाते रहे हैं। कुछ सादरी भाषा के जानकार आदिवासियों ने भी सादरी में रचनाएँ की हैं। इसके सम्बंध में डॉ0 श्रवणकुमार गोस्वामी ने नागपुरी भाषा के तीन वर्गो का उल्लेख किया है - 1. आदर्श नागपुरी 2. ग्रामीण नागपुरी और 3. आदिवासी नागपुरी - ''जब कोई आदिवासी जाति अपनी भाषा छोड़कर नागपुरी को अपना लेती है, तो उस नागपुरी पर उस जाति की भाषा की विशेष छाप पड़ती है, फलतः वह नागपुरी एक विशेष प्रकार की नागपुरी बन जाती है। ऐसी नागपुरी सादरी कही जाती है ... इस प्रकार की नागपुरी के लिए कोई विशेष नाम प्रचलित नहीं, अतः इन्हें आदिवासी नागपुरी के नाम से अभिहित किया जा सकता है।'' [16]

सादरी भाषा के मुण्डा लोकगीतों की संख्या के आधार पर चौथाई

से ऊपर करम, गेना, सोहराई और जदुर गीत हैं जो अब तब मौखिक हैं और अब सिर्फ मुण्डाओं द्वारा ही गाये जाते हैं। इसी तरह उराँवों के मध्य प्रचलित लोकगीतों मे आधे से अधिक लोकगीत सादरी (नागपुरी) में हैं। डब्ल्यू0 जी0 आर्चर का लीला खोरआ ख़ेख़ेल में संग्रहित गीत इसके प्रमाण हैं। इस प्रकार कितने लोकगीत स्वतः लोप भी होते जा रहे हैं। बहुत से मुण्डा, उराँव तथा खड़िया अपनी जातीय भाषा भूल गए हैं और उसके स्थान पर नागपुरी, पंचपरगनिया, कुड़मालि या खोरठा ही मातृभाषा के रूप में बोलते हैं। प्रायः ऐसी स्थिति बुण्डू- तमाड़ क्षेत्र के सोनाहातु (सोनागाँव), बबाहिरिः धान गिरा हुआ (भाभरी), एदेलहातु (सेमलगाँव), ओड़ेदारु, होड़ेंसेरेङ, जिलिंगसेरेङ (लम्बा चट्टान) आदि गाँवों के नाम विल्कुल ठेठ मुण्डारी है परन्तु वहाँ के मुण्डाओं की मातृभाषा पंचपरगनिया और कुड़मालि हो गई है। ऐसे ही मांडर, हतमा, बुड़मु, काँके आदि क्षेत्र के मुण्डाओं की भाषा नागपुरी हो गई है। उपर्युक्त लोकगीतों का मुख्य क्षेत्र सिरिपरगना और सोनपुर परगना के खूँटी के चारों ओर है। इसी तरह बुण्डु-तमाड़ इलाकों के कुड़मालि और पंचपरगनिया भाषा के गीतकारों ने भी मुण्डारी अखाड़ों के लिए करम गीत लिखा है। इस क्षेत्र में केवल करम गीत मिलते हैं, जो पंचपरगनिया एवं कुड़मालि लय और ताल से किंचित भिन्न हैं।

"राँची जिले का पंचपरगना तमाड़, बुण्डु, राहे, सोनाहातु, सिल्ली इलाकों का समतल और उपजाऊ इलाका है। यहाँ झारखण्ड प्रदेश और बंगाल का सांस्कृतिक प्रभाव मिलता है। नागपुरी भाषा में बंगला के प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इस इलाके की पृष्ठभूमि में आदिवासी भाषाएँ संताली, मुण्डारी की सांस्कृतिक आधार है। किन्तु बाह्य प्रभावों से इनका ऊपरी रूप किंचित भिन्न हो गया। यहाँ हमें आदिवासी और अभिजात्य साहित्य के मिश्रण का एक सुन्दर उदाहरण मिलता है।" [17]

इस भाँति मुण्डारी लोकसाहित्य में रीति का उदय मुण्डारी लोकगीतों तथा संस्कृति के जन्म के साथ ही साथ हुआ होगा। पूर्व मध्यकाल तथा उत्तर मध्यकाल में यहाँ कई जातियों की अपनी-अपनी भाषा, संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था होते हुए भी धार्मिक और सांस्कृतिक एकता का केंद्र 'अखाड़ा' रहा है। छोटानागपुर के आदिवासी और सदान प्रायः रसिक हुआ करते है। उत्तर मध्यकाल में मुण्डारी क्षेत्र में नागवंशी शासकों के समय मुगल लोग और अन्य

समुदाय के लोग प्रशासन के सहयोगी तथा प्रजा के रूप में आये। इनका अलग-अलग नृत्य अखाड़ा या सांस्कृतिक केन्द्र नहीं होता था। वे मुण्डाओं के अखाड़ों में ही स्वतंत्र रूप से नाच-गान करते रहे हैं। इन रसिक नागवंशी सदानों ने मुण्डाओं की सामाजिक एवं सास्कृतिक रीति अथवा व्यवस्था को न छेड़कर मुण्डारी रीति या श्रृंगारिक भाव धारा अथवा राग के अनुसार सादरी भाषा में गीतों की रचना की तथा इन्होंने अपनी कलात्मकता का परिचय दिया। उदाहरण के लिए एक करम लोकगीत प्रस्तुत है :-

छोटे मोटे छोकोरा
एंडी सोहोर धोतिया
कन्दे गेला
मोर झिंगा रे फूल रसिका
कन्दे गेला
हाथे लेलैं टुहिला
कांधे लेलैं गमेछा
कंदे गेला
मोर झिंगा रे रसिका
कंदे गेला

पहले लिखा जा चुका है कि इस युग में छोटानागपुर के मूल निवासी अपनी-अपनी परिपाटी के अनुसार ही रहते और खाते- पीते थे। इस संबंध में अशोक पागल ने अपने अर्द्धप्रकाशित छोटानागपुर का इतिहास में लिखा है कि "नागवंशी राजाओं ने मुण्डाओं की सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था में किसी प्रकार की छेड़छाड़ नहीं की। तभी तो शताब्दियों बाद आज भी उनकी सांस्कृतिक धरोहर अक्षुण्ण है। हाँ, इनका आर्थिक जीवन कष्टसाध्य जरूर हो गया है।" [18]

इतना ही नहीं भारतीय सामजिक, राजनीतिक व्यवस्था एवं सगुण भक्ति राम-कृष्ण से संबंधित नागपुरी भाषा के प्रति मुण्डारी राग में बहुत से लोक गीत हैं। एक गीत इस प्रकार है :-

घुघुरा रे घुघुरा
नाना सारी घुघुरा
बोले रे घुघुरा

घुघुरा तो बजे झमेझम।
केउजे पिंध हे
नाना सारी घुघुरा
बोले रे घुघुरा
घुघुरा तो बजे झमेझम।
राजा बेटा पिंध हे
नाना सारी घुघुरा
बोले रे घुघुरा
घुघुरा तो बजे झमेझम।

बैसा ही एक कुड़मालि से प्रभावित करम गीत इस प्रकार है :-

जइते जमुना जोले
श्री राधा सोखि हे
कोदोम तोले
कलिआ धड़ाइ गो
एका कइसे
जा जमुना।

इस भाँति मध्यकालीन मुण्डारी लोकगीत एवं कथाओं की परिपाटी पूर्व की तरह प्रचलित थी। अतः नागवंशियों तथा मुगलों ने मुण्डाओं की सांस्कृतिक परिपाटी को यथावत बरकरार रखा। मात्र भाषा का अन्तर जरूर परिलक्षित होता है परन्तु नागपुरी सदान समुदाय विशेष की भाषा नहीं रह कर पूरे झारखण्ड की भाषा के रूप में प्रचलित हो रही है।

आधुनिक काल और मुण्डारी लोकसाहित्य

आधुनिक काल में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना तक मुण्डारी लोकसाहित्य पूर्णतः मुण्डाओं के कण्ठों में संग्रहित था। मुण्डा समाज के प्रत्येक बड़े युवक-युवतियाँ सैकड़ों लोकगीत, लोककथा एवं बुझौवल के जानकार होते रहे हैं। जिसका आदान-प्रदान एवं प्रचार-प्रसार युवागृह, अखाड़ा, मेला-जतरा आदि में होता आया है। आर्थिक क्रियाकलाप, सामाजिक-सांस्कृतिक रीति-रिवाज के अवसर पर जैसे- शादी-विवाह एवं

पर्व-त्योहार में लोकगीत गाकर आनन्द मनाया जाता रहा है। लोकगाथाएँ जैसे- सोसोबोंगा कथा और मंत्रों का उपयोग पूजा-अनुष्ठान के समय होता है। लोककथाएँ, कहानियों एवं बुझौवलों का व्यवहार मौखिक रूप से युवागृह में शाम को युवकों तथा युवतियों के द्वारा मनोंरंजन के लिए कह-सुनकर किया जाता रहा है।

इस काल में मुण्डारी लोक साहित्य की भावधारा को अंग्रेज विद्वानों तथा ईसाई धर्म प्रचारकों ने संग्रहित किया। इसी समय से मुण्डारी साहित्य का लोक साहित्य एवं शिष्ट साहित्य दो रूप हुए। ईसाई धर्म की बातों को मुण्डारी भाषा में लिखा जाने लगा था। क्योंकि ईसाई धर्म प्रचारकों को मुण्डाओं के बीच प्रभु ईसा के संदेशों को उनकी भाषा मुण्डारी में प्रस्तुत करना था। इसकी गहरे अध्ययन के लिए व्याकरण की आवश्यकता पड़ी। इसी क्रम में हॉफमैन ने 'इनसाइक्लोपीडिया मुण्डारिका' नामक ग्रंथ लिखा।

वस्तुतः आधुनिक काल में मुण्डारी भाषा साहित्य में दो धारा की रचनाएं होने लगी। एक प्रकृति भक्ति भाव धारा की तथा दूसरी ईसाई भक्ति भावधारा की रचनाएं लिखी जाने लगी। ईसाई भक्ति भावधारा के मुण्डारी रचनाकारों में दाउद दयाल सिंह होरो और निर्मल सोय आदि हैं।

इसी भांति अंग्रेजी शासनकाल में उन्होंने मुण्डारी लोक साहित्य एवं झारखंड की अन्य आदिवासी भाषाओं को लिखित रूप देने का महत्वपूर्ण काम किया। परन्तु यह उनके म्युजियम तक ही सीमित रह गया था। जब देश को आजादी मिली तब इसका दायित्व भारत सरकार पर आया। सन् 1952 में भारतीय संविधान में जनजातियों तथा उनकी भाषाओं के विकास की सूची शामिल की गई। तब से अब तक पुनः बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् या राजभाषा विभाग, बिहार सरकार के द्वारा मुण्डारी लोक साहित्य एवं शिष्ट साहित्य संकलन और प्रकाशन में तेजी आई। इस क्रम में जगदीश त्रिगुणायत ने 'मुण्डा लोक कथाएं', बांसरी बज रही और सोसोबोंगा नामक पुस्तकें निकाली। इसी विभाग से भइयाराम मुण्डा ने मुण्डारी लोक कथाओं का संग्रह 'दड़ां जमाकन कानिको' छपवाया। शिष्ट मुण्डारी साहित्य के रूप में सबसे पहले दुलायचंद्र मुण्डा की पुस्तक 'सुड़ा संगेन' काव्य संग्रह राजभाषा विभाग से निकली। तब से अब तक अन्य लेखकों की पुस्तकें छपी हैं जिसका विवरण पहले दिया जा चुका है। अतः यह काल मुण्डारी साहित्य का स्वर्णकाल है। क्योंकि यहीं से

मुण्डाओं एवं उनके साहित्य का इतिहास लिखा गया।

मुण्डारी शिष्ट साहित्य का रूप देने का सर्वप्रथम श्रेय डॉ0 रामदयाल मुण्डा के सम्पादन में प्रकाशित 'हिसिर' (हार) नामक पुस्तक के रचनाकारों को दिया जा सकता है। जिनके नाम पहले दिये जा चुके हैं। इन गीतकारों ने मुण्डारी गीत शैली की प्राचीन रूढ़ियों को समाप्त कर नई दिशा प्रदान की। गीतों के अलावे आधुनिक कहानी, नाटक, उपन्यास (दुरंकानि) लिखे गये तथा कई पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाश में आई और आज भी निकल रही हैं। अतः इस काल को गद्य काल भी कहा गया है। क्योंकि इस काल में गद्य का बहुमुखी विकास हुआ है।

वर्त्तमान समय में मुण्डारी भाषा का महत्त्व बढ़ने के साथ ही साथ इसके विकास में भी तेजी आयी है। निर्गुण-सगुण भक्ति भाव के लोकगीत, गीत, कहानियाँ भी लिखे जा रहे हैं। जिसमें राम, कृष्ण, बिरसा आदि प्रमुख हैं। एक करम गीत :-

गंगादआ चेल चेपेल	अर्थात्- छलछल गंगा के पानी में
अञआ जीओ चेल चेपेल	मेरा दिल भी छलछला रहा है।
रसिकातेञ हरेपरोम तना	मैं उमंग से खे रहा हूँ
सिरिरामअञ दोरोसोना कना	(कि) मुझे श्रीराम का दर्शन हुआ है।
सीता देवी हरी लखन	सीता देवी और लक्ष्मण
मेनआं किना सोंगे रे	दोनों साथ में हैं
सालु सुगाको लन्दा जगर ताना	प्यारे सुग्गे सी बातें कर रहे हैं
सिरिरामअञ दोरोसोना कना	(कि) मुझे श्रीराम का दर्शन हुआ है।
इसिं गंगाए सिंगारना	आज गंगा शोभायमान है
डोंगा तञेए नसिबना	मेरा नाव भाग्यमान है
कोड़ो लेका ओयर परोम तना	बत्तख की भाँति तैर रहा है
सिरिरामअञ दोरोसोना कना	(कि) मुझे श्रीराम का दर्शन हुआ है।
बुरुबोंगा-ए देंगा तदा	पहाड़ी देवता की मदद है
इकिरबोंगा-ए सुतु तदा	इकिर देवता का सहारा है

लेमे लनेमे अएगे बुअल तना	(नाव) गतिमान स्वयं तैर रहा है
सिरिरामःञ दोरोसोना कना[19]	(कि) मुझे श्रीराम का दर्शन हुआ है।

आधुनिक मुण्डारी लोकगीतों, शिष्ट गीतों तथा कहानियों में साहित्य के सम्पूर्ण अंग तथा कविता एवं गीतों में काव्य के तत्व, गुण आदि स्वतः भरते जा रहे हैं। अतः निकट भविष्य में मुण्डारी का स्वर्णिम साहित्य उभरकर आ सकेगा।

मुण्डारी भाषा संस्कृति प्रेम के साहित्यकार दुलायचंद्र मुण्डा की दूसरी रचना 'बम्बरू' है। इसको इन्होंने समाज के लोगों के समक्ष भाषा का मशाल के रूप में प्रस्तुत किया है। इससे संबंधित एक गीत देखा जा सकता है-

नेः ने बम्बरु	अर्थात्-	लो इस मशाल को पकड़ो
इदि में		लो जाओ
कोते		किधर
कोते		जिधर
सिंगी हसुर तना		सूर्य अस्त होता है।
कोते		जिधर
चण्डुः डुम्बुइतना		चाँद डूबता है
कोते नुबः तना		जिधर अंधकार फैलता है
एन्ते कोते		उधर ही
मरसल बड़य में		प्रकाश फैलाते रहो।
नुबः रेनको		अंधकार में जो हैं
अलोको तुंगुर-मुंगुरो		वे निस्सहाय न हो जाएं
कोतः रेलेया		कहाँ है हम
कोते लेया		किधर जायेंगे हम
नेया		ऐसा
अलोकोमेनेचा		वे कहने न पाये
सेन तद होरा को		चले हैं जिस पथ पर
अलो को सेन अदेचा [20]		उसे भूल न जाएं।

इसी प्रकार का संदेश 'सरना सकम' पत्रिका के माध्यम से किसी लेखक ने अपने मुण्डा समाज को दिया है :-

एला हगा मिसी होनको अर्थात्-	हे भाई-बहनों आओ
सरना सकम दारु सुबारे	सरना कुंज की छाया में
सेंड़ापेड़े उडु:दड़िको	कुछ सोचने समझ सकने वाले
कलम डंडि बेगा सबेपे	(इसपर) जल्द ही कलम पकड़ो।

अतः मुण्डारी भाषा का उद्धार भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रभाषा परिषद्, बिहार अथवा राजभाषा विभाग, बिहार सरकार की अहम भूमिका रही। इसके पहले से मुण्डारी लोकसाहित्य एवं उनकी संस्कृति, सांस्कृतिक केन्द्र 'अखड़ा' और सरना कुंज में सदाबहार (मौखिक) रहा है। मुण्डाओं ने अपनी भाषा का विकास खुद किया है।

संसार (संवसार) मुण्डाओं (संसार का अर्थ किसी जगत् या संसार के सारे मानवों की सृष्टि महादेव-पार्वती द्वारा की गई हो) के धर्म, प्रकृति पूजा, कृषि-शिकार एवं आर्थिक स्रोत समान थे। वहीं प्राचीनतम रूप यथावत् जिन मुण्डाओं या जनजातियों के पास है वे संसार कहलाते हैं। हिन्दू लोग प्राकृतिक शक्तियों का मानवीकरण कर देवी-देवताओं के रूप में पूजते हैं। वहीं सरना-धर्म के अन्तर्गत आदिवासियों में प्रकृतिकरण की प्रवृति रही है। पहले लिखा जा चुका है कि झारखंड के मुण्डा का पूजा स्थल जैसे- पहाड़, नदी, देवी-गुड़ी आदि जगहों में हिन्दुओं की बढ़ती जनसंख्या भी वहीं पूजा- पाठ करने लगे। वे (हिन्दू) मुण्डाओं के पूजा स्थल में अपनी तरह से देवी-देवताओं की स्थापना भी करते जा रहे हैं। इसके उदाहरण दिये जा चुके हैं। हिन्दुओं के देवी-देवता मुण्डा, हो, खड़िया, संताल, उराँव के देवी-देवताओं का एक दूसरा रूप है। आर्थिक अभाव, भौगोलिक परिवर्तन एवं अन्य परिस्थियों में बदलाव के कारण बतख या हंस की बलि न देकर हिन्दू संस्कृति के अनुसार पूजने वाले मुण्डाओं को हम हिन्दूओं में शामिल नहीं कर सकते।

हिन्दू संस्कृति में लक्ष्मी और सरस्वती मुण्डाओं के नगे एरा-बिन्दी एरा का मानवीकरण का प्रतीक हो सकता है। मुण्डाओं का पुजारी पहान 'देवीगुड़ी' (पूजा-स्थल) में सात या नौ मिट्टी के ढेले बनाता है। शायद वहीं विभिन्न देवी-देवताओं के नाम से बने प्रतीक ढेले ही बनते-बनते हिन्दू संस्कृति में सुन्दर मानवाकृति में तब्दील हो गये हों। जिसे आज झारखंड के आदिवासी

मुण्डा मूर्त्त रूप में वर्त्तमान में पा रहे हों। परन्तु मेरा विचार है कि आदिवासियों को अपनी सांस्कृतिक एवं धर्म की रक्षा के लिए आदिम संस्कृति और धर्म को यथावत् रखा जाना चाहिए। प्रायः शहरों में अभाव या प्राकृतिक विखण्डन के कारण वैसा सम्भव नहीं हो जैसा गाँव में है। शहरों में सरना की आस्था को भावना में रखकर ही इसे बचाया जा सकता है। जिसका ज्वलंत उदाहरण राँची शहर में प्रति वर्ष सरहुल पर्व में निकलने वाला जुलूस या शोभायात्रा है। झारखण्ड के आदिवासियों के लिए 'आदिवासीत्व' की आस्था को केवल मुण्डा, हो, खड़िया, संताल और उराँव जैसी जनजातियाँ ही सरना पूजा के माध्यम से अक्षुण्ण रख सकतीं है। अतः सरना धर्म एवं संस्कृति झारखंड के आदिवासियों से जुड़ी है।

मुण्डा जाति, अपने धर्म एवं संस्कृति से अपरिचत नहीं है। इसे बचाने के लिए मुण्डाओं को आगे आना होगा। समाज में व्याप्त अशिक्षा, अंधविश्वास तथा नशाखोरी को जड़ से समाप्त करना होगा। हंड़िया मुण्डा, हो, संताल, खड़िया, उराँव का पारम्परिक धार्मिक प्रसाद अवश्य है, इसे मानकर चलना होगा। लोककथाओं में हंड़िया सेवन की विधि के सम्बंध में स्पष्ट संदेश दिया गया है कि पीने के पहले आदमी संत के समान चुप रहता है। पहला दोना पीने पर मैना की तरह बोलने लगता है। दूसरा दोना पीने पर मेमने की तरह उछलने लगता है। तीसरे दोने पर वह शेर की तरह गरजने लगता है एवं चौथा दोना लेने पर वह सुअर की तरह कादो-कीचड़ में लोटने लगता है।[21] इस कथा अंश में एक दोना से अधिक पीना वर्जित बताया गया है। अक्सर इस सीमा का उलंघन कर लोग अपना घोर अहित कर रहे हैं। यहाँ संशोधन सम्भव है कि हंड़िया को नशा सेवन का आधार न बनाया जाए। लेकिन आज की तरह 'नशाखोरी' की यह परम्परा इनकी नहीं रही है। यह परम्परा तो मुगलों, अंग्रेजों, आर्यों तथा नवागन्तुकों की ही देन है। इस नवीन नशाखोरी की परम्परा में आदिवासी अपने अस्तित्व को खोते जा रहे हैं। उनकी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक पक्ष विकृत हो रहे हैं। जब तक झारखण्ड की धरती में हंड़िया-दारु की विकरालता की नयी परम्परा को मिटाया नहीं जाता है, तब तक झारखंड या आदिवासियों का उद्धार सम्भव नहीं होगा और न झारखंड के विकास की कल्पना साकार हो सकती है।

संदर्भ स्रोत :

1. एम. एम. मुण्डू, मुण्डारी संक्षिप्त व्याकरण, राँची, 1978, भूमिका
2. मेनस ओड़ेया, मतुराः कानि, भाग-1, राँची, 1982, पृष्ठ - 129
3. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू, पीटर शान्ति नवरंगी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राँची, 1980, पृष्ठ - 232
4. प्रतापचन्द्र जैसवाल, भक्ति साहित्य, आगरा, संवत्-2035, पृष्ठ - 92
5. डॉ. कुमारी बासंती, नागपुरी गीतों की छंद रचना, वाराणसी, दो शब्द
6. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू, पीटर शान्ति नवरंगी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राँची, 1980, पृष्ठ - 231
7. सुखदा पांडेय, साहित्य और इतिहास, पटना, 1969, पृष्ठ - 235
8. कृष्ण वैद, आजकल, दिल्ली, 1998, पृष्ठ - 2
9. डब्ल्यू. जी. आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980, पृष्ठ - 145
10. - वही, पृष्ठ - 8
11. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968, पृष्ठ - 16
12. भइयाराम मुण्डा, दंड़ां जमाकन कानिको, पटना, 1960, पृष्ठ - 237
13. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू, नागपुरी प्रचारिणी सभा, राँची, 1986, आवरण पृष्ठ
14. काव्यांग विवेचन, पटना, पृष्ठ - 13, 14
15. - वही, पृष्ठ - 40
16. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू, पीटर शान्ति नवरंगी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राँची, 1980, पृष्ठ - 10, 11
17. डॉ. रामदयाल मुण्डा, प्रीतिपाला और रामायण पाला, राँची, 1970, भूमिका
18. अशोक पागल, छोटानागपुर का इतिहास, राँची, 1999, खण्ड-7 से
19. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू, पीटर शान्ति नवरंगी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राँची, 1980, पृष्ठ - 344, 345
20. डॉ. दिनेश्वर प्रसाद, संपादक, डॉ. कामिल बुल्के स्मृति ग्रंथ, राँची, 1987, पृष्ठ - 158
21. दुलायचन्द्र मुण्डा, बम्बरू, राँची, 1978, पृष्ठ - 05
22. सिकरादास तिर्की, मुण्डारी रामायण, पांडुलिपि
23. दुलायचन्द्र मुण्डा, बम्बरू, राँची, 1978, पृष्ठ - 02
24. - वही, पृष्ठ - 03
25. रामनिवास साहू, भाषा सर्वेक्षण, दिल्ली, 1986, पृष्ठ - 15
26. डॉ. दिलवर हंस, होड़ो जगर रेअः एतेहइसि नंगम, राँची, 1989, पृष्ठ - 176
27. काशीनाथ सिंह मुण्डा 'काण्डे', ससङबा, राँची, 1972, पृष्ठ - 4
28. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू, झारखंड का नैसर्गिक उत्सव, आज, सरहुल अंक, 6 अप्रील 2000

उपसंहार

'मुण्डा' का अर्थ है गाँव का मूल व्यक्ति या मुखिया (हेड मेन ऑफ द विलेज) अथवा गाँव का सरदार। दूसरे शब्दों में 'मुण्डा' गाँव का बोः या बोहोः (सिर) है जो गाँव का संचालन करता है और ग्रामपंचायत में न्याय देता है। इसी बोः या बोहोः शब्द सदानी में 'मुँड़' (सिर) से 'मुँड़' शब्द हुआ है। उसी तरह संस्कृत के मुण्ड (सिर) शब्द से 'मुण्डा' शब्द बना है।

आगे चलकर 'मुण्डा' पदवी से उस वंश के सभी व्यक्तियों को 'मुण्डा जाति' की संज्ञा मिली। मुण्डा जाति अपने को होड़ो भी कहती है। होड़ो का अर्थ मनुष्य या आदमी होता है। हो और संथाल जनजातियाँ भी स्वयं को क्रमशः 'हो' तथा 'होड़' कहती है जिसका अर्थ मनुष्य ही होता है। इस 'होड़ो' शब्द की उत्पत्ति के संबंध में मुण्डा जाति में यह लोककथा प्रचलित है कि पृथ्वी में पहले पानी-ही-पानी था। ईश्वर पत्ते या कमल फूल पर निष्प्रयोजन घूमा करते थे। उन्होंने सबसे पहले जोंक (चेरा) की सहायता से धरती का निर्माण किया तत्पश्चात् धरती पर वन्य पशु-पक्षी आदि का सृजन हुआ। उन्हीं में से एक 'हुर' नामक पक्षी के अण्डे से मानव संतान - एक लड़का और एक लड़की का सृजन हुआ। आगे चलकर उन्हीं दोनों से मानव जाति का विकास हुआ। 'हुर' के अण्डे से निकलने के कारण मनुष्य होड़ोको या 'होड़ो होनको' कहलाया। उराँव जाति में भी मानव का विकास एक लड़का और एक लड़की से माना जाता है।

मुण्डा जाति के मुख्य तीन वर्ग हैं :-

1. ***महली मण्डा :*** *जो तमाड़ क्षेत्र में बस गये हैं और तमाड़िया कहलाते हैं। इन्हें 'खंगर' मुण्डा भी कहते हैं। ये खूँटी तथा कर्रा आदि क्षेत्रों में भी हैं।*

2. ***कुम्पाट :*** *ये श्रेष्ठ मुण्डा माने जाते हैं।*

3. ***होड़ो मुण्डा :*** *जो केवल मुण्डा जाति के हैं।*

इन तीनों भेदों में आचार-व्यवहार और पदवी आदि से भिन्न होने के कारण इनमें वर्ग भेद आ गया है। इन सभी वर्ग भेदों का एक नाम मुण्डा

जाति है। यही मुण्डा जाति झारखण्ड के मूल निवासियों में से एक मानी जाती है। मुण्डा जाति की जनसंख्या बिहार के अतिरिक्त उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, त्रिपुरा, असम और अंडमान-निकोबर द्वीप समूहों में मिलती है। वर्त्तमान काल में मुण्डा जाति का मूल निवास झारखण्ड प्रदेश है। असम तथा अण्डामन-निकोबर द्वीप समूह में मुण्डा जनजाति के लोग झारखण्ड या छोटानागपुर से ही जाकर बस गए हैं।

बिहार में मुण्डाओं की जनसंख्या सन् 1961 ई0 की जनगणना के अनुसार 6,28,942; 1971 ई0 में 7,23,116 तथा सन् 1981 ई0 की जनगणना के अनुसार 8,45,887 है। जो कुल जनजातीय जनसंख्या का 14.56 प्रतिशत है। यद्यपि जनजाति की जनसंख्या सम्पूर्ण बिहार में फैली हुई है किन्तु अधिकांश जनसंख्या छोटानागपुर प्रमण्डलान्तर्गत राँची जिला में पाई जाती है। सन् 1981 ई0 की जनगणनानुसर राँची जिला में मुण्डाओं की जनसंख्या 5,89,599 है।[1] डॉ0 रामदयाल मुण्डा 1991 ई0 की जनगणना रिपोर्ट पर चिंता व्यक्त करते हुए कहते है कि "देश में 8 करोड़ आदिवासी आबादी है। माना कि इसका चार आना यानी दो करोड़ आदिवासी ईसाई धर्म स्वीकार कर चुके हैं।"[2] वर्त्तमान में मुण्डाओं का केन्द्रीय भू-भाग राँची जिले का खूँटी सबडिविजन है। इसका कुल जनसंख्या का 80 प्रतिशत आबादी इसी भू-खण्ड में निवास करती है। मुण्डा जनजाति को बिहार की अन्य आदिवासियों की तरह भरतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत् अनुसूचित जनजाति का दर्जा मिला है।

मुण्डा जाति की भाषा मुण्डारी है। इसकी दो साहित्यिक धाराएँ है :- मुण्डारी लोक साहित्य और मुण्डारी शिष्ट साहित्य। मुण्डारी लोकसाहित्य बिखरा पड़ा है और शिष्ट साहित्य सीमित है।

मुण्डारी भाषा विश्व भाषा सुमुदाय की आग्नेय या आष्ट्रिक भाषा परिवार की प्रमुख भाषा है। यह विश्व भाषा खण्ड के यूरेशिया खण्ड के अन्तर्गत आती है। आष्ट्रिक भाषा की दो शाखाएँ है - आष्ट्रो एशियाटिक एवं आष्ट्रोनेशियन। इसका विस्तार भारत से आष्ट्रेलिया तक है। दक्षिण-पूर्व एशिया की भाषाओं को आष्ट्रो एशियाटिक और प्रायद्वीपीय भाषाओं को आष्ट्रोनेशियन के अन्तर्गत शामिल किया गया है।

भारत में कही जाने वाली आष्ट्रो एशियाटिक भाषा का विस्तार

बिहार, पश्चिम बंगाल, ओड़िसा, मध्य प्रदेश, असम, त्रिपुरा और अण्डामन-निकोबर द्वीप समूह की मुण्डारी, संताली, हो, खड़िया, असुरी, बिरहोरी, सावरा, भूमिज, गदावा, कोरकु, जुअं, गेताः, बोन्तो, गोरूम और खासी आदि भाषाएँ है। आष्ट्रोएशियाटिक के दो भेद है- मोनख्मेर तथा मुण्डा। मोनखमेर के अंतर्गत - मोनखमेर, पलौंगवा, खासी और निकाबरी। फिर मुण्डा के भी दो विभाग है - खेरवारी और अन्य। खेरवारी के अंतर्गत मुण्डारी, संताली, हो, खड़िया, असुरी, बिरहोरी, भूमिज, थारू आदि बोलिया आती हैं।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से मुण्डारी योगात्मक भाषा है। यह भाषा संस्कृत की तरह क्लिष्ट है। मुण्डारी भाषा को मुण्डा लोग 'होड़ो जगर' भी कहते हैं । होड़ो जगर' का अर्थ है मनुष्य की बोली या भाषा। इस भाँति मुण्डा जाति अपने को 'होड़ो' भी कहती है। इसी 'होड़ो' समुदाय का मूल व्यक्ति या सरदार 'मुण्डा' होता है।

भौगोलिक विभिन्नता के कारण मुण्डारी भाषा चार भागों में विभक्त है- हसादः मुण्डारी, नगुरी मुण्डारी, तमाड़िया (लतर) मुण्डारी और केरः मुण्डारी। हसादः मुडारी भाषा की मौलिकता अधिक है। क्योंकि हसादः मुण्डारी मुण्डा क्षेत्र के मध्य में स्थिति है। इसका क्षेत्र राँची-चाईबासा मार्ग से पूरब खूँटी, मुरहू और अड़की है। सिंहभूम जिले क बंदगाँव, कुचाई एवं खरसवाँ प्रखण्ड में इस भाषा वर्ग का इलाका है। नगुरी मुण्डारी में सदानी या नागपुरी का प्रभाव है। इसका क्षेत्र ठीक राँची-चाईबासा मार्ग से पश्चिम खूँटी, कर्रा, तोरपा, लापुंग, रनिया, बानो, कोलेबिरा तथा सिमडेगा आदि प्रखण्ड है। तमाड़िया मुण्डारी तमाड़ क्षेत्र में भी बोली जाती है। इस मण्डारी में बंगला एवं पंचपरगनिया का सम्मिश्रण मिलता है। केरः मुण्डारी का क्षेत्र राँची तथा राँची के चारों ओर खिजरी, ओरमाँझी, बुढ़मू, कांके आदि तथा खूँटी प्रखण्ड का उत्तरी क्षेत्र है। केरः मुण्डारी में रः ध्वनि की प्रमुखता है। इसलिए इसे केरः मुण्डारी कहा जाता है। "यहाँ के कुड़ुख या उराँव लोगों के द्वारा प्रयुक्त मुण्डारी को केरा कहा जाता है। इन सभी भेदों में केन्द्रीय स्थिति हसदाआ की है, जो अपेक्षकृत शुद्ध और मानक समझी जाती है।"[3]

मुण्डारी भाषा की उपर्युक्त विलगता मात्र बोल-चाल की दृष्टि से मिलती है। परन्तु मुण्डारी साहित्य के लिए चारो प्रकार की मुण्डारी का महत्त्व समान है। मुण्डारी लोकसाहित्य एवं शिष्टसाहित्य में प्रायः मुण्डारी के सभी

वर्गों के शब्दों एवं भाषा रूपों का प्रयोग मिलता है। जैसे- जदुर गीतों में रूअड़ा (लौटना), नइ (नदी) आदि शब्द क्रमशः केरः एवं नगुरी मुण्डारी में भी मिलते हैं।

मुण्डारी भाषा की लिपि देवनागरी है। देवनागरी लिपि संसार की वैज्ञानिक लिपियों में से एक है। इसमें जैसी भाषा बोली जाती है प्रायः वैसा ही लिखा भी जाता है। फिर भी देवनागरी लिपि के महाप्राण व्यंजनों एवं शब्दों का उच्चारण मुण्डारी में नगण्य है। हो तथा संथालों में भी इसी प्रकार का प्रचलन है। इसके अतिरिक्त देवनागरी के श, ष, ज्ञ, ऋ, ऌ, आदि को व्यावहार में प्रायः नहीं लाया जाता है। लेकिन इसका उपयोग बाह्य भाषा के आगत शब्दों में अवश्य किया जाता है।

मुण्डारी कोमल तथा मुधुर भाषा है। संस्कृत की तरह इसके तीन वचन होते हैं। मुण्डारी व्याकरण अपनी विशेषताओं के साथ हिन्दी तथा संस्कृत के समान है। 1961 ई0 की जनगणना-रिपोर्ट के अनुसार मुण्डारी बोलने वालों की संख्या सात लाख छत्तीस हजार पाँच सौ चौबीस है, जिनमें बिहार में निवास करने वाले मुण्डारी भाषियों की संख्या प्रायः पाँच लाख चौहत्तर हजार चार सौ बयासी है।" [4]

मुण्डाओं का इतिहास मूलतः मौखिक रूप में उनके लोकसाहित्य में संचित है। अतः इनके लोकसाहित्य एवं संस्कृति में ऐतिहासिक तथ्य भरे पड़े हैं। आवश्यकता है, इनके सूत्रों को क्रमबद्धतर प्रदान कर लिखने की।

मुण्डाओ के छोटानागपुर आगमन के पूर्व घुमन्तु मुण्डाओं के इतिहास को प्राक्-इतिहास या प्रागैतिहासिक काल कहा जा सकता है। इस काल में मुण्डा लोग भारत तथा भारत के पूरब-उत्तर एवं सीमावर्ती देशों में थे। वहाँ से एक दल आस्ट्रेलिया की ओर चला गया, किन्तु मुण्डाओं का प्रमुख दल चीन-तिब्बत, सिन्धु नदी के किनारे-किनारे हिमालय पर्वत की तराई, खैबर घाटी को पार कर काबुल होते हुए भूमध्य सागर के तटवर्ती भू-भागों में मूल रूप में बस गये थे। यहीं 'मिलन घाट' (नपम टयद) नपमपिड़ी (मिलन-मैदान) में भारत से गए आज के हो, संताली, उराँव, खड़िया आदि जनजातियों से मिलन हुआ था। इसी भूमध्य सागर के तटीय भू-भाग से इनका एक दल अफ्रिका की ओर गया। मूल या दूसरा दल खैबर घाटी, काबुल और बोलन घाटी होते हुए वापस भारत के सिन्धु नदी-घाटी में आया। बाद में अफ्रीका

से इरान -इराक होते हुए रास्ते से मुण्डाओं का वह दल भी भारत लौटा, यहाँ इन्होंने सैन्धव सभ्यता का विकास किया था। इस काल में मुण्डाओं को द्रविड़ कहा गया। जब इनके बीच "मध्य एशिया से" [5] आर्यों का आगमन हुआ तब मुण्डाओं तथा अन्य आदिवासियों को आर्यों ने अनार्य कहकर सम्बोधित किया। आर्यों तथा अनार्यों मे तनाव होने के उपरांत मुण्डा आदि जातियाँ सिन्धु घाटी से पंजाब के कुरूक्षेत्र, सरस्वती नदी के किनारे, हिमालय की तराई तथा दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत तक फैल गई। धीरे-धीरे इन क्षेत्रों में भी आर्यों का आगमन एवं अधिकार हो गया। आर्यों और अनार्यों में अपने-अपने अस्तित्व के लिए लड़ाइयाँ होती रहीं। पर अनार्य हार कर आगे पूर्व की ओर भागते गए। पुनः मुण्डाओं की आबादी उत्तर भारत के काशी, वाराणसी, अस्सी घाट, अयोध्या, आजमगढ़, आगरा, मथुरा आदि जगहों में छा गई। इन क्षेत्रों में भी आगे चलकर आर्यों ने दखल किया। यहीं सुर-असुर की उत्पत्ति हुई। इन दोनों में युद्ध भी हुए। असुर हार कर दक्षिण की ओर बिहार में गंगा के मैदानी भागों पटना, गया आदि क्षेत्रों में बस गये। अंत में झारखण्ड की धरती में इन्होंने अपना आधिपत्य कायम कर लिया। असुरों के छोटे भाई अनार्य मुण्डाओं को आर्यों के कारण उत्तर भारत से भी भागना पड़ा। असुरों के पीछे-पीछे कई दलों में विभक्त होकर मुण्डा नई जगहों की खोज में गंगा नदी के तटवर्ती भागों से पटना, गया, नवादा, रोहतास होते हुए छोटानागपुर में प्रवेश किए। यहाँ ये दो दलों में बँट गये। एक दल बुढ़मू प्रखण्ड के 'उमेडण्डा' में बस गया, जहाँ पहले से द्रविड़ या असुर सभ्यता थी। "जो राँची, हजारीबाग और पलामू के प्रायः मिलन बिन्दु पर हैं।" [6] दूसरा दल पूरब की ओर संथाल परगना और पश्चिम बंगाल के पुरुलिया, मिदनापुर (मिदेनपुर), वीरभूम, झालदा इत्यादि इलाकों में संथालों के साथ अपना गाँव बसाया। एक दल उत्तर भारत से सतपुड़ा-विंध्याचल पर्वत होते हुए दक्षिण भारत के वन-पर्वतों मे जा बसा। दक्षिण भारत से यही दल जब अपने बन्धुओं तथा नई जगहों की खोज में उत्तर भारत की ओर मुड़े तब ये दो दलो में विभक्त हो गये। एक दल धीरे-धीरे दक्षिण से पश्चिम छोटानागपुर में बसा। दूसारा दल मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़, ओड़िसा के क्योंझर, बांकुड़ा इत्यादि होते हुए पश्चिम बंगाल के मिदनापुर जैसे इलाकों में पहले से रह रही मुण्डा एवं संथाल जातियों में घुलमिल गया। इस प्रकार मुण्डा लोग प्रागैतिहासिक काल में

छोटानागपुर में सभी दिशाओं से आकर बस गए। ये उत्तर में बुढ़मू का उमेडण्डा, दक्षिण में ओड़िसा के मयूरभंज, क्योंझर, सुन्दरगढ़ इत्यादि, पूरब में पश्चिम बंगाल और पश्चिम में मध्य प्रदेश मे पहले से थे। पहले ये क्षेत्र एवं संथाल परगना भी छोटानागपुर अथवा झारखण्ड का ही हिस्सा था। उस समय छोटानागपुर के मूल निवासियों की यह विशेषता थी कि जहाँ असुर जाए वहाँ मुण्डा और जिस ओर मुण्डा जाए उसी भूखण्ड में संताल तथा अन्य जनजातियाँ भी निवास करने जाती थी।

पश्चिम बंगाल के मिदनापुर और बीरभूम में मुण्डाओं के 'मुण्डा' रिसा मुण्डा और संथालों के प्रधान माधो सिंह थे। रिसा मुण्डा की बेटी और माधो सिंह के बेटे के प्रेम सम्बध से विवाद उत्पन्न हुआ। तब रिसा मुण्डा को गाँव से खदेड़ देने की बात हुई। रिसा मुण्डा स्वयं गाँव छोड़कर अपने इक्कीस हजार लोगों के साथ नई जगह-जमीन की खोज में उत्तर की ओर भयानक घने जंगलों में जाकर आधी रात को एक वृक्ष के नीचे बैठकर 'सिङबोंगा' (ईश्वर) से नए स्थान के लिए प्रार्थना की। स्वप्न में या आकाशवाणी के रूप में ईश्वर ने उसे दक्षिण की ओर जाने का संकेत किया। तत्पश्चात् वे आज के राँची के मोरहाबादी नामक स्थान में आ पहुँचे। इस सुन्दर भू-भाग को देखकर उन्होंने सोचा कि ईश्वर या सिङबोंगा द्वारा प्रदत्त सम्भवतः यही भू-खण्ड है। पंखराज नामक घोड़े से रिसा मुण्डा ने छोटानागपुर का पूर्ण भ्रमण एवं दर्शन किया और इसने नाग दिसुम या नाग देश कहा। खुखरा और ढोंएसा में वह अपने अन्य मुण्डा भाइयों से मिला। रिसा मुण्डा अपने सहयोगियों के साथ खुशी से गा उठाः-

सोना लेकर दिसुमा लिपी	अर्थात् - हे बन्धुओं, स्वर्ण सा देश
कुकुरा रेञ लेलदा लिपी	मैंने खुखरा देखा।
रूपा लेकर गमया लिपी	हे बन्धुओं, चांदी सा देश
ढोंएसारेञ चिनादा लिपी	मैंने ढोंएसा पाया।

पश्चिम बंगाल से मुण्डाओं की बड़ी शाखा बाद में चलकर तमाड़-बुण्डू क्षेत्र में बस गयी। यहाँ असुरों का बोलबाला था। यह काल 5 वीं सदी ईसा पूर्व का रहा होगा। इसे प्रागैतिहासिक काल का अंत और प्राचीन काल का आरम्भ काल माना जा सकता है।

ई0 पूर्व छठी शताब्दी और सातवीं शाताब्दी तक अर्थात् प्रचीन

कालीन छोटानागपुर के इतिहास में मुण्डाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। रिसा मुण्डा ने राँची के चारों ओर कई गाँव बसाये। उसे सात गाँव का पड़हा राजा या पाट मुण्डा (कुम्पाट मुण्डा) की उपाधि मिली। जो सुतिआम्बे के अधीन था। सुतिया मुण्डा महाराज पद पर आसीन थे। वर्त्तमान राँची में मुण्डाओं की जनसंख्या में वृद्धि हुई तथा वे नई बस्तियों की खोज में जब खूँटी की ओर बढ़े तब यहाँ के पूर्व वासिंदे असुर और तिरकी जाति से इनकी मुठभेड़ हुई थी। खूँटी क्षेत्र के असुरों को मुण्डाओं ने हराकर उन्हें दूसरा गढ़ लौहग्गल या लोहरदगा अर्थात् उत्तर पश्चिम की ओर खेदड़ दिया। इसके विषय में कहा गया है :- "तिरकी तिकिः तिकिः

नगुरी जलब जिलिब" [7]

अर्थात्- तिरकी जाति आभूषणों से परिपूर्ण
है और नगुरी या पश्चिमी क्षेत्र के लोगों का
साज-श्रृंगार झकमक करता है।

मुण्डाओं ने असुरों को परास्त कर सम्पूर्ण छोटानागपुर में अपना शासन स्थापित कर लिया। समूचे भूखण्ड को सुतिया मुण्डा ने गोत्र के आधार पर बँटवारा कर तेइस गढ़ों या पड़हा मण्डलों में बाँटा। इसके अलावे शासन की सुविधा के लिए उन्होंने कई छोटे-छोटे पड़हा का निर्माण किया। प्रत्येक पड़हा एक गोत्र पर आधारित था। सभी पड़हा पंचायत का एक महापड़हा मण्डल था। जिसका महाराजा या सिङबोंगा राजा होता था।

छोटानागपुर के मुण्डा राजाओं में सुतिया मुण्डा के पहले और बाद एवं मदरा मुण्डा के पहले के मुण्डा राजाओं का कोई लिखित विवरण नहीं मिलता है। मदरा मुण्डा छोटानागपुर के अंतिम राजा थे। इसकी राजधानी या पड़हा मण्डल सुतिआम्बे थी। मदरा मुण्डा के बाद राजा की नियुक्ति की बात आई, तब जनता की ओर से दो प्रस्ताव सामने आये। प्रथमतः मदरा मुण्डा के पुत्र मुकुट राय का और दूसरा बालपोस बेटा फणिमुकुट राय का। अंत में इस प्रक्रिया के निष्पादन हेतु इन दोनों के लिए एक राजनीतिक प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। जिसमें नागवंशी फणिमुकुट राय को छोटानागपुर का महाराजा बनाया गया। इस राज्यारोहण के साथ ही छोटानागपुर के मुण्डा राजाओं का हस्तांतरा नागवंशी राजाओं का हो गया। मुण्डा राजा ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

छोटानागपुर का प्रशासनिक एवं राजनैतिक अधिकार नागवंशियों को मुण्डाओं से मिला। यही राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन से छोटानागपुर में प्राचीन काल का अंत हुआ तथा मध्य युग का आरम्भ ।

छोटानागपुर का मध्य कालीन इतिहास, भारतीय मध्यकालीन इतिहास की तरह है (क). पूर्व मध्य काल (650 ई0 से 1200 ई0 तक) - प्रथम नागवंशी महाराजा फणिमुकुट राय (100 ई0 से 177 ई0 तक) थे, यह 'राजपूत' साम्राज्य का ही अंग था। (ख). उत्तर मध्य काल (1200 ई0 से 1765 ई0 तक)। इसके दो खण्ड हैं :-

(1). सल्तनत काल 1200 से 1526 ई0 तक *- इसके अंतर्गत दिल्ली के सुल्तानों, बह्मनी और विजयनगर राज्यों का इतिहास है।*

(2). मुगल काल (1526 ई0 से 1765 ई0 तक) *- छोटानागपुर में अंग्रेजों के आने तक मुगल काल का इतिहास है। इस काल में अकबर के बाद शेरशाह ने छोटानागपुर के उजले हाथी को पाने के लिए आक्रमण किया था। सन् 1616 ई0 में मुगल शासक जहाँगीर ने झारखण्ड की राजधानी खुखरा के तत्कालीन राजा दुर्जन शाल पर हमला कर उसे बारह वर्षों के लिए बंदी बना लिया था। इसके रिहाई के साथ-ही-साथ मुगलों ने हीरानागपुर को पूर्ण रूप से अपने अधिकार में कर लिया। यहाँ के मुण्डा, आदिवासी मुगलों के रैयत बने।*

छोटानागपुर में नागवंशी तथा मुण्डाओं के बाद कई शासक बाहर से आये। विदेशी शासकों के इस दमन नीति के कारण यहाँ की जनता में आक्रोश पैदा होने लगा। यहाँ (हीरानागपुर) में अंग्रेजों के आगमन के साथ मध्य काल अंत होकर आधुनिक काल का प्रारम्भ (1765 ई0 से) होता है। इसी वर्ष बक्सर युद्ध के बाद अंग्रेजों का आगमन झारखण्ड की धरती पर हुआ। इन्होंने रामगढ़ को प्रथम "हिलट्रेक्ट जिला" बनाया और वहीं से अपना साम्राज्य का विस्तार किया। ऐसे झारखण्ड के इतिहास के सम्पूर्ण

मध्यकाल६से आजाद भारत या अंग्रेजी शासन काल तक मुख्य उत्तराधिकारी के रूप में नागवंशियों का इतिहास ही रहा है।

आधुनिक काल को भी दो खण्डों में रखकर देखा जा सकता है (क). अंग्रेजी शासन काल में छोटानागपुर राज या आधुनिक पूर्व मध्य का इतिहास एवं (ख). स्वतंत्र भारत में छोटानागपुर कमिश्नरी या मध्य उत्तर का समय।

अंग्रेजी शासन काल में छोटानागपुर राज

हीरानागपुर में जैसे-जैसे अंग्रेजों के प्रभुत्व का विस्तार होता गया वैसे-वैसे झारखण्ड एक युद्ध का अखाड़ा बन गया। इसके खिलाफ विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग वर्षों में अनेकों लड़ाइयाँ हुई। इन्होंने सन् 1857 का सिपाही विद्रोह को दबाने के लिए सरदारों, परगनैतों, मुगलों को छूट की व्यवस्था दी। परगनइत जगतपाल सिंह ने अंग्रेजों का पक्ष लिया। बड़कागढ़ के ठाकुर विश्वनाथ शाही, पाण्डे गणपतराय, शेख भिखारी जैसे आन्दोलन का नेतृत्व करने वालों को फाँसी दे दी गई।

अंग्रेज ईसाई थे, इनकी शासन की स्थापना के साथ ही ''भारी संख्या में ईसाई मिशनरी यहाँ आने लगे।'' [8] इन ईसाई मिशनरियों ने अपने प्रभु ईसा मसीह की आज्ञानुसार ईसाई धर्म, सभ्यता एवं संस्कृति का प्रचार विश्व के कोने-कोने में जाकर फैलाया। इसी काल-क्रम में सर्वप्रथम जॉन थॉमस भारत आया था। ''सन् 1786 में चार्ल्स ग्रांट ने जॉन थॉमस के भारत आगमन के पूर्व बंगाल के लिए मिशनरी चाहिए योजना बनाई थी। वह चाहता था कि मसीही-सत्य का प्रचार भारतवासियों को उन्हीं की भाषा के माध्यम से सुनाया जाए।'' [9]

अतः ईसाई मिशनरियों को छोटानागपुर में ईसाई धर्म का प्रचार करना था। सन् 1845 ई0 में कलकत्ता से ये ईसाई मिशनरी, अंग्रेज अफसर तथा अन्य शोषक वर्ग (तेलेंगा) राँची आये। जब वे आज के राँची शहर के राँची-डोरण्डा में फैले 80 प्रतिशत आदिवासी गाँवों के मैदानों में बस गये, तब मुण्डाओं को फिर एक बार राँची-डोरण्डा छोड़कर खूँटी की ओर जाना पड़ा। जिस कारण मुण्डाओं में क्रांति की आग सुलगने लगी। अन्ततः 1896-1900 ई0 मे 'बिरसा आन्दोलन चला।

स्वतंत्र भारत में छोटानागपुर कमिश्नरी या मध्य उत्तरकालीन समय

15 अगस्त 1947 को जब हमारा देश अंग्रेजों के चंगुल से आजाद हुआ, तब 1952 से भारतीय गणराज्य के तहत् छोटानागपुर के बड़े भाग का प्रशासनिक अधिकार बिहार राज्य सरकार के अन्तर्गत छोटानागपुर कमिश्नरी में आ गया। छोटानागपुर राज्य का शेष भाग पश्चिम बंगाल, उड़ीसा एवं मध्य प्रदेश में बाँट दिया गया। इसी से वर्त्तमान छोटानागपुर (बिहार अंश) के अतिरिक्त मुण्डा जाति पश्चिम बंगाल, उड़ीसा एवं मध्य प्रदेश में आज भी बसी हुई है। अतः प्रजातांत्रिक राज्य में मुण्डा लोग बिहार सरकार के रैयत हैं। इसके अतिरिक्त जमीन एवं भुंइहरी जमीन का शेष बिहार सरकार लेती है। 'लकराजी' खुंटकटी का सरकार कोई शुल्क नहीं लेती है।

भारतीय गणराज्य के संविधाान में आदिवासियों, हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों की भाषा, संस्कृति, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक उत्थान के लिए विशेष सुविधाएँ दी गई है। इसके पूर्व विदेशी विद्वानों ने मुण्डाओं का इतिहास लिखना शुरू किया था। परन्तु मुण्डा जाति का इतिहास एवं मुण्डारी लोक साहित्य का संग्रह का विकास का अवसर आजादी के बाद पूर्ण-रूपेण मिला।

मुण्डाओं का इतिहास राजगद्दी पर सत्तारूढ़ होने का नहीं रहा है। बल्कि उनकी उपस्थिति, सभ्यता और संस्कृति से है। प्रागैतिहासिक काल में मुण्डा जाति द्रविड़ और उसके बाद असुरों के आधिपत्य में लिप्त थी। प्राचीन काल में छोटानागपुर मुण्डाओं के अधीन था। मध्यकाल में मुण्डा जाति नागवंशियों के नीचे थी। इस राज्य सरकार के ग्राम पंचायत उपबन्ध या अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार अधिनियम 1996 के 24 दिसम्बर, 1996 से देश के सभी अनुसूचित क्षेत्रों में लागू है। इस अधिनियम की धारा 4 (व) के तहत ग्राम सभाओं के रूप में गाँव समाज को अपनी परम्पराओं के अनुसार पूरा काम करने के लिए सक्षम माना गया है।"[15] इसके तहत छोटानागपुर के मुण्डा, हो, खड़िया और संथाल आदि जनजातियों को अपने ग्रामपंचायत में परम्परागत ग्रामगणराज्य की व्यवस्था 'अपना गाँव, अपना राज' वापस मिला है। इसका प्रमाण 'झारखण्ड स्वाशासन परिषद, राँची'और अब झारखंड राज्य की राजधानी।

इस तरह मुण्डारी भाषा एवं इसका लोकसाहित्य रूपी अनगढ़ पत्थर, यहाँ के शासकों की धारा में रगड़ खाता-खाता चिकना होकर सुन्दराकृति में तब्दील होता जा रहा है।

सरतेअम सिङबोंगाअम सुगड़ाअम
(तुम्हीं सत्य हो, तुम्हीं ईश्वर हो, तुम्हीं सुन्दर हो)

संदर्भ स्रोत :

1. सोमा सिंह मुण्डा, राँची, 1993, पृष्ठ - 02
2. दयामणि बरला, प्रभात खबर, राँची, 6 जनवरी 2000, पृष्ठ - 02
3. डॉ. दिनेश्वर प्रसाद, मुण्डारी शब्दावली, वाराणसी, 1999, पृष्ठ - 15
4. - वही
5. खन्ना एवं शर्मा, सामान्य ज्ञान एवं व्यक्ति परिचय, आगरा, 1981, पृष्ठ - 52
6. डॉ. दिनेश्वर प्रसाद, मुण्डारी शब्दावली, वाराणसी, 1999, पृष्ठ - 9
7. डॉ. दिलवर हंस, होड़ो जगर रेअः एतेहइसि नंगम, राँची, 1989, पृष्ठ - 251
8. डॉ. गिरिधारी राम गौंझू, पीटर शान्ति नवरंगी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राँची, 1980, पृष्ठ - 328
9. पंजाब राव रामाराव जाधव, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन में ईसाई मिशनरियों का योगदान, पूणा, 1973, पृष्ठ - 29

सहायक ग्रंथ सूची

सन्दर्भ ग्रंथ

1. अशोक पागल, छोटानागपुर का इतिहास (अर्द्ध प्रकाशित), राँची, 1999.
2. डॉ0 आदित्य प्रसाद सिन्हा, हो लोक कथा, वाराणसी, 1972.
3. ईश्वरी प्रसाद सिंह, झारखण्ड, 1937.
4. एम0 एम0 मुण्डू, मुण्डा कुदुम ओड़ोः सोलोको, पटना, 1980.
5. एम0 एम0 मुण्डू, मुण्डारी संक्षिप्त व्याकरण, राँची, 1989.
6. एम0 एम0 मुण्डू, मुण्डारी टुङकोढारि, राँची, 1989.
7. काशीनाथ सिंह मुण्डा 'कांडे', ससङबा, राँची, 1972.
8. कुमार सुरेश सिंह, बिरसा मुण्डा एण्ड हिज मूवमेन्ट.
9. कुंवर बालकृष्ण मुस्तर, कुरूक्षेत्र, दिल्ली, 1965.
10. पण्डित कुबेरनाथ सुकुल, वाराणसी वैभव, पटना, 1977.
11. डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, लोक-साहित्य की भूमिका, इलाहाबाद, 1956.
12. डॉ0 कृष्णदेव वर्मा, लोक-साहित्य की समीक्षा, दिल्ली, 1984.
13. डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन, वाराणसी.
14. कुंजल साय मीरू, हिसिर, राँची, 1967.
15. खन्ना एवं वर्मा, सामान्य ज्ञान एवं व्यक्ति परिचय, आगरा, 1981.
16. डॉ0 गिरिधारी राम गौंझू 'गिरिराज', पीटर शान्ति नवरंगीः व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राँची, 1980.
17. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएँ, पटना, 1968.
18. जगदीश त्रिगुणायत, बाँसरी बाज रही, बिहार, राँची, 1971.
19. जगदीश त्रिगुणायत, सोसोबोंगा, पटना, राँची, 1966.
20. डॉ0 जयदेव, आधुनिक भारत, पटना, 1994.
21. डॉ0 जगदीश शर्मा, साहित्य इतिहासकार रामचन्द्र शुक्ल और डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी, दिल्ली, 1982.
22. जे0 डी0 नोलो एस0 जे0, हो ग्राम एण्ड वोक्युबलरी.
23. जोसेफ कण्डुलना, छोटानागपुर के आदिवासी और उनके गोत्र, राँची, 1994.

24. श्री टायलर, प्रिमिटिव कल्चर, 1971.
25. डब्लू 0 जी0 आर्चर, मुण्डा दुरङ, राँची, 1980.
26. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, टीकाकार : ज्वाला प्रसाद, बम्बई,
27. डॉ0 दिलवर हंस, होड़ो जगर रेअः एतेहइति नङगम ओड़ोः हरा रनकब, राँची, 1989.
28. डॉ0 दिनेश्वर प्रसाद, सम्पादक, डॉ0 बुल्के स्मृति ग्रन्थ, राँची, 1987.
29. डॉ0 दिनेश्वर प्रसाद, लोक साहित्य और संस्कृति, 1972.
30. डॉ0 दिनेश्वर प्रसाद, मुण्डारी शब्दावली, वाराणसी, 1999.
31. डॉ0 दुर्गाशंकर प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लखनऊ, 1984.
32. दुलायचन्द्र मुण्डा, सुड़ासुंगेन, पटना/राँची, 1966.
33. दुलायचन्द्र मुण्डा, होड़ो जगर इतु पुथि, राँची, 1984.
34. दुलायचन्द्र मुण्डा, मुण्डारी साहित्य- बुल्के स्मृति ग्रन्थ में, राँची, 1987.
35. दुलायचन्द्र मुण्डा, बम्बरू, राँची, 1978.
36. नारायण प्रसाद जहानाबादी, आदिवासी जीवन और साहित्य, पटना, 1963.
37. डॉ0 नागेश्वर सिंह, छोटानागपुर के ईसाई मिशनरियों का हिन्दी साहित्य तथा शिक्षा के क्षेत्र में योगदान, राँची, 1985.
38. डॉ0 नागेश्वर लाल, मुण्डारी और उसकी कविता, पटना, 1980.
39. निकोदिम केरकेटा, कुदुम, राँची, 1995.
40. प्रद्युम्न सिंह, नागवंश, खैरागढ़, मध्य प्रदेश,
41. प्रकाशचन्द्र प्रसाद, मोगल कालीन झारखण्ड कर राजनेतिक इतिहास, गुमला, 1987.
42. प्रतापचन्द्र जैसवाल, भक्ति साहित्य, आगरा, संवत्-2035.
43. डॉ0 पारसनाथ द्विवेदी, वैदिक साहित्य का इतिहास, वाराणसी, 1993.
44. डॉ0 पारसनाथ तिवारी, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लखनऊ, 1984.
45. पीटर शांन्ति नवरंगी, छोटानागपुर का संक्षिप्त इतिहास, राँची, 1984.
46. पीटर शांन्ति नवरंगी, नागपुरी सदानी बोली का व्याकरण, राँची,
47. पी0 ए0 बोनर्दीत, संताली लैंगुएज हेण्ड बुक, कलकत्ता, 1929.
48. पी0 पोनेट, ये0 स0, हड़म होड़ोकोअः कजिको, राँची,
49. पौलुस कुल्लु, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा, स्टाफ कॉलेज, राँची, 1997.

50. पौलुस तोपनो, ये0 सं0 छोटानागपुर के आदिवासी, राँची, 1984.
51. पंजाब राव रामाराव जाधव, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन में ईसाई मिशनरियों का योगदान, पूणा, 1973.
52. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृति साहित्य का इतिहास, वाराणसी, 1990.
53. डॉ0 बलराम श्रीवास्तव, दक्षिण भारत का इतिहास, वाराणसी, 1968.
54. प्रो0 बद्रीदत्त शास्त्री, संस्कृत व्याकरण कौमुदी, पटना, 1992.
55. डॉ0 ब्रज बिहारी कुमार, भारतीय आदिवासी, 1999.
56. डॉ0 बाबूराम सक्सेना, सामान्य भाषा विज्ञान,
57. डॉ0 कुमारी बासंती, नागपुरी गीतों में छंद रचना, वाराणसी,1993.
58. डॉ0 भगीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, वाराणसी, 1980.
59. भइयाराम मुण्डा, दंड़ां जमाकन कानिको, पटना, 1960.
60. भागवत मुर्मू, दोङ सेरेञ,
61. डॉ0 भुवनेश्वर अनुज, नागपुरी लोक साहित्य, इलाहाबाद,
62. डॉ0 भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, इलाहाबाद, 1981.
63. महाश्वेता देवी, बिरसा मुण्डा, राँची, 1984.
64. मेनस ओड़ेया, मतुराः कहनि, भाग - 1, राँची, 1984.
65. मेनस ओड़ेया, मतुराः कहनि, भाग - 2, राँची, 1986.
66. मेनस ओड़ेया, मतुराः कहनि, भाग - 3, राँची, 1988.
67. मोतीचन्द, काशी का इतिहास, बम्बई, 1962.
68. मोतीलाल निरूवा, हो भाषा कैसे सीखें.
69. योगेन्द्र नाथ तिवारी, नागपुरी भाषा का संक्षिप्त परिचय, राँची, 1970.
70. डॉ0 रतीश श्रीवास्तव, समाजिक मानव विज्ञान, पटना, 1978.
71. डॉ0 रहमत उल्ला, लोक साहित्य में आमोद-प्रमोद, मानपुर, 1984.
72. रामनारायण उपाध्याय, लोक साहित्य अध्ययन, उज्जैन, 1983.
73. रामनारायण उपाध्याय, लोक साहित्य पहचान, उज्जैन, 1983.
74. डॉ0 राजकिशोर सिंह, वैदिक साहित्य का इतिहास, आगरा, 1981.
75. डॉ0 रामदयाल मुण्डा, मुण्डारी व्याकरण, राँची, 1979.
76. डॉ0 रामदयाल मुण्डा, भूरिया कमिटि रिपोर्ट, दिल्ली, 1995.
77. डॉ0 रामदयाल मुण्डा, मुण्डारी पाठ, राँची, 1980.

78. डॉ0 रामदयाल मुण्डा, एअ नवा कानि, राँची, 1980.
79. डॉ0 रामदयाल मुण्डा, सेलेद, राँची, 1987.
80. डॉ0 रामदयाल मुण्डा, प्रीतिपाल और रामायण पाला, राँची, 1970.
81. डॉ0 राम निवास साहू, भाषा सर्वेक्षण, दिल्ली, 1996.
82. डॉ0 रामनन्दन कुमार, विश्व इतिहास, पटना, 1994.
83. रामस्वरूप चतुर्वेदी, कल्पना, लेख, इतिहास दर्शन और हिन्दी साहित्य का इतिहास, 1961.
84. डॉ0 रामकिशोर सिंह, संस्कृत साहित्य का इतिहास, इलाहाबाद,
85. डॉ0 रामवचन सिंह, वाराणसी, 1973.
86. प्रो0 राजीव नयन प्रसाद, मध्यकालीन भारत, पटना, 1962.
87. राँची विश्वविद्यालय, राँची, सरजोम बा, 1976.
88. डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, आधुनिक साहित्य की भूमिका, 1973.
89. लाला सीताराम, अयोध्या का इतिहास, इलाहाबाद, 1932.
90. डॉ वचनदेव कुमार, व्याकरण भास्कर, पटना, 1991.
91. वसंत निरगुणे, लोक-संस्कृति, मध्य प्रदेश, 1996.
92. डॉ0 विसेश्वर प्रसाद केशरी, नागपुरी गीतों में श्रृंगार रस, राँची, 1970.
93. डॉ0 विसेश्वर प्रसाद केशरी, नागपुरी भाषा और साहित्य, राँची, 1971.
94. डॉ0 विसेश्वर प्रसाद केशरी, झारखण्डी भाषाओं की समस्याएँ और सम्भावनाएँ, राँची, 1992.
95. डॉ0 विसेश्वर प्रसाद केशरी, छोटानागपुर का इतिहास, कुछ सूत्र-कुछ सन्दर्भ, राँची, 1979.
96. विश्वनाथ तिवारी, विश्व इतिहास प्रवेश, पटना, 1990.
97. विनोबा, गीता-प्रवचन, वाराणसी, 1951.
98. विशु लकड़ा, सराना संगीत, राँची, 1988.
99. विरेन्द्र कुमार सिंह, सुगम भारतीय इतिहास, पटना, 1996.
100. वेद व्यास, वेद,
101. श्री श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य,
102. शरतचन्द्र राय, मुण्डा एण्ड देअर कंट्री, 1912.
103. शिवशेखर मिश्र, भारतीय संस्कृति में आर्येत्तरांश,
104. डॉ0 सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, दिल्ली, 1962.

105. डॉ0 सत्येन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश, भाग-दो,
106. सिकरादास तिर्की, बाचण्डुः आन तोअउ, पटना, 1987.
107. सिकरादास तिर्की, मेरी रचनाएँ (पाण्डुलिपि), जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची, 1984.
108. सिकरादास तिर्की, मुण्डारी रामायण, पाण्डुलिपि से,
109. सी0 डी0 सिंह, झारखण्ड दर्पण, राँची, 1996.
110. सुखदा पाण्डेय, साहित्य और इतिहास, पटना, 1969.
111. डॉ0 सुरेन्द्र गोपाल, विश्व इतिहास प्रवेशिका, पटना, 1979.
112. सुलेमान वाडिग, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा, स्टाफ कॉलेज, राँची, 1997.
113. डॉ0 श्रवणकुमार गोस्वामी, नागपुरी शिष्ट साहित्य, दिल्ली, 1972.
114. सोमा सिंह मुण्डा, मुण्डा, राँची, 1993.
115. संतोष कुमारी जैन, कुरमाली लोकगीत, पटना, 1997.
116. संताली हैण्ड नोट, कलकत्ता, 1921.
117. डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, दिल्ली, पटना, 1991.
118. डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, वित्तर्क प्रमाण, 1954.
119. हॉफमैन, इनसाइक्लोपिडिया मुण्डारिका, 1950.
120. काव्य विवेचन, पटना,
121. वेणी नाथ महथा : नागवंशवाली, संवत् 1782.

सहायक पत्र-पत्रिकाएँ

1. आदिवासी, राँची
2. डॉ0 उमेश कुमार वर्मा, आदिवासी, राँची, 1998.
3. के0 सी0 टुडु, सरहुल महोत्सव, राँची, 1997.
4. श्री कृष्ण वैद्य, आजकल, दिल्ली, 1998.
5. श्री कृष्ण मुरारी, प्रभात खबर, राँची, 13 नवम्बर, 1998.
6. पझरा : डॉ0 गिरिधारी राम गौंझू, नागपुरी प्रचारिणी सभ, राँची, 1986.
7. डॉ0 गिरिधारी राम गौंझू, झारखण्ड सांस्कृतिक उत्सव वर्ष, राँची, 1992.
8. छोटानागपुर तेली उत्थान समाज, गिरिराज, 1998.

9. जनहक, खण्ड -1, अंक-6, 9 सितम्बर, 1997.
10. जनहक, जून, 1997.
11. झारखण्ड, राँची,
12. नोएल तोपनो, सम्पड़तिङ, राँची, 1998.
13. प्रभात खभर, राँची, 11 मई, 1997.
14. प्रभात खबर, राँची, 01 फरवरी, 1998.
15. प्रभात खबर, राँची, 21 अप्रील, 1999.
16. बिशु लकड़ा, आदिवासी, राँची, 1998.
17. डॉ0 रामदयाल मुण्डा, सरहुल मंत्र, राँची,
18. राँची विश्वविद्यालय, राँची, एल-एल (मुण्ड) ।। (अनिवार्य) पत्र.
19. प्रो0 लिलिता प्रसाद विद्यार्थी, आदिवासी मेरी दृष्टि में,
20. श्री त्रिलोकी नारायण, संतकाव्य में लोक संस्कृति समाज, त्रैमासिक, 1958.
21. दैनिक प्रभात खबर, राँची, 22 दिसम्बर, 1999.
22. सिकरादास तिर्की, गोअरी सकम, पाण्डुलिपि से,
23. डॉ0 गिरिधारी राम गौंझू, नागवंशी राजाओं की राजधानी विषयक सेमिनार, बेड़ो महाविद्यालय, बेड़ो, 1999, में पठित आलेख से,
24. दयामणि बरला, प्रभात खबर, राँची, 6 जनवरी, 2000, पृष्ठ-2,

परिशिष्ट - 1
लोक साहित्य संकलन के स्रोत

संस्थागत पुस्तकालय

1. रामलखन सिंह यादव महाविद्यालय, कोकर, राँची का पुस्तकालय,
2. जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची का पुस्तकालय
3. सेन्ट्रल लाइब्रेरी, राँची विश्वविद्यालय, राँची
4. सत्य भारती पुस्तकालय, राँची,
5. फादर बुल्के स्मृति पुस्तकालय, राँची,
6. बिरसा महाविद्यालय, खूँटी का पुस्तकालय,

व्यक्तिगत पुस्तकालय

7. डॉ0 गिरिधारी राम गौंझू का निजी पुस्तकालय, वसंत बिहार, हरमू, राँची
8. श्रीमती प्यारी टूटी का निजी पुस्तकालय, बारुडीह, मुरहू, खूँटी
9. मुण्डारी क्षेत्र में उपलब्ध मौखिक तथा लिखित मुण्डारी लोक साहित्य का अध्ययन एवं अनुशीलन।

परिशिष्ट - 2
साक्षात्कार विवरण

1. डॉ0 गिरिधारी राम गौंझू 'गिरिराज' (शोध निदेशक),

उम्र -	50 वर्ष
पद -	रीडर, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची,
पेशा -	अध्यापन
निवासी -	बेलवादाग, खूँटी, राँची (झारखण्ड),

2. डॉ0 विनोद वराय नाग

उम्र -	60 वर्ष
पद -	प्राध्यापक, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची.
पेशा -	अध्यापन
निवासी -	सपारूम, खूँटी, राँची (झारखण्ड),

3. श्री बिरसा पहान

उम -	30 वर्ष
पद -	पहान
पेशा -	कृषि
निवासी -	मारंगहादा, खूँटी, राँची (झारखण्ड)

4. श्री दसाय पूर्ति

उम्र -	65 वर्ष
पद -	भूतपूर्व अंचलाधिकारी
वर्तमान पेशा -	कृषि
निवासी -	कुड़ापूर्ति, सोयको, राँची (झारखण्ड)

5. श्रीमती मंगरी देवी

उम्र -	90 वर्ष
पद -	गृहणी
पेशा -	कृषि
निवासी -	भण्डरा, खूँटी, राँची (झारखण्ड)

6. श्री डेमका पहान

उम्र -	70 वर्ष
पद -	पहान
पेशा -	कृषि
निवासी -	जिजिंगा-रूपाटोली, खूँटी, राँची (झारखण्ड)

7. श्री मदीराम पहान

उम्र -	65 वर्ष
पद -	पहान
पेशा -	कृषि
निवासी -	फुटकलटोली, खूँटी, राँची (झारखण्ड)

परिशिष्ट - 3

ऐतिहासिक सन्दर्भ के कुछ लोकगीत (शब्द चित्र)

जदुर (1)

अमः मइ बिजिर केना मइ	अर्थात्- हे लड़की तुम्हारा हुनर (कला) देखकर
एंगामेको तुरतुए जन	तुम्हारी माताएँ चकित है।
अमः मइ जिलिबि केना मइ	हे युवती तुम्हारा हुनर जानकर
अपुमेको अरेतंए जन	तुम्हारे पितागण अचम्भित हैं।
ओकोरेको गोंएमेया मइ	हे लड़की, तुम्हारी शादी कहाँ से होगी?
एंगामेको तुरतुए जन	तुम्हारी माताएँ चकित हैं।
चिमए रेको चलेमेया मइ	हे युवती, तुम्हें कहाँ ब्याहेंगे?
अपुमेको अरेतंए जन	तुम्हारे पितागण अचम्भित हैं।
बुण्डू रेको गेंएमेया मइ	हे लड़की, तुम्हारी शादी बुण्डू में होगी
एंगामेको तुरतुए जन	तुम्हारी माताएँ चकित हैं।
तमड़ारेको चलेमेया मइ	हे युवती, तुम्हारा विवाह तमाड़ में होगा
अपुमेको अरेतंए जन	तुम्हारे पितागण अचम्भित हैं।

(2)

राजाबन्दा गुले गुलेया	राजा का तालाब झिलमिला कर रहा है
मंड़िते बुराएमे	हे युवती, धीरे से पानी निकालो।
रानी दुअर मिले मिलेया	रानी का दरवाजा झिलमिला रहा है
सुतम ते लुण्डाएमे	हे युवती, तुम सूत के लूण्डा से पोछो।
हेलोतना पोन्डे तना	हल्का मारता है (तो पानी) गन्दा होता है।
मंड़िते बुराएमे	हे युवती, धीरे-धीरे (पानी) निकालो।
हसातना दुड़ा तना	मिट्टी लग रहा है, धूल लग रहा है
सुतम ते लुण्डाएमे	हे युवती, तुम सूत के लुण्डा से पोंछो।

(3)

बिर बुरु लो तने रे	जब वन पर्वत जलता है
सोबेनेको लेलेनमेया	तब वह सबको दिखाई देता है
अपन जी लो तने रे	जब अपना दिल जलता है
जेतएओ कको लेलेया	तब वह किसी को दिखाई नहीं देता है।
मरंबुरु दिआ सेंगेल	अर्थात् - बड़ा पहाड़ का दीप अग्नि
ओकोए चि कको लेलामे	किसे दिखाई नहीं देता है?
अपन जी बले तने रे	अपनी आत्मा की ज्वाला तो
जेतए हो कको लेलमे	किसी को भी दिखाई नहीं देती।
हेयातिं मोनिजरे चका तिं सनज	मुझे चिंता होती है फिक्र होता है
ओकोए चि कको लेलामे	उसे हर कोई देख लेता है?
हेयातिं मोनिजरे चका तिं सनज	मुझे चिंता होती है, फिक्र होता है
जेतए हो कको लेलमे	उसे कोई नहीं देख सकता।

(4)

कहाँ से आलाएँ कासा बकुला
जोड़िलोन डेना टुटी गेल
गंगा जमुना नदी सुखी गेल
हायरे वृन्दाबोनो पोड़ी गेल

पुरुबसे आलैं कासा बकुला
जोड़िलोन डेना टुटी गेल
गंगा जमुना नदी सुखी गेल
हायरे वृन्दाबोनो पोड़ी गेल

(5)

कहाँ से जइसे रे दादा
धोती पिंधे ले हो
कहाँ जइसे रे दादा
तोलोंग बांधि ले

नाचे जइसे रे दादा
धोती पिंधे ले हा
खेले जइसे रे दादा
तोलोंग बांधि ले

(6)

आसाम जाबे बाबु भोटांग जाबे
घुरीपिरी आबे बाबु एहे नागपुरी
आसाम जाबे बाबु कछाड़ जाबे
घुरीफिरी आबे बाबु एहे आपन देश।

(7)

सिरिराइज बड़ी उलचुलिया।
सिरिराइज बड़ी उलचुलिया।।
छोंड़ा उपर छोंड़ी तीर चलाए हो।
छोंड़ा उपर छोंड़ी तीर चलाए हो।।

राग गेना (8)

उरांग कुड़ी उरांग कुड़ी हो
मोलोंग रेको खोदन तना
मुण्डाकुड़ी मुण्डाकुड़ी हो
मूरेको खोदन तना

अर्थात् - हे भाइयों, उराँव जाति की स्त्रियाँ
कपाल पर गोदना करती है
हे भाइयों, मुण्डा जाति की स्त्रियाँ
नाक में खोदा करती है।

दोला तिबु लेले लेकोआ हो	भाइयों, चलो हम उसे देख लें
मोलोंग रेको खोदन तना	वे कपाल पर गोदना करती हैं
मरे तिबु चिना लेकोआ हो	भाइयों, चलो हम उसे उपचान लें
मूरेको खोदन तना	वे नाक में गोदना करती हैं।
अले दोले लेले लेकोआ हो	हे भाइयों उन्हें हमलोगों ने देखा है
मोलोंग रेको खोदन तना	वे कपाल पर गोदना करती हैं
अले दोले चिना लेकोआ हो	हे भाइयों हमने उसे पहचान लिया हैं
मूरेको खोदन तना	वे नाक में गोदना करती हैं।

(9)

गड़ा तला रे मइ	अर्थात् -	हे युवती नदी के बीच में (और)
इकिर तला रे		जलाशय के बीच में
दिरि चोपोल केन मइ		हे युवती पत्थर 'छप' किया (और)
सार बिजिर केन		तीर चमक गया।
ओकोए तेर ले मइ		हे युवती किसने मारा (तथा)
चिमए तुञ ले		किसने तीर चलाया (कि)
दिरि चोपोल केन मइ		पत्थर (पानी में) 'छप' सा किया
सार बिजिर केन		(और) तीर चमक गया।
गतिञ तेर ले मइ		हे युवती तुम्हारे प्रिय ने मारा
संगम तुञ ले		(और) उसने ही तीर चलाया
दिरि चोपोल केन मइ		हे युवती पत्थर 'छप' किया
सार बिजिर केन		(और) तीर चमक गया।

(10)

कहाँ केरा झालिया रे माँदर।
कहाँ केरा केरा झालिया ।।
बुण्डु केरा झालिया रे माँदर।
तमाड़ केरा केरा झालिया।।

करम राग (11)

झालिदा नगोरवासी
चलो सोखि रासो देखी
रासो देखी उलासिता
मोन अच्छा सुइनो छोन
कि बोलिबो धोन - 2
रासो रे बोरोन

कोहि विनोन्द सिंह
चलो सोखि रासो देखी
रासो देखी उलासिता
मोन अच्छा सुइनो छोन
कि बोलिबो धोन -2
रासो रे बोरोन

(12)

झालिदा नगोरहोरि
रासोनं डालो साजे
तिरि रि रि
धोनि
मोहोनं -मोहेनं
बाँसुरी
तिरि रि रि

चइरो कोना चइरो चुड़ा
रासोनं डालो साजे
तिरि रि रि
धोनि
मोहोनं-मोहोनं

बाँसुरी
तिरि रि रि

(13)

ऊपर टोली माँदर बजे
नीचे टोली नाच रे
चलु दीदी देखे जाब -2
रिझे व्याकुल रे

देखे के तो देखली
नाचे के तो नाचली
चलु दीदी घरे जाब -2
नींदे व्याकुल रे

(14)

कोने बोने बाठी झूरी
कोने बोने दतुन पतइ
कोने बोरे रे पिया जोड़ोलि पिरिति
जोड़ोली पिरिति नइ छुटे

वृन्दाबोने काठीझुरी
बिजु बोने दतुन पतइ
सेइ बोरे रे पिया जोड़ोली पिरिति
जोड़ोली पिरिति नइ छुटे।

(15)

ने हातु तला रे	अर्थात् -इस गाँव (धरती) में
जोनोमकानबुरे	हमलोगों ने जन्म लिया है।
दुकु सुकु सोबेनमेन - 2	जीवन में सुख-दुःख सब है

विधि ओल तदा रे	यह विधि का विधान है।
ने जिबोन मेनः बइर	जब तक यह जीवन है
लन्दयाबु जगरा	तब तक हम हंस-बोल लें
ने जिबोन सेनो जन रे -2	इस जीवन के चले जाने पर
जेतए बंगबुआ रे	यहाँ हम कोई नहीं रहेंगे।

(16)

भादरो मासे
पिया पोरोदेशे
यादो मोनि रे धोनि
प्रेमो निन्दी रे धोनि
बांगिबो किससे

नन देखी डाड़ी घाटे
नन देखी चुंवा घाटे
यादो मोनि रे धोनि
प्रेमो निन्दी रे धोनि
बांगिबो किससे ।

(17)

कहाँ कुइलो सुतल
कहाँ कुइलो जगल
कुइलो गे मैनो जानी
कहाँ कुइलो होउतो बिहान रे
कुइलो गे मैनो जनी

आँम्बा तरे सुतल
आँम्बा तरे जागल

कुइलो गे मैनो जानी
ताहाँ कुइलो होउतो बिहान रे
कुइलो गे मैनो जानी।

(18)

वन पतइ पोड़े सेके
सब कोए देखएना रे
भीतरे कलेजा जले
कोइ नी तो जानाएँ रे ।

पहाड़ परबत पोड़े
सब कोए देखाएना रे
मन में कलेजा जले
कोउ नी तो जानएँना रे ।।

धँसना कर माटी नीरे
कले कले धँसत रे
तइसन मएँना रे धँसलक काया
राउरे नी धँसलक।

गंगा कर पानी लखे
मोर जीवा बहतइ रे
काटल लकड़ी ते लखे
मन कुमुलालक ।।

(19)

ने जोनोम बरसिं नंगेन	अर्थात् -यह जन्म दो दिन के लिए है
हगा कोलोः सलइ बुगन मेन लेका	भाइयों के साथ मेल प्रेम का है
ने जोनोम दोरे गतिञ	हे सहिया यह जन्म फिर
कोरेम नमेआ	हमें कहाँ मिलेगा?

कासा पीतल रपुद जनरे	अर्थात् -कासा-पीतल के टूट जाने से
एना बतिः बदला नमोः मेन लेका	वह बदले में मिल जाता है।
ने जोनोम दोरे गतिञ	(पर) हे सहिया यह मिलन फिर
कोरेम नमेआ	हमें कहाँ मिलेगा?

जरगा राग (20)

सुकन बुरुम सेन केना।	तू तो सुकुन मेला गया था
कुरिया बाबु नवा किमिनिञ।।	हे पुत्र, मेरी नई बहू कहाँ है?
कचिगाम लेले जःइया।	हे माँ, क्या तुम्हें दिखाई नहीं दे रही है।
पोटोम कोचा रेः जपगा कना।।	वह मोरा कोचा में छिपी हुई है।

(21)

ओकोरे मइना सोन्दरि	अर्थात् - कहाँ है? हे सुन्दरी युवती (लक्ष्मी)
एंगाम कोरे ओडः दो -2	तुम्हारी माता का घर
चिमए रे मइना सोन्दरि	कहाँ है? हे सुन्दर युवती
अपुम कोरे रचा दो - 2	तुम्हारे पिता का घर।
एंगाम रचा तुड़सी	तुम्हारी माँ के आँगन का तुलसी
तुड़सी कोरे ओड़ाः दो - 2	उसी तुलसी में घर है।
अपुम रचा तुड्सी	तुम्हारे पिता के आँगन की तुलसी
तुड्सी कोर रोसोम दो - 2	उसी तुलसी में तुम्हारा निवास है।

(22)

बुरु रेमा लिपी टिकुरारेमा	हे लिपी तुम पहाड़ में हो या टिकरा में
एंगाञ लेका लिपीञ अयुम मेआं	मैं तुम्हें मेरी माँ की तरह सुनता हूँ।
गड़ा रेमा लिपी जोबेला रेमा	हे लिपी नदी में हो या जलाशय में
अपुञ लेका लिपीञ अतेन मेआं	मैं तुम्हें मेरे पिता के समान सुनता है।
एंगाञ लेका लिपीञ अयुम मेआं	मैं तुम्हें मेरी माँ की तरह सुनता हूँ।

एला लिपीलं जगरकोआ	हे लिपी, आओ हम बातें कर लें।
अपुञ लेका लिपीञ अतेन मेआं	मैं तुम्हें मेरे पिता के समान सुनता हूँ।
एला लिपीलं बकड़ां कोआ	हे लिपी, आओ हम वार्त्ता कर लें।

डॉ. सिकरादास तिर्की

जन्म : 20 सितम्बर 1954
ग्राम-भण्डरा, खूँटी (झारखण्ड)
माता : स्व. मंगरी देवी
पिता : स्व. सोहराई तिर्की
शिक्षाः एम. ए. (मुंडारी), पीएच. डी.
(राँची विश्वविद्यालय)

मुंडारी आधुनिक साहित्य के विकास में डॉ. सिकरादास तिर्की का योगदान उल्लेखनीय है। छात्र-जीवन से ही मुंडारी भाषा-साहित्य, संस्कृति एवं इतिहास के प्रति अगाध जिज्ञासा रखने वाले श्री तिर्की उरांव आदिवासी समुदाय से आते हैं, परंतु मुंडा क्षेत्र में पुरखौती निवास होने के कारण इनकी मातृभाषा मुंडारी है। साहित्य की सभी विधाओं में इनकी रचनाएं स्थानीय, क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। मुंडारी एवं हिंदी दोनों ही भाषाओं में। यदि मूल विधा की बात की जाए तो श्री तिर्की मूलतः गद्य लेखक हैं और कथा-साहित्य एवं इतिहास लेखन में इनकी रचनात्मक क्षमता का सर्वोत्कृष्ट रूप दिखाई पड़ता है। प्रस्तुत पुस्तक में इन्होंने मुंडा लोक साहित्य में बिखरे ऐतिहासिक तथ्यों को वैज्ञानिक दृष्टि से और आदिवासी नजरिए से 'इतिहास' लिखने का श्रमसाध्य कार्य किया है। इस अर्थ में यह झारखंड के आदिवासी इतिहास पर अपने ढंग की मौलिक पुस्तक है।

वर्तमान में आप रामलखन सिंह यादव महाविद्यालय, राँची (झारखण्ड) में व्याख्याता हैं।

प्रकाशित पुस्तकें : बा चण्डुअ आन तोअउ, झारखण्ड के आदिवासी और उनके गोत्र, वन अधिनियम 2006 (अनुवाद)

PYARA FOUNDATION
प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन
चेशायर होम रोड, बरियातु, राँची-834009 झारखण्ड

ISBN : 978-93-81056-12-7 Rs. 200